ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जीवन वृत्तान्त

श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरु नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़
Website : www.sikhworld.info

नोटः यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

विषय सूची

1 भूमिका
2 पृष्ठ भूमि
3 प्रकाश
4 बाल्यकाल
5 पण्डित शिवदत्त जी
6 गोबिन्द राय की निर्भीकता
7 सोभग्यवती रानी विश्वम्भरा
8 गुरू परिवार की पंजाब वापसी
9 पीर आरफदीन जी
10 प्रारम्भिक शिक्षा
11 औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार
12 गुरू दरबार में कश्मीरी पण्डितों की पुकार
13 भाई मती दास जी की शहीदी
14 शहीदी भाई दयाला जी
15 शहीदी भाई सती दास जी
16 गुरू तेग बहादुर साहब जी की शहीदी
17 गुरु गद्दी अलंकृत समारोह
18 राजा राम सिंह द्वारा घोड़े भेंट
19 भाई लखी शाह
20 गोबिन्द राय जी का समय और परिस्थितियां
21 मसंद प्रथा की समाप्ति
22 जल क्रीड़ाएं
23 गुरू की त्रिवेणी
24 राजा रतन राय
25 विवाह
26 रणजीत नगारा
27 अफ्गानिस्तान की संगत
28 भीमचन्द की दुविधा
29 शेर का शिकार
30 भीमचन्द का असफल छल
31 कालसी का ऋषि
32 नाहन नगर में पदार्पण
33 पीर बुद्ध शाह
34 साहबजादा अजीत सिंघ का जन्म
35 निर्मला अभियान

36 राम राय के संग भेंट
37 कपाल मोचन
38 राम राय की मृत्यु
39 नरेश फतेहशाह की लड़की के विवाह का निमन्त्रण
40 कालसी का ऋषि की मृत्यु
41 बारात का प्रस्थान
42 पाऊँटा नगर में साहित्य की उत्पत्ति
43 भंगाणी’ रणीक्षेत्र बन गया
44 पाऊँटा साहब से आनन्दपुर प्रस्थान
45 रायपुर की रानी
46 नाडू शाह
47 आनन्दपुर में प्रवेश
48 भीमचन्द ने मैत्री का प्रस्ताव भेजा
49 होला–महला
50 ठाकुर का प्रकोप
51 भाई नन्दलाल जी ‘गोया’
52 गुरूदेव का विद्या दरबार
53 कवियों तथा गुरू गोबिन्द सिंघ के संवाद
54 लंगर की परीक्षा
55 कड़ाह प्रसाद को लूटने का आदेश
56 ज्ञान की रहस्यमय कुंजी
57 समृद्ध युवक को सेवा करने की प्रेरणा
58 विनोदी गुरूदेव जी का उचित निर्णय
59 लाहौरा सिंघ की शुद्धि
60 बजरूड़ का उद्धार
61 भाई जय सिंघ
62 भालू को मोक्ष प्रदान
63 काज़ी सलारदीन की आशंका निवृत्त
64 खालसे की माता
65 मसंद श्रेणी पर प्रतिबन्ध
66 नादौन का युद्ध
67 गुलेर के युद्ध में गुरूदेव का सहयोग
68 मुअज़म (बहादुरशाह) का पर्वतीय नरेशों पर आक्रमण
69 राजा भीम चन्द का देहान्त और देवीचन्द
70 दादी मां नानकी जी का निधन
71 देवी प्रकट करने की विडम्बना

72 गुरूदेव का मुख्य लक्ष्य
73 खालसा पंथ की सृजना
74 चारसूत्री कार्यक्रम
75 आपे गुरू चेला
76 रहित मर्यादा का महत्त्व
77 दम्भी सिखों द्वारा विरोध
78 सैद्धान्तिक दृष्टान्त
79 भाई जोगा सिंघ जी
80 ब्राह्मण देवदास
81 दीपकौर
82 हरि नाम की महिमा
83 शुद्ध वाणी उच्चारण पर बल
84 आध्यात्मिक समस्या का समाधान
85 चरित्र निर्माण पर विशेष बल
86 विद्याता पर अटूट आस्था
87 ढाल की परीक्षा
88 पर्वतीय नरेशों को प्रेरणा
89 आनन्दपुर का प्रथम युद्ध
90 आनन्दपुर का द्वितीय युद्ध
91 दुनीचन्द मसन्द
92 उदय सिंघ
93 भाई कन्हैया जी
94 सैदखान
95 आनन्दपुर की चौथी और अन्तिम लड़ाई
96 आनन्दगढ़ का त्याग
97 आनन्दपुर से प्रस्थान
98 चमकौर का युद्ध
99 चमकौर की रणभूमि से माछीवाड़ा क्षेत्र में
100 माछीवाड़े क्षेत्र से पलायन
101 अल्प आयु के शहीद
102 मुगलों से अन्तिम युद्ध
103 मुक्तसर का युद्ध
104 मालवा क्षेत्र में प्रचार
105 हाज़री मन की अथवा तन की
106 सच्चा प्रेम ही प्रभु चरणों में प्रवान
107 सरहिन्द से जगीरदार डल्ले के सैनिकों की परीक्षा

108 सरहिन्द से जगीरदार डल्ले की धमकी
109 धर्मपत्नी से मिलाप
110 गुरूग्रंथ साहब के नये स्वरूप की संपादना
111 गुरू चरणों में पीढ़ी जितना स्थान
112 कवि दरबार
113 प्रचार का असर
114 औरंगजेब की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारियों में युद्ध
115 उज्जवल आचरण ही श्रेष्ठता का प्रतीक
116 पीर को सीख
117 केश अनिवार्य क्यों?
118 खालसा सम्पूर्ण
119 भाई मान सिंघ जी की हत्या
120 माधो दास वैरागी
121 माधोदास से बंदा बहादुर
122 तम्बाकू का निषेध
123 सहया का शिकार
124 माता साहब देवां (कौर) का दिल्ली प्रस्थान
125 सम्राट द्वारा बहुमूल्य नगीना भेंट
126 धनु विद्या की प्रतियोगिता का आयोजन
127 श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी पर घातक आक्रमण
128 भाई दया सिंघ जी का निधन
129 ग्रंथ साहब को गुरू पदवी प्रदान की
130 सचखण्ड गमन

जीवन वृत्तांत श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक जीवन वृत्तांत श्री गुरू गोबिंद सिंघ जी की हिन्दी जगत के लिए एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है, क्योंकि लेखक जसबीर सिंघ ने एक पराक्रमी पुरुष के विशेष व्यक्तित्व की महान उपलब्धियों को जिस सहज-सरल एवं ढंग से चित्रण किया है, वह आज की युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगी। वैसे श्री गुरू गोबिंद सिंघ जी जैसी महान विभूति के विषय में कुछ भी लिखना सूर्य को दीया दिखाने तुल्य ही है। आप के जीवन वृत्तांत के विषय में अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी है। उनकी रचनाओं पर सैंकड़ों लोग शोध कर चुके हैं। उनके साहित्य, उनके दर्शन को जन-साधारण ने अपनी दिन चर्या का हिस्सा भी बनाया हुआ है। लेकिन विडम्बना यह है कि हमारी युवा पीढ़ी इतने बड़े व्यक्तित्व के बारे में अनजान है। खैर . . . . . शायद कई बार भाषा की दीवार आड़े आती है अथवा युवा पीढ़ी का अध्ययन-अध्यापन से लगातार दूर होते जाना है। इस के अतिरिक्त संकीर्ण मानसिकता भी रही है, जिस कारण मानवता के पक्षधर को, लोगों से समझने मे चूक हो गई है।

उपरोक्त कारणों को लेखक जसबीर सिंघ ने बखूबी समझा और जाना है। इस लिए उन्होंने श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के जीवन और उनकी रचनाओं का गहन अध्ययन करके इसे मूल रूप हन्दी में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और इस में वह बेहद सफल रहे हैं।

आधुनिक युग की यह अद्भुत पुस्तक इस लिए भी है क्योंकि इस पुस्तक के माध्यम से लेखक जसबीर सिंघ ने श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी की बहुमुखी प्रतिभा को जिस सरलता से संजीव चित्रण किया है मालूम होता है कि घटना क्रम प्रत्यक्ष दुष्टिगौचर हो रहा है और इस प्रकार इतिहास जैसे शुष्क विषय को रुचिकर बनाने का सरल प्रयास किया है।

लेखक ने श्री गुरू तेग बहादुर साहिब जी की आसाम यात्रा से पुस्तक को प्रारम्भ करके श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी का बैकुण्ठ गमन तक का वुत्तांत कलमबद्ध किया है। आरम्भ में पटना नगर के निवासियों को आकृष्ट करने वाली बाल्य क्रीड़ाएं, शिक्षा, गद्दी प्राप्ति और गुरू तेग बहादुर साहिब की शहीदी इत्यादि प्रसंगों की विस्तृत जानकारियां उपलब्ध कराई है।

लेखक ऐतिहासिक तथ्यों के द्वारा यह स्पष्ट करता है कि आनंदपुर साहब की भूमि श्री गुरू तेग बहादुर साहिब जी ने पर्वतीय नरेश भीम चन्द के पिता दीप चन्द से खरीदी थी। प्रर्वतीय नरेशों से गुरुदेव का वास्तविक मतभेद वर्ग विहीन समाज की सृजना थी न कि भूमि विवाद। जो आगे चल कर गुरुदेव के वैभव के कारण ईर्ष्या वश कटूता का कारण बन गई तथा दोनों पक्षों मे आत्म गोरव के कारण भंगाणी नामक रणक्षेत्र में भयंकर युद्ध रूप में प्रकट हुई।

भंगाणी रणक्षेत्र में पर्वतीय नरेशों से आप के जीवन का प्रथम युद्ध था। इस लिए शायद लेखक ने उस का बहुत विस्तृत वर्णन कुछ इस प्रकार किया है मानों पाठ गण स्वयं युद्ध भूमि में प्रत्यक्ष दर्शी हो।

पाऊँटा नामक रमणीक स्थल पर साहित्य सृजना तथा कवियों सम्मेलनों के आयोजनों में कवियों को भारी पुरस्कारों से सम्मानित करना विशेष उल्लेखनीय है। पीर भीखन शाह, पीर बुद्धुशाह इत्यादि मुस्लिम सम्प्रदायों के लोगों का आप पर अथाह श्रद्धा भक्ति रखना और आप के पक्ष में युद्ध लड़ते हुए अपने परिजनों को आप पर न्योछावर कर देना जहां यह अद्भुद्ध घटना है वही किसी चमत्कार से कम नहीं। वास्तव में यह घटनाएं आप को धर्म निरपेक्षता की चर्म सीमा पर दर्शाती है।

लेखक ने खालसा पंथ की परिकल्पना, सृजना एवं सम्पूर्णता का वृत्तांत प्रस्तुत करते समय एक आर्दशमय जीवन पद्धति वाले मानव को प्रकट कर समाज के प्रति निष्ठावान व समर्पित व्यक्ति के अस्तित्व को उजागर किया है। वहीं, पराजय की हीन भावना से ग्रसित पर्वतीय नरेशों ने मिथ्या तथ्यों को आधार बना कर मुगल सम्राट औरंगज़ेब से सहायता मांगी जो कि सम्प्रदायिक्ता का रूप धाारण कर भयंकर युद्धों में परिवर्तित हो गया परिणामता गुरुदेव को भारी क्षती उठानी पड़ी जिस में आनंदगढ़ त्यागने के अतिरिक्त प्रिय पुत्रों के प्राणों की आहुति देनी पड़ी किन्तु आप विचलित नहीं हुए। ऐसे धार्मिक दुश्यों को इस पुस्तक मे लेखक ने बहुत कलात्मक ढंग से चित्रत किया है। विशेष कर 'अल्प आयु के शहीद' प्रसंग के संवाद तो मरी हुई आत्मा को भी जागृत कर देते हैं और यहां तक कि पाठकगण के नेत्र बरबस द्रवित हुए बिना रह नहीं पाते।

लेखक की रचना में श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के विलक्षण व्यक्तित्व को उन के जीवन प्रसंगों को दर्शाते समय उनको कठिन प्रस्थितियों में प्रभु पर अटूट आस्था निभिक योद्धा, समय की कसोटियों पर खरा उतरता हुआ, शत्रुओं को भरोसा देकर सुरक्षित स्थान पर पहुंचता है वह भी शत्रु पक्ष के समुदाय के व्यक्तियों की सहायता प्राप्त कर।

लेखक ने श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के बहुमुखी व्यक्तित्व को उभारते समय उन्हें निमिक सेना नायक, सत्य पथ के अनुगामी, राजनीतिज्ञ, मानवतावादी, क्रातिकारी, धर्म रक्षक, समदर्शी, विश्वानुरागी आध्यात्मविद्या के प्रवर्तक, भक्तवत्सल और साहित्य प्रेमी इत्यादि गुणों से सम्पन दर्शाया है। जिस सक प्रकृति के इस महान सपूत मे सर्वगुण सम्पन होने की जन-साधारण के हृदय पर अमिट रेखाकृत हो जाती है।

लेखक ने आप के जीवन के प्रसंगों के दर्शाते समय आप को केवल मानवतावादी साम्प्रदायिक कलह-कलेश एवं संकीर्णता से कोसों दूर परोपकारी, प्रेम के पुन्ज प्रकट किया है, वहीं राजनैतिक कारणों से उबरी गलत फैमियों को दूर किया है। प्रस्तुत वृत्तांतों से आप धर्म निर्पेक्षता के नम्बरदार सिद्ध हुए हैं।

इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय का प्रसंग जहां विलक्षण है वहीं ज्ञान वर्धक तथा पाठक गणों का मन मोह लेने वाले हैं। वास्तव में एक विपरीत गुणों वाली प्रतिभा को शब्दों में साकार करना एक विशेष कला है। उदाहरण के लिए गुरुदेव को संत व सिपाही, राजा अथवा योगी, गुरू अथवा शिष्य, सेनापति अथवा सिपाही के रूप में प्रदर्शित करना एक कौशल ही है।

प्रस्तुत पुस्तक भले ही लम्बी जान पड़ती है किन्तु इस में लेखन शैली की रोचकता उपन्यास से कम नहीं पाठक गण कहीं भी ऊब का ऐहसास नहीं कर पायेगें बल्कि दृश्य तो रोमांचित कर देते हैं। प्रत्येक प्रसंग नवीनता और ज्ञान से ओत-प्रोत हैं। समस्त कथाएं जन-साधारण का मार्ग दर्शन में जहां विलक्षणा रहेगी, वहीं उज्जवल जीवन जीने की प्रेरणा का महान स्रोत साबित होगी।

वास्तव में 42 वर्ष की शांसारिक यात्रा में आप के कार्यो का व्यख्यान इस पुस्तक में बहुत ही अनुप ढंग से है उन प्रकरणों को पढ़ते समय जिज्ञासु गण श्रद्धा से आत्म विभोर हो जाएगा, यह मेरा अनुमान है।

अंत में मैं यही कहूँगा जिस जज्बे से स: जसबीर सिंघ ने यह प्रयास किया है उन्हें इस के फल प्राप्ति हो तथा उन का मुख्य उद्देश्य सार्थक सिद्ध हो। ऐसी मेरी कामना है।

डा० कर्म सिंघ राजू

Dr. Karam Singh Raju, IAS (Retd.)
MaA., L.L.B., Ph.D.

जीवन वृत्तांत श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी

भूमिका

मैंने बाल्यकाल में श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी का जीवन वृतान्त कई स्रोतों अथवा माध्यमों द्वारा पढ़ा और सुना परन्तु प्रत्येक वक्ता तथा लेखकों की लेखन में भिन्नता ही मिलती। इस तथ्य में वास्तविकता यह भी हो सकती है कि शायद ये लोग उनकी बहुमुखी प्रतिभा को अपनी अपनी रूचि अनुकूल ही चित्रित करते होंगे। अत: मुझे सभी कुछ अधूरा सा प्रतीत होता। हां, यह बात भी ठीक है कि ऐसी महान विभूति के जीवन चरित्र-चित्रण के प्रयास पूर्णत: सफल कभी भी नहीं हो सकते क्योंकि उनके विषय में लिखना अथवा कहना सागर को गागर में भरने के समान होगा जो कभी सम्भव ही नहीं। अब विचित्र सी स्थिति है कुछ कह भी नहीं सकते और कहे बिना रह भी नहीं सकते। खैर --- मेरा प्रयास जिज्ञासूओं को कई दृष्टिकोणों से उनके दर्शन करवाना है - जैसे प्रभु में अभेद महापुरूष (सत्गुरू), राजनीतिज्ञ, जरनैल (सेनापति), कवि (साहित्यकार), सामाजिक क्रान्तिकारी, संत-सिपाही, दृष्टदमन इत्यादि के रूप में।

अब देखना आपने है कि मैं इस कार्य में कितना सफल हुआ हूँ।

लेखक
जसबीर सिंघ

पृष्ठ भूमि

औरंगज़ेब बहुत कुटिल तथा धर्मान्धता में चूर (जनूनी) सम्राट था उस ने हिन्दू राजाओं की शक्ति को समाप्त करने के लिए युक्ति से काम लेना प्रारम्भ कर दिया अत: उस ने शिवाजी मराठा की शक्ति को क्षीण करने के लिए जोधपुर के राजा राम सिंह को महाराष्ट्र में भेजा। परन्तु राजा राम सिंह ने शिवाजी को औरंगज़ेब के साथ संधि करने के लिए सहमत कर लिया और उसे अपने साथ औरंगज़ेब के दरबार में दिल्ली हाज़िर किया किन्तु कुटिल औरंगज़ेब ने उसे बन्दी बना कर कारावास में डाल दिया। एक दिन शिवाजी अपने पुत्र के साथ मिठाई के टोकरों में बैठकर कारावास से भागने में सफल हो गया। शिवाजी को भागने में सहायता का आरोप राम सिंह पर मढ़ा गया। इस आरोप से छुटकारा प्राप्त करने के लिए उसे आसाम नरेश चक्रध्वज को पराजित करने का कार्य सौंपा गया। चक्रध्वज अहोमी कबीले से सम्बन्धित था जिसने सम्राट शाह जहाँ पर विजय प्राप्त करने के लिए कई प्रयास किये थे परन्तु उसे सफलता नहीं मिली थी। अंत में सन् 1638 ई० में दोनों पक्षों ने एक संधि कर ली थी जो सन् 1663 तक बनी रही। किन्तु 1663 में उस संधि तोड़ कर औरंगज़ेब ने उन पर कई आक्रमण किये जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। अंत में उसने हिन्दू को हिन्दू से मरवाने की युक्ति अपनाई हुए राजा राम सिंह को वहाँ अभियान के लिए भेजा। इस अभियान में राजा राम सिंह को चार हजार अपने सैनिक लेने पड़े और डेढ़ हज़ार सैनिक सम्राट ने उसे और दिये। राजा राम सिंह यह सेना पर्याप्त नहीं समझ रहा था क्योंकि अभियान कठिन था वहां उससे पहले भेजे गये वरिष्ठ सैनिक अधिकारी पराजित होकर मारे जा चुके थे। अत: वह सैनिक सहायता की अपेक्षा रूहानी(आध्यात्मिक) सहायता की इच्छा रखता था। जिससे सैनिकों को मनोबल मिले। जब वह पटना (साहब) पहुंचा तो उसे वहां पर मालूम हुआ कि वहां पर गुरू नानक देव जी के उत्तराधिकारी गुरू तेगबहादुर साहब प्रचार दौरे पर आये हुऐ थें। वह उनसे तुरन्त मिला और प्रार्थना की कि "वे उसकी सहायता के लिए उसके साथ आसाम चले जिससे उसकी सेना को उनका मार्ग दर्शन मिलेगा और उनके मनोबल में वृद्धि होगी इस प्रकार वह युद्ध में विजयी हो सकेगा।"

गुरूदेव जी प्रचार दौरे पर थे। उन्होने राजा राम सिंह का अनुरोध स्वीकार कर लिया परन्तु उनकी जीवन संगनी (माता) गुजरी जी उस समय गर्भवती थी जिस कारण वह कठिन यात्राओं के योग्य नहीं थी। अत: यह निर्णय किया गया कि परिवार को पटना (साहब) में ही निवास करने दिया जाये। गुरूदेव जी ने अपने निकट सम्बन्धी कृपाल चन्द तथा कुछ अन्य सिक्खों को परिवार की देखभाल के लिए पीछे छोड़ दिया और स्वयं राजा राम सिंह के साथ आसाम चल पड़े।

राजा राम सिंह की सेना आसाम के घने जंगलों से अपरिचित थी अत: राजा शक्ति सन्तुलन में जुट गया और उस ने अपना शिवर धुबरी नगर में बनाया। इसी समय दौरान श्री गुरू तेगबहादुर जी को अपने परिवार जनों से पटना (साहब) से संदेश प्राप्त हुआ कि उनके यहां एक पुत्र ने जन्म लिया है। इस शुभ समाचार से राजा राम सिंह तथा गुरूदेव जी के शिवरों में खुशी की लहर दौड़ गई और वहां पर धूम-धाम से समारोह का आयोजन किया गया। गुरूदेव जी ने संदेश वाहक को एक पत्र दिया जिस में उन्होने आदेश भेजा कि शिशु का नाम गोबिन्द राय रखा जाए और उनके लौटने की प्रतीक्षा की जाए और इस बीच शिशु के लालन पालन पर ध्यान केन्द्रित रखा जाये।

राजा राम सिंह और आहोमी कबीले के राजा चक्रध्वज में लम्बे समय तक युद्ध चलता रहा किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला अंत में गुरूदेव जी ने उन दोनों में नई संधि करवा दी। इस संधि में दोनों पक्ष सन्तुष्ट थे जिस कारण राजा चक्रध्वज ने गुरू तेगबहादुर साहब को बहुत

आदर-सम्मान दिया। गुरूदेव जी ने अपने मुख्य लक्ष्य के अनुसार वहां पर गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों का बहुत प्रचार किया, उसके पश्चात् वह आसाम के नगरों से होते हुए, बंगाल के नगरों में प्रचार करने में व्यस्त हो गये। वास्तव में वे तो प्रचार दौरे पर थे। उन्होंने घर लौटने की इच्छा त्याग कर ढाका नगर को केन्द्र बनाकर दूर-दूर तक सेवकों द्वारा गुरू नानक देव जी की शिक्षाओं का प्रचार किया। इस प्रकार लगभग ढ़ाई वर्ष के पश्चात वे प्रचार करते हुए वापस पटना (साहब) नगर अपने परिवार के पास पहुंचे और उनकी अपने पुत्र गोबिन्द राय से पहली भेंट हुई।

प्रथम अध्याय

प्रकाश

साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी का प्रकाश(जन्म) पौष सुदी सप्तमी (23 पौष) संवत 1723 बिक्रमी (22 दिसम्बर सन् 1666 ई०) को बिहार प्रांत की राजधानी पटना (साहब) में माता गुजरी की कोख से, पिता श्री गुरू तेग बहादुर साहब जी के गृह में हुआ।

पंजाब में जिले सिरहिन्द के ग्राम घुड़ाम में एक सूफी फ़कीर भीखन शाह जी एक दिन अर्धरात्रि के समय प्रभु चरणों में ध्यान मग्न थे तो उस समय उन्हें आभास हुआ कि प्रभु से दिव्य ज्योति प्राप्त कर एक महान विभूति मानव रूप धारण कर प्रकाशमान हो रही हैं। उन्होनें तुरन्त ज्योतिपुंज की ओर सजदा (मस्तक झुकाना) किया और तत्काल निर्णय लिया कि वे उस बाल गोबिंद रूप पराक्रमी व्यक्ति के दीदार करने चलेगें। प्रात: काल जब उनके मुरीदों ने उन पर प्रश्न किया, "हे! पीर जी आपने अर्धरात्रि को सजदा प्रथा के अनुसार पश्चिम दिशा की ओर नहीं किया बल्कि उसके विपरीत पूर्व दिशा में किया है ऐसा क्यों?" उत्तर में पीर जी ने कहा, "मैं जिस शक्ति की अराधना करता हूँ वह स्वयं मानव रूप में इस पृथ्वी पर प्रकाशमान हो रही थी तो मुझे उनकी ओर सजदा करना ही था।" मुरीदों की जिज्ञासा बढ़ गई उन्होंने पीर जी से अनुरोध किया कि उन्हें भी उस बाल गोबिंद के दीदार करवाए। बस फिर क्या था पीर जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से उस स्थान का पता लगाया और मुरीदों को लेकर पटना (साहब) की तरफ प्रस्थान कर गये। जब वे लोग पटना(साहब) नगर पहुंचे तो बाल गोबिंद एक माह से अधिक का हो चुका था। पीर जी ने गुरू तेगबहादुर साहब के परिवार को संदेश भेजा कि वह पंजाब से बाल गोबिंद के दीदार करने के लिये आया हैं अत: उसे दीदार करवाये जाये। गुरूदेव जी के संम्बधी मामा कृपाल चन्द जी ने कुछ शंका प्रकट की और कह भेजा कि सर्दी बहुत है बाल गोबिंद अभी बहुत छोटा है घर से बाहर लाना कठिन है। किन्तु भीखन शाह फ़कीर जी ने कहा कि वे तो दीदार के भूखे हैं जब तक उन्हें बाल गोबिंद के दीदार नहीं होते तब तक वे अन्न जल ग्रहण नहीं करेंगे। इस पर कृपाल चन्द जी ने माता नानकी जी को फ़कीर जी की हठधर्मी की बात बताई और विचार विमर्श के पश्चात अगले दिन के लिए आने को कहा।

इस बीच फ़कीर जी के हृद्य में एक संक्लप उत्पन्न हुआ कि वह शिशु किस संप्रदाय का पक्षधर होगा? जानना चाहिए। उन्होंने दो छोटे कुल्हड़ लिए, एक में दूध और दूसरे मे पानी लिया, मन में यह धारणा बनाई कि यदि शिशु दूध वाले कुल्हड़ को स्पर्श करेगा तो वह हिन्दू सम्प्रदाय की पक्षधर होगा अन्यथा मुस्लिम समप्रदाय का।

जब वे अगले दिन बाल गोबिंद के दर्शनों को पहुंचे तो मामा कृपाल चन्द जी ने उनको बाल गोबिंद के दर्शन करवाए। बाल गोबिंद ने तुरन्त कम्बल से दोनों हाथ बाहर निकाल कर उन दोनों कुल्हड़ों पर धर दिये जो फ़कीर भीखन शाह जी बाल गोबिंद के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे थे। यह देखकर भीखन शाह ने बाल गोबिंद को डण्डवत प्रणाम किया और जान लिया कि बाल गोबिंद रूप में पराक्रमी पुरूष, केवल मानवता का पक्षधर होगा उस के लिए सम्प्रदायों का कोई महत्त्व नहीं होगा और वे वापिस लौट गये।

बाल्यकाल

श्री गुरू नानक देव जी अपने पहले प्रचार दौरे के अंतरगत पटना (साहब) नगर आये थे और उन्होंने सालसराय जौहरी को पटना (साहब) क्षेत्र का प्रचारक नियुक्त किया था। सालस राय ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपनी हवेली को धर्मशाला में परवर्तित कर दिया जिस में प्रतिदिन सत्संग होने लगा। उसी हवेली में श्री गुरू तेग बहादुर साहब के यहां पुत्र जन्म हुआ है। यह समाचार जंगल की आग की तरह चारों ओर पटना (साहब) नगर में फैल गया। नगरवासी, दादी मां नानकी जी तथा मामा कृपाल चंद जी को बधाईयां देने उमड़ पड़े। माता गुजरी जी अति प्रसन्न थी अत: उनका संकेत पाते ही सिक्खों ने खूब मिठाइयां बांटी और सभी अभ्यागतों को दान दिया। तदोपरांत एक विशेष सेवक को एक पत्र देकर गुरूदेव जी को संदेश देने हेतु आसाम भेजा गया कि उन के यहां एक पुत्र ने जन्म लिया है। उत्तर में गुरूदेव जी ने संदेश भेजा कि बालक का नाम गोबिन्द राय रखा जायें और उस के लालन पालन पर ध्यान केन्द्रित रखा जाये क्योंकि उन्हें लौटने में देरी हो सकती है।

लगभग ढ़ाई वर्ष पश्चात् गुरूदेव जी आसाम-बंगाल से लौट आये और उन्होंने पहली बार अपने बालक गोबिन्द राय को अपने आलिंगन में लिया और प्रभु को धन्यवाद दिया। गुरू जी कुछ दिन पटने (साहब) में ठहरे रहे परन्तु जल्दी ही पंजाब लौट गये क्योंकि वे पंजाब में माखोवाल नामक क्षेत्र में एक नया नगर बसाने का कार्य प्रारम्भ कर चुके थे जिसे सम्पूर्ण करना था। वापिस जाते समय सेवकों और मामा कृपाल चन्द जी

को आदेश दे गये कि वे वहां पर पटना(साहब) बाल गोबिंद तथा परिवार की देखभाल करें, उपयुक्त समय आने पर वे स्वयं उन सभी को पंजाब बुला लेगे।

श्री गुरू तेगबहादुर साहब के सपुत्र के जन्म स्थल, (सालस राय की हवेली) को स्थानीय संगत ने एक भव्य भवन में परिवर्तित कर दिया।

धीरे-धीरे बाल गोबिंद का विकास हुआ और वे अपनी आयु के बच्चों के साथ खेलने लगे। किन्तु तीन-चार वर्ष की आयु के बच्चों में गोबिन्द राय अनोखें खेल ही खेलते। वे अधिकांश गंगा के किनारे रेत के मैदान में खेलना पसंद करते। वे वहां पर बच्चों की टोलियां बनाकर मल्ल युद्ध करते अथवा एक दूसरे को पराजित कर युद्ध का अभ्यास करते, इस प्रकार गोबिन्द राय सदैव नायक की भूमिका में होते बाकी बच्चें उनके आदेश अनुसार कार्यरत रहते। यूं तो बालक सभी चंचल-चपल होते हैं परन्तु गोबिन्द राय की बाल-सुलभ शरारते अनोखी थी। इनकी सभी क्रिड़ाओं में कोई न कोई रहस्य अवश्य ही छिपा रहता था।

वहीं मुहल्ले में एक कूआं था। उस का पानी मीठा और स्वादिष्ट होने के कारण दूर-दूर से स्त्रियां पानी भरने आती थी। गोबिन्द राय जब बालको के साथ खेलने निकलते तो वे अधिकांश समय बाग-बगीचों में फल-फूल तोड़ने में व्यस्त रहते। फलों का ऊँचे पेड़ों पर होना उनके लिए समस्या होती। इस कार्य को सहज में सुलझा लेने के लिए। बच्चों ने मिलकर गुलेल का निर्माण कर निशाना लगाने का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। फिर क्या था बच्चों को नई-नई शरारतें सूझतीं वे आपस में शर्ते लगाते, कि किस का निशाना अचूक है बस इसी बीच उन्होनें पनघट की स्त्रियों के एक घड़े को निशाना बना डाला। घड़ा फूट गया। वे स्त्रियां बिगड़ गई और लगी गालियां देने। बच्चों को उनकी गालियों में आन्नद आने लगा। इस तरह वे और चंचल हो गये। जैसे ही स्त्रियां पानी भर कर घर को लौटतीं, तब बच्चे छिपकर गुलेल से उन के घड़ो को निशाना बना देते जिससे घड़े में छिद्र हो जाता और पानी की धारा बह निकलती, जिसे देख बच्चें खूब खुश होकर नाचनें लगते। इस पर पनिहारने छटपटातीं ओर बच्चों का पीछा करतीं। परन्तु बच्चे भाग जाते, इस प्रकार यह छुपा-छुपी का खेल चलता रहता। एक दिन उन स्त्रियों ने माता गुजरी जी तथा दादी मां नानकी जी को शिकायत की कि उनका बेटा गोबिन्द राय बच्चों से मिलकर उनके घड़े फोड़ देता हैं। इस पर माता जी ने उन पनिहारिन स्त्रियों को सांत्वना देते हुए पीतल की गागर लेकर दे दी किन्तु गोबिन्द राय जी को तो निशाना लगाने और पनहारिनों को सताने में आन्नद मिलता था। वे धनुष-बाण बनाकर ले आये थे और छिपकर पीतल की गागरों में निशाना साधने लगे थें। गोबिन्द राय का निशान बाकी बच्चों की अपेक्षा अचूक होता जिससे पीतल की गागरों में भी छिद्र हो जाते और पानी धारा बनकर प्रवाहित हो जाता। पनिहारने फिर मिलकर माता जी को शिकायत करने आई कि उनका लाल बहुत नटखट है मानता ही नहीं और उन्हें सताने में उसे आन्नद मिलता हैं। माता जी तथा दादी मां ने बालक गोबिन्द राय को खूब समझाया कि पनिहारिनों को सताना ठीक नहीं, तो उत्तर में गोबिन्द राय कहते- कि व तो उन की गागरे नहीं छेकना चाहते परन्तु वे ही उसे चिढ़ाती हैं और कहती हैं लो फोड़ले घड़ा उन्हें तो पीतल की गागर मिलेगी। इस पर माता जी गम्भीर हो गई और उन्होंने समस्या का कोई हल न पाकर प्रभु चरणों में प्रार्थना की कि उस कुएं का पानी खारा हो जाना चाहिए। प्रार्थना स्वीकार हुई पानी खारा हो गया। पानी खारा हो जाने के कारण पनिहारियों ने आना बन्द कर दिया जिस से स्वयं ही समस्या का समाधान हो गया।

एक दिन एक श्रद्धालु पुरूष ने एक स्वर्ण के कंगनों का जोड़ा बालक गोबिन्द राय के लिए दादी मां नानकी जी को भेंट में दिया जो उसी समय उनको पहिना दिये गये। इस पश्चात एक दिन गोबिन्द राय जी ने अन्य बालकों के हाथों में कंगन न पाकर स्वयं के कंगनों को व्यर्थ जाना और गंगा किनारे खेलने चले गये। खेलते-खेलते सभी बच्चे गंगा में पत्थर-कंकर आदि जोर से फेंकने लगे। तब गोबिन्द राय जी ने अपने हाथों का एक कंगन उत्तार कर जोर से गंगा में फेंक दिया। घर लौटने पर माता गुजरी जी तथा दादी मां नानकी जी ने गोबिन्द राय का एक हाथ का कंगन न पाकर प्रश्न किया "बेटा कंगन कहां है?" इस पर गोबिन्द राय जी ने सहज में उत्तर दिया, "गंगा घाट पर शक्ति परीक्षण में कंगन से निशाना साधा था।" तब माता जी गोबिन्द राय से रूष्ट हुई परन्तु उनके अनोखे अंदाज को देख आत्मा विभोर होने लगी और दोबारा पूछा, "वह स्थान बता सकते हो जहां तुमने कंगन फेंका है" इस पर गोबिन्द राय कहने लगे, "हां! क्यो नहीं, मेरे साथ चलो, अभी बता देता हूं।" इस पर माता जी ने अपने साथ गोताखोर लिये और गंगा घाट पर पहुंचे। जब गोता खोर पानी में उतरे तो गोबिन्द राय ने दूसरा कंगन हाथ से उतारकर माता जी को दिखाया और उसे पूरी शक्ति के साथ पानी में वहीं फेंका जहां पहला कंगन फेंका था और बोले, "देखो! माता जी मैंने कंगन वहां फेंका था।" यह चंचल्ता देखकर माता जी मुस्करा दीं और गोता खोरो को वापस बुला लिया।

पण्डित शिवदत्त जी

गोबिन्द राय अपनी आयु के बच्चों के साथ प्राय: गंगा किनारे ही खेलते थे। मुख्य घाट पर अभ्यागतों अथवा साधु-संतो का भी आवागमन बना रहता था। उस घाट के निकट, एक एकांत स्थान पर एक वृक्ष के नीचे एक राम-भक्त पण्डित शिवदत जी भी नित्य प्रति आसन जमाते थे। वे पण्डित जी ज्योतिष विद्या मे परंगत थे अत: इनके पास भी जिज्ञासू आते जाते रहते थे और इनकी जीविका श्रद्धालुओं की दक्षिणा से चलती थी। संध्या समय जब पण्डित जी अवकाश पाते तो पूजा-अर्चना में व्यसत हो जाते। पण्डित जी अपने समक्ष राम जी की एक मूर्ति रखते और उस को लडूओं का प्रसाद भेट् चढ़ाते और मन में प्राय: विचार करते, कि उसे भगवान की पूजा करते हुए अनेक वर्ष गुजर चुके हैं। परन्तु भगवान ने प्रत्यक्ष दर्शन देने का कष्ट तक नहीं किया। इस पर वे पवित्र हृदय से बाल रूप मोहिनी मुर्ति राम चन्द तथा लक्ष्मण इत्यादि भाईयों

को याद कर नेत्र द्रवित कर लेते और इस प्रकार वह ध्यान मग्न हो जाते। एक दिन उन की अराधना रंग लाई। बाल गोबिन्द तथा अन्य बालक खेलते-खेलते वहीं आ गये और उन्होने चुपके से पण्डित जी के आगे से लड्डूओं का पिटारा उठाया और सभी बच्चों ने आपस में बांट लिया। जैसे ही बच्चों की चहचहाट पण्डित जी ने सुनी वह सावधान हुए किन्तु बच्चे वहां खाली पिटारी छोड़ हुड़दंग मचाते चल दिये। पण्डित जी उनके पीछे भागे किन्तु वे सब छु मंत्र हो गये। पण्डित जी उनको विस्मय स्थिति में देखते ही रह गये। अगले दिन पण्डित जी पुन: नित्य कर्म अनुसार फिर भगवान के दर्शनों की अभिलाषा लिए प्रार्थना में लीन हो गये तभी गोबिन्द राय फिर अपनी टोली के साथ आ गये और फिर मिठाई की पिटारी उठा ली। तभी पण्डित जी की समाधि भंग हुई वह लगे छटपटाने और उन्होने बच्चों को डांट लगाई किन्तु गोबिन्द राय बोले "स्वयं ही याद करते हो और बुलाते हो। जब हम आते है तो तिरस्कर पूर्वक व्यवहार करते हो।" पण्डित जी ने बाल गोबिन्द को ध्यान पूर्वक देखा तो उनको अचम्भा हुआ उनके सामने गोबिन्द, राम रूप में परिणत हो गए। उन्हें गोबिन्द में राम के दर्शन होने लगे। वे परम आनंद के रस में सराबोर हो गए। आँख झपकी, तो फिर वहीं बालक गोबिन्द की मुस्कराती छवि सामने थी। पण्डित श्रद्धा से भरकर द्रवित नेत्रों से गद्‌गद् होकर, नतमस्तक हो बार-बार प्रणाम करने लगा।

गोबिन्द राय की निर्भीकता

एक दिन पटना (साहब) नगर के मुख्य बाजार में स्थानीय नवाब की सवारी गुजरनी थी। उन दिनों की परम्परा अनुसार आगे-आगे नगाड़ची ऊँचे स्वर में चिल्ला रहा था - बा-इज्जत, बा-मुलाहिजा होशियार पटना (साहब) के नवाब साहब तशरीफ ला रहे हैं। यह वाक्य सुनते ही स्थानीय लोग अपने-अपने स्थान पर पंक्तिबद्ध होकर सिर झुका प्रणाम करने की मुद्रा में खड़े हो गये। किन्तु गोबिन्द राय को यह सब बहुत विचित्र सा लगा कि जन-साधारण एक व्यक्ति विशेष के सम्मान में अकारण नत-मस्तक हो पराधीनता प्रकट करें उन्होंने तुरन्त आपने साथी बच्चों को इस के विपरीत क्रीड़ा करने का निर्देश दिया। तब क्या था, सभी बालक अंग-रक्षको का मुंह चिढ़ाने लगे और उनका परिहास करते हुए ऊधम मचाने लगे। जब उनको अंग-रक्षक पकड़ने दौड़े तो वे इधर-ऊधर भाग गये।

नवाब रहीम बख्श ने पुछताछ की कि वे बालक कौन थे? क्योंकि पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था कि कोई व्यक्ति अथवा बालक अनके अंग रक्षको की अवहेलना करे और उनको चुनौती दे। जब उसे ज्ञात हुआ कि उन बालकों की अगुवाई गुरू तेग बहादुर जी का सुपुत्र गोबिन्द राय कर रहा है तो वह उनकी निभर्यता के कारण श्रद्धा में आ गया और उसने वह उपवन (सुन्दर वाटिका) गुरू घर को समर्पित कर दिया जिस में कुछ वर्ष पूर्व गुरू तेग बहादुर जी ने विश्राम किया था।

सौभाग्यवती रानी विश्वम्भरा

मैणी गोत्र-खत्री जागीरदार, राजा उपाधि से विभुषित फतेह चन्द, पटना (साहब) नगर की घनी आबादी में एक विशेष हवेली में निवास करते थे। प्रभु का दिया इनके पास सभी कुछ था परन्तु सन्तान सुख नहीं था। उनकी पत्नी रानी विश्वम्भरा बस इसी चिन्ता में खोई रहती थी। जब वह बालक गोबिन्द राय को अन्य बच्चों के साथ खेल-कुद में व्यस्त देखती तो उस का मन भर आता और उस के हदय में ममता अगंडाइयां लेने लगती परन्तु वह साहस नहीं बटोर पाती थी कि गोबिन्द राय को अपने आंगन मे बुलाये। किन्तु उसके हृदय में गोबिन्द राय की मोहिनी मूर्ति उतरती ही जाती थी वह न चाह कर भी गाबिन्द राय की ओर खिंची चली जाती। गोबिन्द राय का आकर्षण उसकी ममता की भूख को और उभारता रहता। अत: वह मां बनने के उपायें खोजने में, एक दिन अपने पति राजा फतेहचन्द को साथ लेकर गंगा के घाट पर पण्डित शिव दत्त के पास पहुंची। विश्वम्भरा ने अपनी दयनीय व्यथा पण्डित जी को सुनाई और कहा-कि वे ज्योतिष विद्या के महान् ज्ञाता है वे कृप्या बताये कि उसको कोख कब हरी होगी। पण्डित जी ने बहुत ध्यान पूर्वक रानी जी का हाथ देखा और भविष्य पढ़ा और बताया कि उसके भाग्य में संतान सुख नहीं हैं। इस पर रानी जी रूदन करने लगी। दया दृष्टि से परिपूर्ण पण्डित जी बोले हां एक उपाय है यदि गुरू नानक देव जी के तौवें उत्तराधिकारी तेगबहादुर जी के पुत्र गोबिन्द राय, जो कि अभी नन्हीं आयु के है आप की प्रार्थना सुन लेते हैं तो आप को पुत्र प्राप्ति का वरदान मिल सकता है क्योंकि वह बाल रूप में पूर्णपुरूष हैं। यह सुनकर राजा फतेह चन्द ने प्रश्न किया कि उनको कैसे अनुभव हुआ कि वह बालक पराक्रमी बालक हैं। उत्तर में पंडित जी ने कहा - कि वे तो जानते हैं कि वे शुद्ध राम भक्त हैं। वे जब-जब राम चन्द जी की अराधना में बैठता हैं तो यही नटखट बालक उनके ध्यान में राम रूप हो प्रकट हो जाता है। अत: वह बालक नहीं, उसके लिए साक्षात् परम पुरूषोतम राम ही है।

तब रानी विश्वम्भरा ने पण्डित जी की बात का समर्थन किया और कहा पण्डित जी बिल्कुल ठीक कहते हैं वह बालक गोबिंद राय कोई दिव्य ज्योति हैं।

इस प्रकार यह दम्पति नई उमंग लेकर घर लौट आया।

रानी विश्वम्भरा मन ही मन गोबिन्द राय की छवि का ध्यान कर आत्म-विभोर होने लगी। एक दिन उसने विशेष रूप में मन एकागर कर प्रभु चरणों में प्रार्थना प्रारम्भ की। तभी उस के कानों में मधुर स्वर गुंजा मां-मां मुझे भूख लगी है और दो नन्हीं बाहें उसके गले में डाले आलिगंन करते हुए गोबिन्द राय बोले मां मैं आ गया हूँ आँखे खोलो और पलक झपकते ही वे उसकी गोदी में जा बैठे। रानी विश्वम्भरा अपनी कल्पना साकार होते देखकर हर्षित हो उठी। उसका रोम-रोम मातृत्त्व से पुलकित हो गया। उसे अहसास हुआ वह चिर सिंचित कामना पा गई

है। उसने गोबिन्द को अपने गले से लगाया और प्यार में तल्लीन हो गई। उसके नेत्र में स्नेह भरी आंश्रु धारा बह निकली। उसे कुछ होश आई तो गोबिन्द राय का मस्तिष्क चूमा और प्यार से सहराने लगी। फिर पूछा बेटा क्या खाओगे अभी तैयार किये देती हूँ उत्तर में गोबिन्द राय ने कहा-मां आप ने जो रसोई में तैयार रखा है वही पूरी-चने ठीक रहेगें। अब माता को आश्चर्य हुआ कि उन्हें कैसें मालूम कि उसने आज पूरियां-चने बनाये हैं। उत्तर में गोबिन्द राय कहने लगे कि उन्हें उन पकवानों की सुगन्ध जो आ रही हैं। जैसे ही माता जी पकवान लेने रसोई में गई। वैसे ही गोबिन्द राय ने बाहर आंगन में खड़े बच्चों को संकेत से भीतर बुला लिया। बच्चें ऊद्धम मचाने लगे।

माता विश्वम्भरा की हवेली में एक छोटा सा बाग भी था जिस में भाँति-भाँति के फल समय अनुसार लगते रहते थे। उन दिनों अमरूद तथा बेर का मौसम था जिसे बच्चे निशाना साध कर गुलेल अथवा तीर से तोड़ने की कला मे व्यस्त रहते थे। आज संजोग से गोबिन्द राय अपनी मित्र मण्डली के साथ वहां आ निकले और अराधना में लीन मां की गोदी में जा विराजे।

तभी माता पूरीयाँ-चने लाई और सभी बच्चों में बांट दिया। गोबिन्द राय ने माता जी से कहा - मां आप चिन्ता न करें मैं आप का पुत्र हूं। मैं प्रतिदिन आपके पास आता रहूगां। और वह अन्य बालकों के साथ आमोद-प्रमोद करते गंगा किनारे की ओर चले गये और मां उनका अलौकिक सौंदर्य निहारती ही रह गई।

श्री गुरू तेग बहादुर साहब को पंजाब गये बहुत लम्बा समय होने पर बालक गोबिन्द राय जी को पिता जी की याद सताने लगी वे जब भी घर लौटते माता जी से प्रश्न करते- माता जी अब तो बहुत दिन हो गये हैं पिता जी का कोई संदेश नहीं आया वह हमें कब वापस बुला रहे हैं? इस पर माता गुजरी जी अथवा दादी मां नानकी जी कह देती बेटा तुम्हारे पिता जी नया नगर बसाने में व्यस्त है जैसे ही सभी कार्य सम्पन हो जाएंगे वे तुरन्त अपने पास बुला लेगें। इस बीच गुरूदेव जी की ओर से समय-समय पर पत्र आते रहते परन्तु उन में कुछ समय और प्रतिक्षा करने को कहा जाता इस प्रकार बालक गोबिन्द राय की आयु लगभग छः वर्ष होने लगी तो उनको पंजाब से पिता जी का पत्र प्राप्त हुआ कि वे सब सेवकों सहित पंजाब लौट आये।

मामा कृपाल चन्द जी ने सभी सेवकों को आदेश दिया कि "तैयारी की जाये क्योंकि वे पंजाब जा रहे हैं।" यह समाचार फैलते ही गुरूदेव जी का परिवार पंजाब जा रहा है रानी विश्वम्भरा तथा उसका पति फतेहचन्द वियोग के एहसास में रूदन करने लगे। तभी बालक गोबिन्द राय नित्य की तरह आकर माता विश्वम्भरा की गोदी में बैठ गये ओर बोले "मां, तू मेरे लिए इतनी क्यों बेचैन है? मैं तुझ से अलग कभी भी नहीं हो सकता, मैं तो तेरे हृदय, मन, मस्तिषक के कोने-कोने में रमा रहूँगा। मां इस संसार में मुझे बहुत कार्य करने हैं। दुखी मानवता का उद्धार करना है, इसलिए मैं जा रहां हूं। तू चिन्ता न कर।" मां गद्-गद् होकर आंसू बहाने लगी और बेटे गोबिन्द राय का सुन्दर मुख चूमती प्यार करती बोली "बेटा गोबिन्द, मुझ से रहा नहीं जाएगा। मैं जी नहीं सकूंगी। यह सुनकर गोबिन्द राय भी द्रवित नेत्रों से मां के गले लिपट गये और बोले-मां तू विश्वास रख मैं नित्य तेरे आंगन में बालको की मण्डली सहित आया करूगां और उन्हीं में तू मुझे पाएगी। इस प्रकार रानी विश्वम्भरा आश्वस्त हो गई और गोबिन्द राय पंजाब के लिए प्रस्थान कर गयें।

गुरू परिवार की पंजाब वापसी

जब गुरू तेग बहादुर जी का सारा परिवार पटना (साहब) से चला तो पटना (साहब) की संगत भी साथ ही उमड़ पड़ी। बहुत समझाने पर वे लोग 14 कोस दूर दानापुर से वापिस विदा हुए। वहां पर एक वृद्ध माता ने स्नेह भरे हदय से गोबिन्द राय को खिचड़ी बनाकर खिलाई। वहां पर आज माता की याद में हाड़ी साहब नामक धर्मशाला है। कुछ वर्ष पूर्व गुरू तेगबहादुर साहब भी इसी मार्ग से प्रचार करते हुए पटने से होते हुए पंजाब गये थे। अतः रास्ते में जो भी बड़े नगर थे उन नगरों में पहले से ही गुरू घर के श्रद्धालुओ की बहुत विशाल संख्या थी इस लिए जब नगर वासियों को ज्ञात होता कि गुरूदेव जी का परिवार वापस पंजाब जा रहा है तो वे श्रद्धावश वहां कुछ दिन ठहरने को बाध्य करते और बालक गोबिन्द राय के दर्शनों के लिए संगत उमड़ पड़ती। वहां दीवान का आयोजन किया जाता और कीर्तन कथा का प्रवाह चलता। दानापुर क्षेत्र में भक्त गिरि नाम के एक सिख थे जो गुरमति का प्रचार किया करते थे। वे पहले बौद्ध संन्यासी (भिक्षुक) हुआ करते थे। किन्तु गुरू हरिराय साहब जी से सिक्खी धारण करके सिख धर्म के प्रचार में लीन हो गये थे। वे भी गुरू परिवार का स्वागत करने के लिए पहुंचे। इस प्रकार दानापुर से आए, डुमरा और बकसर आदि ठिकानों पर ठहरते हुए गुरू-परिवार छोटे मिरजापुर पहुंचा। वहां पर गुरू की सिक्खी काफ़ी फैली हुई थी। संगत में बड़ा उत्साह था। अतः उन्होने आग्रह किया कि वे कुछ दिन वे उन्हें भी सेवा का अवसर प्रदान करें और सत्संग से उन्हें कृतार्थ करें। मामा कृपाल चन्द जी संगत को बहुत मान देते थे। अतः वे संगत के आग्रह पर तीन दिन वही सत्सग द्वारा स्थानीय जनता को निहाल करते रहें। तद् पश्चात गुरू परिवार चलकर बनारस (काशी) पहुंचा। वहां सिक्खों की भारी संख्या थी। भाई जवेहरी मल जी वहीं पर सिक्खी का प्रचार करते थे। वे दर्शनों को आए। वहीं पर जौनपुर की संगत भी दर्शन को आ गई। जौनपुर में भाई गुरबख्श जी मसंद गुरमति प्रचार की सेवा निभा रहे थे। इस प्रकार गुरू परिवार नगर-नगर पड़ाव करता इलाहाबाद(प्रयाग) आयोध्या, लखनऊ आदि स्थानों पर पहुंचा। किन्तु जैसे जैसे निकट के नगरो में संदेश पहुंचता कि गुरू परिवार पंजाब जा रहा है तो वहां की संगत के प्रतिनिधि विनती करने पहुंच जाते कि गुरू परिवार उनके भी नगर अवश्य पधारें क्योंकि गुरूदेव जी के साहबज़ादे के दर्शनों को संगत ललायित रहती हैं। संगत के स्नेह को देखते हुए मामा जी ने निर्णय लिया कि उन्होनें संगत का अनुरोध स्वीकार करना है भले ही उन्हें समय अधिक लगे अथवा रास्ता लम्बा हो।

इस प्रकार गुरू परिवार प्यार का बाधा संगत के अनुरोध पर कानपुर पहुंच गया वहां पर संगत को कृतार्थ करते हुए ब्रह्मवरत, बनुर, आगरा, मथुरा होते हुए आए। पीलीभीत और नानक मतों के निवासी अपने प्रतिनिधि द्वारा अनुरोध करने में सफल हो गये कि गुरू परिवार उनके नगर में से होकर जाए। मामा कृपाल चन्द जी दिल्ली होकर सीधा पंजाब जाना चाहते थे किन्तु संगत का अनुरोध उन्होंने स्वीकार किया और सभी स्थानों पर पहुँच कर रिहायश करते हुए पंजाब लौटने का कार्यक्रम निश्चित कर लिया। फिर धीरे-धीरे हरिद्वार,अम्बाला जिले के कस्बे लखनौर (साहब) पहुंचे वहां आनंदपुर (साहब) से गुरू तेगबहादूर जी की तरफ से माता नानकी जी को संदेश मिला कि परिवार कुछ दिन लखनौर (साहब) में ही पड़ाव डाले। वे उचित समय देखकर उनको आनंदपुर (साहब) आने का आदेश भेजेंगे।

मामा कृपाल चन्द जी ने गुरूदेव जी की आज्ञा अनुसार लखनौर (साहब) में ही डेरा डाल दिया। वहां पर जेठा नामक गुरू का एक मसंद(प्रचारक)रहता था। उसे गुरू तेगबहादूर साहब जी की आज्ञा मिली थी कि वह साहबजादा और परिवार को अभी लखनौर (साहब) में ही रखे। इसी प्रेमी भाई जेठा ने गुरू परिवार के ठहरने का आदर सम्मान भरा प्रबंध किया। वहां पर उनको घर जैसी सुख-सुविधायें प्रदान कीं आसपास के गांव के सिक्ख तथा स्थानीय जनता श्रद्धा भक्ति से दर्शनों को आने लगी। सांझ और प्रात:काल कीर्तन-दीवान आदि आयोजित होने लगे। सारा दिन चहल-पहल लगी रहती। गोबिन्द राय जी घोड़ सावारी करते, बालक इक्ट्ठे करके, तीर अंदाजी के खेल खेले जाते। इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे। वहां पर अंदाजन सभी कुओं का जल खारा था। लोग मीठें जल के लिए कोसो पैदल चलते थे। लोगों का कष्ट देखकर एक दिन माता गुजरी जी ने एक विशेष स्थान चुनकर वहां पर कुंआ खोदने का आदेश दिया। जैसे ही मजदूरों ने स्थान खोदा तो नीचे से एक प्राचीन काल से दबा हुआ कुंआ निकला। इस पर से मिट्टी हटाई गई तो इसमें से प्रभु कृपा से मीठा जल प्राप्त हुआ। इस कुंए का नाम वहां की जनता ने माता जी के नाम पर ही रख दिया।

पीर आरफदीन जी

एक दिन बालक गोबिन्द राय अपनी आयु के बच्चों के साथ खेल रहे थे कि तभी वहां से एक पीर जी की सवारी निकली जिन का नाम आरफदीन था। उन्होंने गुजरते समय आपको पहचान लिया। वह तुरन्त पालकी में से नीचे उत्तरे। उनके साथ उनके मुरीदों की भीड़ थी। पीर आरफदीन, गोबिन्द राय जी के पास आये और चरण बंदना (सिजदा) करने लगे। गोबिन्द राय जी का मस्तिष्क दिव्य ज्योति से सुशोभित हो रहा था। उसने स्तुति में 'वाह-वाह उच्चारण किया और दर्शन-दीदार करके अपने को धन्य मानने लगे। फिर हाथ जोड़कर आपको एक ओर ले जाकर कहा - कि उस पर भी वे कृपा दृष्टि करें और वचन लेकर विदा ली। जहां तक गोबिन्द राय दिखाई पड़ते रहे वहां तक वे पैदल गये और फिर पालकी पर बैठकर अपनी राह चले गये। आश्रम के मुरीदों में एक ने उनसे प्रश्न किया कि वे गैर मुस्लिम के आगे क्यों झुके? कृप्या इस बात का रहस्य बताए! जबकि वे स्वयं खुदा प्रसत शरह वाले महान पीर है? इस पर पीर आरफदीन जी बोले कि वे स्वाभाविक अदब में भर गये थे। यह सच्ची बात है कि जो कुछ उन्होंने देखा है वहीं सुना रहा हूँ :- कभी-कभी जब वें अंतर्ध्यान होकर समाधि स्थित हुआ करते हैं और दरगाह में पहुंच बनाते हैं तो उन्हें वही बालक नूरानी-जामा पहने जगमगाता हुआ अनुभव होता है जिसे रूहानी नूर ही नूर फैलता चल जा रहा हैं। और जिसका जलाल (तेजस्व) सहन नहीं हो पा रहा हो। उनकी पहुंच अल्लाह की निकटता में हैं। मैंने उसे वहां देखा है और आज यहां रूबरू (प्रत्यक्ष) देखकर इमान लाया हूँ क्योंकि अल्लाह ने उसे स्वयं भेजा हैं। यहीं कुफ्र-जुल्म मिटायेगा। इसलिए तुम सब अदब में आओ।

लखनौर कस्बे में गुरूदेव जी के परिवार को रहते लगभग दो माह व्यतीत हो गये तब श्री गुरू तेगबहादुर साहब ने उनको नये नगर आनंदपुर (साहब) में आने का आदेश भेजा। इस अतंराल में गुरू जी ने आपने परिवार तथा साहबजादे के आगमन के लिए स्वागत की तैयारियां सम्पूर्ण कर ली थी। अब गोबिन्द राय जी की आयु लगभग 7 वर्ष की हो चुकी थी। परिवार लखनौर से चलकर राणों माजरा, कलौड़, रोपड़ आदि नगरों से होता हुआ कीरतपुर (साहब) पहुंचे। वहां पर गुरू हरिगोबिंद साहब जी के साहिबजादे बाबा सूरज मल जी के यहां ठहरे। बाबा जी के परिवार ने आप जी के आगमन पर बहुत प्रसन्ता प्रकट की। आनंदपुर (साहब) से कई मसंद और प्रमुख सिख अगवानी करने आए। आनंदपुर (साहब) पहुचंने पर संगत ने परिवार का भव्य स्वागत किया और समस्त नगर में हर्ष और उल्लास छा गया। परिवार पटना (साहब) से चलकर सन् 1673 मार्च को आनंदपुर (साहब) पहुंच पाया।

प्रारम्भिक शिक्षा

आनंद पुर (साहब) नगर में सभी आवश्यकताओं के लिए लगभग निमार्ण कार्य हो चुका था। अत: गुरू तेगबहादुर साहब जी ने बाल गोबिन्द राय के लिए भाषा-ज्ञान का सुचारू प्रबन्ध किया। एक ही समय उन्हें देवनागरी, गुरूमुखी तथा फारसी लिपियों का ज्ञान करवाने के लिए विशेष अध्यापकों की नियुक्ति की गई। इन में फारसी के लिए मुंशी मीर मुहम्द, संस्कृत के लिए पण्ड़ित कृपा राम जी (मटन निवासी) तथा गुरूमुखी अक्षर ज्ञान के लिए गुरू घर के ग्रंथी मुंशी साहिब चन्द जी को चुना गया। गुरूदेव जी के समक्ष विषम परिस्थितियां थी अत: उन्होंने अवकाश के समय गोबिन्द राय को खेल-खेल में युद्ध विद्या में भी निपुण करने का निर्णय लिया। इसलिए उन्होंने बालक गोबिन्द को तैराकी, घुड़ सवारी, भाला चलाना, निशाना लगाना इत्यादि प्रत्येक प्रकार की शस्त्र विद्या सिखवाई। बालक गोबिन्द राय बहुत ही प्रतिभाशाली थे। अत: उनके अध्यापक उनकी प्रतिभा से बहुत प्रभावित होते थे। इस लिए उन्हें विश्वास हो गया था कि गोबिन्द राय भविष्य में उच्च-कोटि के लेखक तथा शस्त्र-विद्या मे प्रवीण सेनानी बनेंगे। बाल्यवस्था का कुछ भाग पटना (साहब) बिहार में बिताने के कारण उनकी भाषा में बिहारी उच्चारण का

समावेश भी हो गया था।

औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार

औरंगजेब ने सम्राट बनते ही हिन्दुओं पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। और सरकारी आदेश प्रचारित किया गया कि हिन्दुओं के मन्दिरों को शीघ्र धराशाही कर दिया जाये। 2 नवम्बर 1665 ईस्वी को शाही फरमान द्वारा औरंगजेब ने हुक्म दिया कि अहमदाबाद और गुजरात के परगनों में उसके सिंहासनरूढ होने के पहले कई मन्दिर उसकी आज्ञा से तहस-नहस किये गए थे, उनका पुननिर्माण कर लिया गया है और मूर्ति-पूजा पुन: शुरू हो गई है। अत: उसके पहले हुक्म की ही तामील हो।

आज्ञा मिलने की देर ही थी कि मन्दिर फिर से धड़ाधड़ गिराये जाने लगे मथुरा का केशवराय का प्रसिद्ध मन्दिर, बनारस का गोपीनाथ मन्दिर, उदय पुर के 235 मन्दिर, अम्बर के 66, जयपुर, उज्जैन, गोलकुंडा, विजयपुर और महाराष्ट्र के अनेकों मन्दिर ढाह दिये गए। मन्दिर तहस-नहस करने पर ही बस नहीं हुई। 1665 ही के एक अन्य फरमान द्वारा दिल्ली के हिन्दुओं को यमुना किनारे मृतकों का दाह-संस्कार करने की भी मनाही कर दी गई। हिन्दुओं के धार्मिक रीति रिवाजों पर औरंगजेब का यह सीधा हमला था। इसके साथ ही विशेष आदेश इस प्रकार जारी किये गये कि सभी हिन्दुओं को एक विशेष कर (टैक्स) पुन: देना होगा। जिसे जज़िया कहते थे। कुछ नरेशों को छोड़कर सभी हिन्दुओं को घोड़ा अथवा हाथी की सवारी से वर्जित कर दिया गया। इस प्रकार के कुछ अन्य फरमान भी जारी किये गये जिस से हिन्दुओं के आत्म गौरव को ठेस पहुंची। इन सभी बातों का तात्पर्य था कि हिन्दू लोग तंग आकर स्वयं ही इस्लाम स्वीकार कर लें। तब हिन्दुओं की ओर से इस प्रकार के आदेशों से कई स्थानों पर विद्रोह हुए इन में मध्य भारत के स्थान अधिक थे। सरकारी सेना ने विद्रोह कुचल डाले। परन्तु सेना को भी कुछ क्षती उठानी पड़ी। अत: औरंगजेब को अपनी नीति को लागू करने के लिए नई युक्तियों से काम लेने की सूझी और उसने कूटनीति का रास्ता अपनाया। सन् 1669-70 में उसने पूरी तरह मन बना लिया था कि इस्लाम के प्रचार के लिए एक ओर से सिलसिले बार हाथ डाला जाए। उसने इस उद्देश्य के लिए कश्मीर को चुना। क्योंकि उन दिनों कश्मीर हिन्दू सभ्यता संस्कृति का गढ़ था। वहां के पण्डित हिन्दू धर्म के विद्धानों के रूप में विख्यात थे। औरंगजेब ने सोचा कि यदि वे लोग इस्लाम धारण कर लें तो बाकी अनपढ़ व मूढ़ जनता को इस्लाम में लाना सहज हो जायेगा और ऐसे विद्वान, समय आने पर इस्लाम के प्रचार में सहायक बनेंगे और जन-साधारण को दीन के दायरे में लाने का प्रयत्न करेंगे। अत: उसने इफ़तखार ख़ान को शेर अफगान का खिताब देकर कश्मीर भेज दिया और उसके स्थान पर लाहौर का राज्यपाल (गवर्नर) फिदायर-खान को नियुक्त किया।

गुरू दरबार में कश्मीरी पण्डितों की पुकार

इफ़तखार-खान ने पण्डितों पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। हिन्दुओं को बल पूर्वक मुसलमान बनाया जाने लगा। इनकार करने वाले के लिए मृत्यु-दण्ड दिया जाता। इन अत्याचारों के विरूद्ध कश्मीर के लोगों की पुकार सुनने वाला कोई न था। पण्डितों ने अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार देवी-देवताओं की आराधना की और उनके आगे हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सहायता के लिए प्रार्थना की परन्तु उनकी प्रार्थनाओं का कोई प्रभाव न हुआ। किसी भी दैवी शक्ति ने उनकी सहायता न की। अन्तत: लाचार होकर हिन्दुओं ने एक सभा बुलाई और इस संकट का कोई उपाय निकालने की युक्ति सोचने लगे। ताकि किसी तरह धर्म सुरक्षित किया जा सके। अन्त में वे इस निर्णय पर पहुंचे कि गुरू नानक देवजी के नौवें उत्तराधिकारी गुरू तेगबहादुर जी के पास जाकर यह समस्या रखी जाए, क्योंकि उस समय वही एक मात्र मानवता एवं धर्म निरपेक्षता के पक्षधर थे। अत: मटन निवासी कृपा राम जो कि गोबिन्द राय जी को संस्कृत पढ़ाते थे और उन दिनों छुट्टियां लेकर घर आये हुए थे, उसके नेतृत्व में काश्मीरी पण्डितो का एक प्रतिनिधि मण्डल पंजाब में आनंदपुर (साहब) पहुंचा। वास्तव में वे कोई सरल समस्या लेकर आये तो नहीं थे। काश्मीरी गैर-मुस्लिमों पर होने वाले अत्याचारों का विवरण पाकर गुरू तेग बहादुर सिहर उठे और करूणा में पसीज गये। गुरूदेव जी को प्रतिनिधि मण्डल ने कहा - उन्हें औरंगजेब के कहर से तथा हिन्दू धर्म की डूब रही नैया को बचायें। गुरूदेव जी भी बलपूर्वक व अत्याचार द्वारा किसी का धर्म परिवर्तन करने के सख्त विरूद्ध थे। वे स्वयं जन-साधारण में जागृति लाने के लिए उपदेश दे रहे थे कि - न डरो और न डराओ अर्थात

भय काहू कौ देत नहिं, नहिं भय मानत आन।

इसलिए प्रतिनिधि मण्डल की विनती पर नौवें गुरूदेव जी विचार मग्न हो गये। तभी गुरूदेव जी के 9 वर्षीय पुत्र गोबिन्द राय जी दरबार में उपस्थित हुए। जब उन्होंने प्रतिदिन के, हर्ष-उल्लास के विपरीत उस स्थान पर सन्नाटा तथा गम्भीर वातावरण पाया तो बाल गोबिन्द राय ने अपने पिता जी से प्रश्न किया - "पिता जी, आज क्या बात है, आप के दरबार में भजन कीर्तन के स्थान पर यह निराशा कैसी?" गुरूदेव जी ने उस समय बालक गोबिन्द राय को टालने का प्रयत्न किया और कहा- "पुत्र! तुम खेलने जाओ।" परन्तु गोबिन्द राय कहां मानने वाले थे। अपने प्रश्न को दोहराते हुए वह कहने लगे - "पिता जी खेल तो होता ही रहता है। मैं तो बस इतना जानना चाहता हूँ कि ये सज्जन कौन हैं? तथा इन के चेहरों पर इतनी उदासी क्यों?"

गुरूदेव जी ने बताया, "ये लोग काश्मीर के पण्डित हैं। इन का धर्म संकट में है, ये चाहते हैं कि कोई ऐसा उपाय खोज निकाला

जाए जिससे औरंगजेब इन हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का अपना आदेश वापस ले ले।"गोबिन्द राय जी तब गुरूदेव जी से पूछने लगे, "आपने फिर क्या सोचा है?" गुरूदेव जी ने कहा - बेटा ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब औरंगजेब की इस नीति के विरोध में कोई महान व्यक्तित्व अपना बलिदान दे!" यह सुनकर गोबिन्द राय जी बोले, "फिर देर किस बात की है? आप से बड़ा धर्म रक्षक व लोक प्रिय सत्पुरूष और कौन हो सकता है? ये पण्डित जब आपकी शरण में आये हैं तो आप इनके धर्म की रक्षा करें। क्योंकि गुरू नानक देव जी के उत्त्ताधिकारी होने के नाते, उनके सिद्धान्तों पर पहरा देना आपका कर्तव्य हैं। उनका कथन है-'जो शरण आये तिस कंठ लाये।' यही उनकी बिरद है।" गोबिन्द राय के मुख से यह वचन सुनकर गुरू तेग बहादुर जी अति प्रसन्न हुए तथा बोले, "बेटा तुमसे मुझे यही आशा थी। बस मैं यही सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था।" संगत भी गोबिन्द राय के विचार सुनकर अवाक् और भावुक हो गई।

गुरूदेव जी ने तब काश्मीरी पण्डितों को औरंगजेब के पास संदेश देकर दिल्ली भेजा कि उसके धर्म परिवर्तन अभियान के विषय में गुरू नानक देव के नौवें उत्त्ताराधिकारी गुरू तेगबहादुर जी उससे बात-चीत करना चाहते हैं। यदि गुरू तेगबहादुर जी उस के अभियान का समर्थन करते हैं तो वे स्वयं ही इस्लाम धारण कर लेंगे। बस फिर क्या था। इस संदेश के प्राप्त होते ही औरंगजेब अति प्रसन्न हुआ। उसका विचार था कि समस्त पंण्डितों व हिन्दुओं को इस्लाम में लाने की राह मिल गई है।

मुगल सम्राट औरंगजेब के मन में एक विचार उत्पन हुआ कि यदि वह समस्त भारत की बहुमत हिन्दू जनता को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश कर दें तो उस का साम्राज्य कभी भी समाप्त नहीं होगा। इस विचार को साकार करने के लिए वह बहुत से उपाय सोचने लगा। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने सर्व प्रथम जोर ज़बरदस्ती की, तथा लोगों को मुसलमान बनाने के लिए बहुत से हथकण्डों को इस्तेमाल किया। फलस्वरूप कई स्थानों पर विद्रोह भी हुए। इस दमन चक्र में बहुत से सैनिक भी मारे गये। इस पर उसके मंत्रियों ने उसे परामर्श दिया कि बल-प्रयोग द्वारा धर्म परिवर्तन पर खतरे अधिक हैं। इससे प्रयोजन की सफलता में भी शंका बनी रहेगी। अत: उन्हें युक्ति से काम लेना चाहिए और यह नीति बनाई गई कि हिन्दू सभ्यता के मूल स्रोत काश्मीर के यदि हिन्दू विद्वानों ने इस्लाम धारण कर लिया तो उनके अनुयायी स्वयं ही मुसलमान हो जाएंगे। जिससे वह लम्बा जोखिम भरा कार्य बहुत सरल हो जाएगा।

किन्तु दूसरी ओर हिन्दू धर्म में फूट और दुर्बलता इतनी अधिक थी कि उनकी सुख-शांति समाप्त हो चुकी थी। क्योंकि उनमें एकता और सहयोग का बल था ही नहीं। जिससे वे अपने को बचाव के उपाय सोच सकें। अत: इस्लाम में दाखिल होकर वे विजयी और शासक समूह के सदस्य बन जाते थे। उन्हें हिन्दू धर्म की दुर्बलताओं, ऊँच-नीच के भेद-भाव, घृणा आदि से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता था। इसी कारण शूद्र जातियों ने हिन्दू धर्म की तुलना में इस्लाम को रहमत समझा और प्रसन्नता के साथ इस्लाम में प्रवेश करने लगे। इन प्रवृतियों के कारण उनको बलात् मुसलमान बनाने की ओर औरंगजेब का कोई विशेष ध्यान न था। वे तो अपनी इच्छा से ही अपनी परतंत्रता से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए चले आते थे। अत: औरंगज़ेब तो केवल उच्च वर्ग स्वर्ण जातियों को बलात् मुसलमान बनाना चाहता था।

यह ही कारण था कि उसने काश्मीर में मुसलमान बनाने के लिए सारी शक्ति खर्च कर दी। उस समय तक सिक्खों की दशा प्रयाप्त मात्रा में अच्छी और मजबूत हो चुकी थी। उनका कुछ दबदबा भी बन गया था। उनका अपना धर्म प्रचार भी कायम था। गुरू हरिगोबिन्द साहिब, समय की सरकार से टक्कर लेकर विपक्षी सेनाओं को कई बार हरा भी चुके थे। शायद इसी कारण काश्मीरी ब्राह्मण अपनी दु:खमयी कथा लेकर गुरू तेग बहादुर जी के पास आये थे।

औरंगज़ेब ने तुरन्त आन्दपुर (साहब) में अपने दूत भेजे और गुरू तेगबहादुर साहब को दिल्ली लेकर आने को कहा। उन दूतों ने गुरूदेव जी को औरंगज़ेब का संदेश सुनाया और कहा वे उनके साथ दिल्ली तशरीफ ले चलें। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा - उनके द्वारा औरंगज़ेब का संदेश उन्हें मिल गया है वे स्वयं ही दिल्ली पहुंच जाएंगे। अभी उन्हें आश्रम के कुछ आवश्यक कार्य निपटाने हैं इससे दूत दुविधा में पड़ गये किन्तु कुछ प्रमुख सिखों ने उन्हें समझाया कि गुरूदेव जी वचन के पूरे हैं वे चिंता न करें वे जल्दी ही दिल्ली पहुंचेगे। यह आश्वासन लेकर वे लौट गये। तद्पश्चात गुरूदेव जी ने प्रमुख सिक्खों की सभा बुलाई और उसमें निर्णय लिया गया कि गुरूदेव जी पहले उन स्थानों पर जाए, जहां औरंगज़ेब द्वारा जनता पर दमन चक्र चलाया जा रहा है भयभीत जनता को जागृत किया जाए और उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर उनका मनोबल बढ़ाया जाए। इस पर गुरूदेव जी ने घोषणा की, कि उनके पश्चात गुरू नानक देव जी की गद्दी के उत्त्तराधिकारी गोबिन्द राय जी होगें। परन्तु औपचारिकताएं समय आने पर कर पूरी दी जाएंगी।

जब गुरूदेव जी दिल्ली प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने अपने साथ पांच विशेष सिक्खों को साथ लिया, भाई मती दास जी, भाई दायाला जी, भाई सती दास जी, भाई गुरदिता जी तथा भाई उदध जी। किन्तु माता नानकी जी और पत्नी गुजरी जी बहुत वैराग्य करने लगी। तब गुरूदेव जी ने उन्हें ब्रह्मज्ञान की बातें बताई और उनके विवेक को जागृत किया। परन्तु बहुत सी संगत साथ चलने लगी। इस पर गुरूदेव जी ने एक रेखा खींच कर सभी को आदेश दिया कि वे घरों को लोट जाए और यें उस रेखा से आगे न आयें। इस प्रकार संगत वापस चली गई और गुरूदेव जी आनंदपुर (साहब) से पांच सिक्खों समेत रोपड़ पहुंचे।

गुरूदेव जी जब दिल्ली के लिए चलने वाले थे तो देश भर में यह बात फैल गई। यदि बादशाह गुरू तेग बहादुर जी को मुसलमान बना ले, तो देश के सभी गैर मुसलमान अपना मजहब बदल लेंगे। इसी बात का स्पष्टीकरण करते हुए गुरूदेव जी लोगों को सांत्वना देते हुए आगे बढ़ने लगे। गुरूदेव जी रोपड़ से सैफाबाद पहुंचे। वहां उन्होंने लोगों की गलत फहमियां दूर करते हुए उनको धीरज बंधाया और प्रभु पर भरोसा

रखने को कहा। वहां पर आप के एक श्रद्धालु व्यक्ति सैयद सैफउल खानजी निवास रखते थे। आप उनके स्नेह के बन्धे कुछ दिन वहीं ठहरे रहे। फिर सैफाबाद से समाणा तथा कैथल, जींद, कनौड़ होते हुए आगे बढ़ने लगे। आप उन सभी स्थानों पर पहुंचे जहां की जनता पर औरंगज़ेब के आदेशों के अनुसार शासक वर्ग ने अत्याचार किये थे। इन अत्याचारों से पीड़ित कई स्थानों पर वहां के कबीलों ने विद्रोह किया था। उन लोगों ने गुरूदेव जी को बताया कि प्रशासन की तरफ से आदेश है कि जो हिन्दू इस्लाम स्वीकार नहीं करते उनके खेत जब्त कर लिये जाए और हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से निकाल दिया जाए उसके विपरीत यदि कोई हिन्दू इस्लाम स्वीकार करता है तो उसे सरकारी नौकरियां तथा उन्नति के सभी साधन उपलब्ध करवाए जाते हैं। यदि इस नीति के विरोध में कोई विद्रोह करता है तो उसे मृत्यु दण्ड दिया जाता है। परिणाम स्वरूप दमन चक्र में बहुत लोग मारे गये। गुरूदेव जी ने वहां की भयभीत जनता को आत्म ज्ञान देकर उत्साहित किया। और जागृति अभियान बहुत सफल रहा जन-साधारण में नई चेतना उमड़ पड़ी और मृत्यु को वे एक खेल समझने लगे।

गुरूदेव जी को आनंदपुर (साहब) से प्रस्थान किये बहुत दिन हो गये थे। दिल्ली में औरंगज़ेब उनकी बहुत बे-सबरी से प्रतीक्षा कर रहा था। जब वे नहीं पहुंचे तो उसने गुरूदेव जी को खोजकर गिरफतार करके लाने का आदेश दिया और उनका पता ठिकाना बताने वाले को पुरस्कृत करने की घोषणा की।

आगरे में एक निर्धन व्यक्ति जिसका नाम सयद हसन अल्ली था। उसने विचार किया कि यदि बादशाह द्वारा घोषित पुरस्कार की राशि उसे मिल जाए तो उसकी गरीबी और घरेलू मजबूरियां समाप्त हो जाये। अत: वह हृदय से गुरूतेगबहादुर साहब की अराधना करने लगा कि! यदि वह सच्चा मुर्शिद है तो उसकी पुकार सुने और यह गिरफतारी उसके हाथों करवाएं ताकि वह अपनी पोती का विवाह सम्पन्न कर सके। बस फिर क्या था गुरूदेव जी स्वयं ही सय्यद हसन के घर पहुंच गये परन्तु वह गुरूदेव जी के दीदार करके अपना लक्ष्य भूल गया वह प्रेम में सेवा करने में व्यस्त हो गया। गुरूदेव जी ने उसे कहा कि अब वे उसके हाथों गिरफतारी देना चाहते हैं ताकि उसे एक हजार रूपये की राशी प्राप्त हो सके परन्तु वह गुरूदेव जी के चरणों मे गिर पड़ा और विनती करने लगा कि अब उससे यह गुनाह मत करवाएं वह तो केवल निर्धनता के कारण विचलित हो गया था। इस पर गुरूदेव जी ने युक्ति से काम लिया और उसके पोते को बुलाया जो कि भेड़ों को चराने का कार्य करता था। उसे एक दुशाला और एक हीरे की अंगूठी दी और कहा कि नगर में जाकर हलवाई से मिठाई खरीद लाओ। वह भोला गडरिया, हलवाई से जब मिठाई खरीदने लगा तो हलवाई ने कीमती वस्तुएं गडरिये के पास देखकर उसे थाने में पकड़वा दिया। थानेदार ने बालक गड़रिये को धमका कर रहस्य जान लिया और गुरूदेव जी को सय्यद हसन अल्ली के यहां सें की गिरफतार कर लिया। इस प्रकार पुरस्कार की राशी हसन अल्ली को दिलवा दी गई। गिरफतारी के समय तीन सेवकों ने भी अपनी गिरफतारी दी। अन्य सेवकों को गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि वे बाहर रह कर जन-साधारण में जागृति लाने का कार्य करें तथा आनंदपुर (साहब) में परिवार के साथ सूचनाओं के आदान-प्रदान से सर्पक बनाये रखें।

गुरूदेव जी की गिरफतारी का संदेश जब औरंगज़ेब को प्राप्त हुआ तो उसने अपनी सेना के वरिष्ट अधिकारियों को आदेश दिया कि गुरू तेगबहादुर जी को बा-इज्ज़त, परन्तु कड़े पहरे में दिल्ली लाया जाए। ऐसा ही किया गया। गुरूदेव जी को उनके साथी सिक्खों सहित एक भूत बंगले में ठहराया गया। विश्वास किया जाता था कि वह भवन शापित था और उस में प्रेत आत्माएं रहती थीं जो कि वहां ठहरने वालों को मार डालती थी अर्ध रात्रि को वहां एक काणा तथा करूप व्यक्ति फल लेकर आया और उसने अपने घर पर आगन्तुकों को पाकर उनको भयभीत करने का असफल प्रयास किया। जब उस का वश नहीं चला तो उसने शान्तचित, अड़ोल गुरूदेव जी के समक्ष पराजय स्वीकार कर ली। तथा मित्रता स्थापित करने के लिए गुरूदेव जी को फल भेंट किये। गुरूदेव जी ने उस की प्रेम भेंट स्वीकार करते हुए, फलों को पांच भागों में बांट कर सेवन किया। गुरूदेव जी ने उस व्यक्ति से पूछा कि वह वहाँ क्यों रहता हैं और वहां आने वालो की हत्या क्यों करता हैं उत्तर में उसने बताया - कि उसका चेहरा भद्दा हैं और एक आँख से काणा हैं इसलिए लोग उस से घृणा करते है इसीलिए ही वह एकान्त वास में समाज से दूर रहता हैं। वह किसी की हत्या नहीं करता केवल अपने प्रतिद्वन्दी को भयभीत करता हैं ताकि वह उसके निवास पर कब्जा न करें किन्तु लोग अक्सर डर अथवा भयभीत होकर मर जाते है। क्योंकि उनकी हृदय गति आतंक से रूक जाती हैं। गुरूदेव जी ने उसके कल्याण के लिए उसे भजन करने का उपदेश दिया और कहा कि मानवता की सेवा करो तब उस से कोई घृणा नहीं करेगा। प्रात: पहरेदारों ने जब गुरूदेव जी तथा उनके साथियों को प्रसन्नचित पाया तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दूसरे दिन गुरूदेव जी तथा अन्य सिक्खों का भव्य स्वागत किया गया और औरंगज़ेब ने एक विशेष गोष्टि का आयोजन किया। जिसमें मुल्लाओं काज़ियों तथा उमराओं ने गुरुदेव जी के संग विचार विमर्श मे भाग लिया।

औरंगज़ेब ने भी स्वयं उस गोष्ठि के संयोजक के रूप में भाग लिया और गुरूदेव जी से कहा कि वह निवेदन पत्र उसे हिन्दू जनता के प्रमुखों से प्राप्त हुआ है कि आप उनका नेतृत्व करेंगे। जबकि आप स्वयं बुत-परस्त (मूर्तिपूजक) अथवा देवी-देवताओं के उपासक नहीं हैं। और उनकी तरह एक खुदा को ही मानने वाले हो। फिर आप अपने सिद्धान्तों के विरूध इन काफिरों का पक्ष क्यों ले रहे हो? गुरूदेव जी ने इसके उत्तर में कहा कि "हिन्दुओं का पक्ष लेने की कोई बात नहीं, यह तो केवल मानवता के मूल सिद्धान्तों की तरफदारी है। अत: शासक वर्ग को प्रजा के व्यक्तिगत जीवन मे कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। कोई राम जपे या रहीम इन बातों से प्रशासन को कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। यदि शासन व्यवस्था में कोई बाधा डालता हैं तो वही व्यक्ति दण्डनीय होना चाहिए। परन्तु बिना किसी कारण केवल अपने मज़हबी जनून में आकर प्रजा का दमन करना उचित नहीं। इस पर औरंगज़ेब ने कहा कि वह चाहता है कि अरब देशों की तरह भारत वर्ष में भी एक सम्प्रदाय, केवल 'दीन' ही हो। जिससे सभी प्रकार के आपसी मतभेद सदैव के लिए समाप्त हो जाएंगे। वास्तव में पैंगबर हज्ज़रत मोहम्मद साहब का यह

आदेश है कि सभी काफिरों को बलपूर्वक मोमन बनाना चाहिए ऐसा करने वाले को बहिशत (स्वर्ग) अथवा सब्ब (पुण्य) प्राप्त होगा। अत: उसें इन काफिरों पर दया आती है और विचार उत्पन होता है कि इन काफिरों (नास्तिकों) को खुदा प्रस्त(आस्तिक) बनाकर इनका जन्म सफल कर दें। इसलिए उसने प्रतिज्ञा की है जो मुहम्मदी बनेगा उसको सभी प्रकार की सुख सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएगी अन्यथा इसके विपरीत मृत्यु दण्ड भी दिया जा सकता है।

गुरूदेव जी ने उत्तर दिया जिस क्षेत्र में केवल मोहम्मदी ही रहते है क्या वहां शिया सुन्नी झगड़े नहीं होते? जैसे एक बगीचे में भान्ति-भान्ति के फूल खिले हुए होने पर उस का सौन्दर्य बढ़ जाता है ठीक इसी प्रकार यह विश्व उस प्रभु की सुन्दर वाटिका है जिसमें भांति-भांति के विचारों वाले मनुष्य उसके हुक्म अथवा उसकी इच्छा से उत्पन्न होते हैं। यदि प्रकृति को तुम्हारी बात स्वीकार होती तो वह हिन्दुओं के यहां सन्तान ही न पैदा करती। इसके विपरीत मुसलमानों के यहां ही संतान उत्पन होतीं जिसे सभी अपने आप मुसलमान हो जाते और यह निर्णय अपने आप लागू हो जाता।

मुल्लाओं ने कहा कि हिन्दू लोग अकृतघन हैं। वे उनके लिए अपने प्राणों की आहुति दे दें तो भी वे समय आने पर पीठ ही दिखायेंगे। क्योंकि यह किसी का परोपकार मानते ही नहीं। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा कि वह तो निस्वार्थ तथा निष्काम मानवता के हित के लिए कार्य करते हैं यदि जुल्म हिन्दू करते। तो वे उस के पक्षधर होते, जो मज़लूम होता अर्थात वे दीन-हीन और अशक्त व्यक्तियों पर आत्याचारों के सख्त विरोधी हैं। भले ही वह हिन्दू हो अथवा मुस्लिम।

अन्त में औरंगजेब ने गुरूदेव जी के समक्ष इस्लाम स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा और कहा कि यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लेते हैं तो वह सब उन के मुरीद बन जायेंगे। अन्यथा वह, उनकी हत्या करवा देगा। इसके उत्तर में गुरूदेव जी ने फरमाया कि उनको किसी प्रकार का भय नहीं, क्योंकि शरीर तो नश्वर है, उसका क्या मोह! मृत्यु तो एक अटल सच्चाई है। अत: जन्म-मरण सब एक खेल मात्र हैं। इस पर मुल्लाओं ने कहां कि यदि वे कोई करामात दिखाते हैं। तो मृत्यु दण्ड बखशा जा सकता है। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा कि वह प्रकृति के कार्यो में हस्तेक्षप नहीं करते अत: चमत्कारी शक्तियों का प्रदर्शन एक मदारी की तरह नहीं करते। मुल्लाओं ने कहा कि पीर फकीर अथवा गुरू-मुरशिदों में चमत्कारी शक्तियों का होना, उनका आवश्यक अंग हैं फिर आप कैसे गुरू-पीर हैं? इस पर गुरूदेव जी ने कहा उनकी हत्या कर के देख ले वे मरेंगे नहीं। बस यही उनकी करामात होगी। मुल्ला गुरूदेव जी के इस कथन के रहस्य को न समझ सके। वे विचार करने लगे शायद उन की गर्दन इतनी कड़ी हो जाएगी कि तलवार के वार से नहीं कटेगी इत्यादि .... वे समय की प्रतिक्षा करने लगे।

औरंगजेब का मूल लक्ष्य तो गुरूदेव जी को इस्लाम स्वीकार करवाना था न कि उनकी हत्या करवाना अत: वह उन को यातनाएं देने का कार्यक्रम तैयार करने लगा जिससे पीड़ित होकर वह स्वयं ही इस्लाम स्वीकार कर लें। इस प्रकार उसने गुरूदेव जी तथा उनके साथ तीन सिक्खों को कारावास में विशेष काल कोठरियों में बन्दी बनाकर रखा। जहां उनको भूखा-प्यास रखा जाने लगा। यह समाचार कारावास के सफाई कर्मचारी द्वारा बाहर के सम्पर्क रखने वाले सिक्खों को प्राप्त हुआ तो उन्होंने स्थानीय सिक्खों को यह बात बताई। उन सिक्खों ने मिलकर गुरूदेव जी के लिए लंगर (भोजन) तैयार किया और प्रार्थना की कि गुरूदेव जी आप समर्थ हैं कृपया उनका प्रसाद स्वीकार करें। प्रार्थना समाप्त होने पर गुरूदेव जी तथा अन्य शिष्य उनके द्वार पर खड़े थे। उन सिक्खों ने जी भर के गुरूदेव जी की सेवा की। निकट ही मौलवी का घर था यह सूचना जब मौलवी को मिली कि गुरू तेगबहादुर पड़ोसी सिक्खों के यहां भोजन कर रहे हैं तो वह स्वयं देखने आया और देखकर औरंगज़ेब को सूचित किया कि बन्दी खाने की व्यवस्था ठीक नहीं हैं उस पर ध्यान दो। परन्तु जांच-पड़ताल पर गुरूदेव जी तथा अन्य शिष्य वहीं पाये गये। इस पर प्रशासन की ओर से और अधिक कड़ाई की जाने लगी। औरंगजेब के आदेश से एक विशेष प्रकार का पिंजरा मंगवाया गया। जिसकी नोकीली सलाखें अन्दर को मुड़ी हुई थी। इसमें कैदी हिल-जुल नहीं सकता था क्योंकि सलाखों की नोक कैदी के शरीर को भेदती थी। अब इसी पिंजरे में गुरूदेव जी को बन्द कर दिया गया। जिससे गुरूदेव जी के शरीर पर बहुत से घाव हो गये। वहां के संतरियों को आदेश दिया गया कि उन घावों पर पिसा हुआ नमक का छिड़काव किया जाए। जिससे कैदी को जलन हो और वह पीड़ा के कष्ट को न सहन कर पाएं किन्तु गुरूदेव जी शान्तचित अडोल थे। इस प्रकार की यातनाएं देख कर वहां पर तीनों कैदी सिक्ख मन ही मन बहुत दुखी हो रहे थे। उन्होंने प्रार्थना की कि हे प्रभु उन्हें बल दो कि आत्याचार के विरूध कुछ कर सकें। अगले दिन सफाई कर्मचारी गुरूदेव जी के लिए भेंट के रूप में एक गन्ना लेकर आया। गुरूदेव जी ने उस के स्नेह के कारण वह गन्ना दांतो से छीलकर सेवन किया और छिलके वहीं पिंजरे के बाहर फेंक दिये जिन्हें उठाकर उन छिलको को पुन: उन सिक्खों ने प्रसाद रूप में सेवन किया। जो पिंजरे के बाहर वहीं कैद थे। सीत प्रसाद सेवन के तुरन्त बाद वे सिक्ख अपने में अथाह आत्मिक बल का अनुभव करने लगे। तभी उन्होंने आपस में विचार विमर्श कर गुरूदेव जी से प्रार्थना की कि यदि वे स्वयं उस आत्याचारी शासन के विरूध कुछ नहीं करना चाहते तो कृपया उन्हें आज्ञा प्रदान करें वे आत्मबल से अत्याचारियों का विनाश कर डालें। यह सुनकर गुरूदेव जी मुस्कुराए और पूछने लगे यह आत्म बल उनमें कहां से आया है। उत्तर में सिक्खों ने बताया कि उनके सीत प्रसाद सेवन करने मात्र से वह सिद्धि प्राप्त हुई हैं। इस पर उन्होंने कहा अच्छा निकट आकर आर्शीवाद प्राप्त करो। जैसे ही उन्होंने निकट होकर मस्तिष्क झुकाया गुरूदेव जी ने उनके सिर पर हाथ धर कर उनको दिव्य दृष्टि प्रदान की। उस समय सिक्खों ने अनुभव किया गुरूदेव जी अन्नत शक्तियों के स्वामी विशाल समर्था वाले पहाड़ की तरह अडोल प्रभु आदेश की प्रतिक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तत्पर खड़े हैं। यह दृश्य देखकर वे गुरूदेव जी से क्षमा याचना करने लगे कि वे तुच्छ प्राणी उनकी कला को पहचान नहीं पाये और विचलित होकर मन-मानी करने की आवज्ञा करने लगे थे।

यह सब कुछ वहां पर खड़े संतरी और दरोगा इत्यादि लोग सुन रहे थे उन्होंने इस घटना का विवरण औरंगज़ेब तक पहुंचा दिया। औरंगज़ेब ने उन तीनों सिक्खों को अगले दिन दरबार में मंगवाया और उस घटना की सच्चाई जानी और कहा कि वे लोग इस्लाम स्वीकार कर ले नहीं तो अपने कथन अनुसार विनाश करके दिखाओ। नहीं तो मौत के लिए तैयार हो जाओ। सिक्खों ने उत्तर दिया कि उन्होंने तो गुरूदेव जी से आज्ञा मांगी थी किन्तु उन्होंने आज्ञा दी नहीं अन्यथा वे कुछ भी करने में समर्थ हैं किन्तु अब वे मृत्यू दण्ड के लिए तैयार हैं। इस पर सम्राट ने उन तीनों को अलग-अलग विधि से मौत के घाट उतारने का आदेश दिया।

भाई मती दास जी की शहीदी

अगले दिन भाई मती दास को योजना अनुसार चाँदनी चौक के ठीक बीचो बीच हथकड़ियों बेड़ियों तथा जंजीरों से जकड़ कर लाया गया। जहां पर आजकल फव्वारा है। प्रशासन की क्रूरता वाले दृश्यों को देखने के लिए लोगों की भीड़ एकत्रित हो चुकी थी। भाई मती दास का चेहरा दिव्य आभा से दमक रहा था। भाई साहब शांतिचित और अड़ोल प्रभु भजन में व्यस्त थे। मृत्यु का पूर्वाभास होते हुए भी उनके चेहरे पर भय का कोई चिन्ह न था। तभी काज़ी ने उनको चुनौती दी और कहा कि भाई मती दास क्यों व्यर्थ में अपने प्राण गंवा रहे हो। हठधर्मी छोड़ो और इस्लाम को स्वीकार कर लो जिस से वह ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत कर सकोगे प्रशासन की तरफ से सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ उसें उपलब्ध करावाई जाएंगी। इसके अतिरिक्त बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया जायेगा। यदि वह मुसलमान हो जाए तो हज़रत मोहम्मद साहब उसकी गवाही दे कर उसे खुदा से बहिश्त दिलवायेंगे। अन्यथा उसे यातनाएँ दे-दे कर मार दिया जायेगा।

भाई मती दास जी ने उत्तर दिया, क्यों अपना समय नष्ट करते हो? वह तो सिक्ख सिद्धातों और उस पर अटल विश्वास से हज़ारो बहिश्त न्यौछावर कर सकता है। गुरु के श्रद्धावान शिष्य अपने गुरुदेव के आर्दशों की पालना करना ही सब सुखों का मूल समझता हैं। अत: जो श्रेष्ट और निर्मल धर्म उसे उसके गुरु ने प्रदान किया है। वह उसे अपने प्राणों से अधिक प्रिय हैं। इस पर काज़ी ने पूछा कि ठीक हैं। मरने से पहले उसकी कोई अतिंम इच्छा हैं तो बता दो। मती दास जी ने उत्तर दिया कि उसका मुंह उसके गुरु की ओर रखना ताकि वह उनके अंत समय तक दर्शन करता हुआ शरीर त्याग सके।

लकड़ी के दो शहतीरों के पाट में भाई मती दास जी को जकड़ दिया गया। और उनका चेहरा श्री गुरु तेग बहादुर जी के पिंजड़े की ओर कर दिया गया। तभी दो जल्लादों ने भाई साहब के सिर पर आरा रख दिया। काज़ी ने फिर भाई साहब को इस्लाम स्वीकार करने की बात दोहराई किन्तु भाई मती दास जी उस समय गुरूवाणी उच्चारण कर रहे थे और प्रभु चरणों में लीन थे। अत: उन्होंने कोई उत्तर न दिया। इस पर काजी की ओर से जल्लादों को आरा चलाने का संकेत दिया गया। देखते ही देखते खून का फव्वारा चल पड़ा और भाई मती दास के शरीर के दो फाड़ हो गये। इस भयभीत तथा क्रूर दृश्य को देखकर बहुत से नेक इनसानों ने आंखो से आंसू बहाये किन्तु पत्थर हृदय हाकिम इस्लाम के प्रचार हेतु किये जा रहे आत्याचार को उचित बताते रहे।

भाई मती दास जी ने अपने प्राणों की आहुति देकर सदा के लिए वह अमर हो गये। उनकी आत्मा परम ज्योति मे जा समाई और उनका बलिदान सिक्खों तथा विश्व के अन्य धर्मावलाम्बियों का पथ प्रदर्शक बन गया। भाई मती दास गुरू घर में कोषाध्यक्ष (दीवान) की पदवी पर कार्य करते थे और गुरूदेव जी के परम स्नेही सिख भाई परागा जी के पुत्र थे।

शहीदी भाई दयाला जी

समय की हकूमत द्वारा चलाई हुई आत्याचार की इस आंधी के दूसरे शिकार थे भाई दयाला जी। अगले दिन भाई दयाला जी को बन्दीखाने से बाहर, चौक में लाकर उन्हें काज़ी द्वारा फतवा (दण्ड) सुनाया गया कि यदि वे इस्लाम को स्वीकार कर लें तो उन्हें जीवन दान दिया जाये अन्यथा उबलते हुए पानी की देग में उबाल कर मार दिया जाये।

काज़ियो ने भाई साहब को इस्लाम के गुणों पर व्याख्यान सुनाया और ऐशों आराम के जीवन तथा स्वर्गो मे हूरों की प्राप्ति के बारे में अनेकों झांसे दिये किन्तु भाई साहब अपने सिखी विश्वास में अडोल रहे इस पर उन्होंने डराना- धमाकाना प्रारम्भ किया और कहा कि उन्होंने उसके साथी को इस्लाम न स्वीकार करने पर निर्दयता से मौत के घाट उतार दिया है। अब उसकी उससे भी अधिक दुर्दशा की जायेगी।

भाई दयाला जी ने उत्तर दिया, भाई मती दास जी को मरा मत समझो बल्कि वह तो मृत्यु से ठिठोली करके, दूसरों के लिए प्रेरणा दायक दिशा निर्देश देकर सदा के लिए अमर हो गये हैं। और अकाल पुरूष के चरणों में स्वीकारीय हो चुके हैं। काज़ी साहब जल्दी करो वह भी भाई मती दास के पास पहुंचने के लिए लालायित है। उसकी अन्तिम इच्छा भी अपने गुरू, श्री गुरू तेगबहादूर साहब के समक्ष शहीद होने की है। तभी काज़ी के फतवे के अनुसार जल्लादों ने देग (बहुत बड़ा बर्तन) में पानी डालकर भाई दयाला जी को बिठा दिया और चूल्हे में आग जला दी। ज्यों-ज्यों पानी गर्म होता गया, त्यों-त्यों भाई जी गुरवाणी उच्चारण करते हुए अपने गुरूदेव जी के सम्मुख अकाल पुरूष के चिन्तन में विलीन होते गये। पानी उबलने लगा। भाई जी के चहरे पर दिव्य ज्योति छाई और वह शांत-चित, अडिग ज्योति-ज्योत समा गये और अपने विश्वास को आँच नहीं आने दी।

जन-साधारण ने देखा कि इतने बड़े दण्ड को शरीर पर झेलते हुए भाई जी ने कोई कड़वा वाक्य नहीं कहा और आपने धार्मिक निश्चय में कहीं भी कोई शिथिलता नहीं आने दी। यह दृश्य देखकर कुछ लोगों ने आंसू बहाये और कुछ ने आहें भरीं और अत्याचारी प्रशासन के विनाश हेतु मन-ही-मन परमात्मा से प्रार्थना करते हुए घरों को चले गये।

शहीदी भाई सती दास जी

तीसरे दिन भाई सती दास जी को बन्दी खाने से बाहर चांदनी चौक में सार्वजनिक रूप से काज़ी ने चुनौती दी और कहा- कि वह इस्लाम स्वीकार कर लें और दुनियां की सभी सुख सुविधाएं प्राप्त कर लें अन्यथा मृत्यु दण्ड के लिए तैयार हो जाएं। इस पर भाई सती दास जी ने उत्तर दिया कि वह मृत्यु रूपी दुल्हन की बड़ी बे-सबरी से प्रतीक्षा कर रह हैं और काज़ी पर व्यंग करते हुए मुस्कुरा दिये। काज़ी बौखला गया और उसने उनको रूई मे लपेट कर जला डालने का आदेश दिया। उसका विचार था कि जीवित जलने से व्यक्ति की आत्मा दोज़क (नरक) को जाती है।

इस प्रकार गुरूदेव जी के तीनों सिख साथी हँस-हँस कर शहीदी पाकर सिख इतिहास में नये दिशा-निर्देश व कीर्तिमान की स्थापना कर गये और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणादायक मार्ग छोड़ गये। भाई सती दास जी गुरू घर में लेखन का कार्य करते थे।

गुरू तेग बहादुर साहब जी की शहीदी

जब औरंगज़ेब अथवा काज़ी, गुरू तेग बहादुर साहब को बातों से प्रभावित न कर सके तो उन्होंने गुरूदेव जी तथा अन्य शिष्यों को कई प्रकार के लालच दिये बात तब भी न बनती देख कर उन्होंने कई प्रकार की यातनाएं दी और मृत्यु का भय दिखाया इस पर उन्होंने अमल भी किया। गुरूदेव जी को भयभीत करने के लिए उनके संग तीनों सिक्खों को क्रमश: आरे से चीर कर, पानी में उबाल कर तथा रुई लिपेट कर जिंदा जलाकर, गुरू जी की आँखो के सामने शहीद कर दिया किन्तु इन घटनाओं का गुरूदेव जी पर कोई प्रभाव न होता देखकर औरंगज़ेब बौखला गया और उसने गुरूदेव जी को शहीद करने की घोषणा करवा दी। इन शहीदी घटना क्रमों को देखते हुए गुरुदेव के अन्य सेवकों ने, गांव रकाब गंज के भाई लक्खी शाह से मिल कर एक योजना बनाई कि गुरु देव के शहीद हो जाने पर उन के पार्थिव शरीर की सेवा सम्भाल तुरन्त की जाए और इस योजना के अनुसार उन्होंने एक विशेष बैल गाड़ी तैयार की। जिस के नीचे एक सन्दूक बनाया गया, जिस का ढक्कन ऊपर से खुलता था। भाई जैता जी नामक सिक्ख गुरुदेव के शीश की सम्भाल करने के लिए अलग से तैयार हुआ।

औरंगज़ेब के इस फरमान के साथ ही प्रशासन ने समस्त दिल्ली नगर में ढिंढोरो पिटवा दी कि 'हिन्द के पीर' गुरु तेगबहादुर को मकर सदी पंचमी संवत 1732 को (11 नवम्बर सन् 1675ई0) चान्दनी चौक चबूतरे पर कत्ल कर दिया जाएगा। इस दृश्य को देखने वहां विशाल जन समुह उमड़ पड़ा जो कि बेबस होने के कारण मूक दर्शक बना रहा।

निश्चित समय गुरुदेव को चबूतरे पर बैठाया गया। गुरुजी तो मानसिक रूप से पहले ही आत्म बलिदान के लिए तैयार होकर आये थे। सच्चे अध्यात्मिक महापुरुष होने के कारण समर्थ होते हुए भी, चमत्कार दिखाकर परमात्मा का शरीक(प्रतिद्वन्दी) बनने की अनीति नहीं चाहते थे। अत: काजियों को हठ से मुक्ति पाने के लिए गुरुदेव ने उन्हें मूर्ख बनाने की ठानी। उन्होंने काग़ज पर फारसी में कुछ लिखकर अपनी गर्दन से बांध लिया और काज़ियों से बोले लो मेरा चमत्कार देखो। मैंने यह तावीज़ लिखकर गले में बांध लिया है। अब तुम्हारा जल्लाद मुझे मार नहीं सकता। काजी चकमे में आ गए। उन्होनें जल्लाद को गुरू जी की गर्दन पर तलवार का वार जरा जोर से चलाने को आदेश दिया परिणामत: गर्दन तो कटनी ही थी, परन्तु उस ताबीज में क्या लिखा है, यह देखने के लिए काज़ी लपके। लिखा था-शहीद कभी मरता नहीं उसके एक-एक बून्द खून से अनेकों शहीद पैदा होते हैं। काज़ी अपना-सा मुंह लेकर रह गये। परन्तु काजियों की जिज्ञासा का लाभ उठाते हुए वहां निकट सट कर खड़े भाई जैता ने लपक कर फुर्ती से गुरूदेव जी का शीश उठाकर अपनी झोली में डाला और भीड़ मे अलोप हो गया तथा बिना रूके, नगर के बाहर प्रतीक्षा में खड़े भाई ऊदा जी से जा मिला। उस समय उन दोनों सिक्खों ने अपनी वेष-भूषा मुगलों जैसी बनाई हुई थी। जिस कारण इनको आनंद पुर (साहब) की तरफ जाने में सहायता मिली।

शीश के लापता हो जाने पर औरंगज़ेब ने शहर भर में ढिढोरा पिटवा दिया कि यदि कोई गुरू का सिख (शिष्य) है तो उन के शरीर का अन्तिम संस्कार करने के लिए आगे आए। परन्तु औरंगज़ेब के भय के कारण गुरूदेव जी की अंत्येष्टि क्रिया के लिए भी कोई सामने नहीं आए। परन्तु योजना के अनुसार, भाई लक्खी शाह अपनी बैल गाड़ियों के काफिले के साथ चान्दनी चौंक से गुजरे जो कि लाल किले में सरकारी सामान छोड़ कर वापस लौट रहे थे। प्रकृति ने भी उन का साथ दिया। उस समय वहां जोरों से आंधी चलने लगी थी। आंधी का लाभ उठाते हुए उन्होंने गुरुदेव के शव पर चादर डालकर झट से उठा लिया और सन्दूक वाली बेल गाड़ी में रखकर ऊपर से ढक्कन बंद कर उस पर चटाई बिछा दी। और गाड़ी हांकते हुए आगे बढ़ गए। आंधी के कारण, वहां पर खड़े सिपाही शव को उठाते समय किसी को भी न देख सके। क्षण भर में शव के खो जाने पर संतरियों ने बहुत खोजबीन की परन्तु वे असफल रहे। इस प्रकार भाई लक्खी शाह का काफिला गुरुदेव का शव गुप्त रूप से ले जाने में सफल हो गया। उन सिक्खों ने तब गुरुदेव के शव को अपने घर के भीतर ही रखकर चिता को आग लगा दी तथा हल्ला मचा दिया कि उन के घर को आग लग गई है। इस प्रकार औरंगज़ेब के भय के होते हुए भी गुरु के सिक्खों ने गुरुदेव का अन्तिम संस्कार युक्ति

से गुप्त रूप में सम्पन कर दिया। (आजकल इस स्थान पर रकाब गंज नामक गुरुद्धारा है।)

दूसरी ओर भाई जैता जी और उन के साथी लम्बी यात्रा करते हुए कीरतपुर (साहब) पहुँचे। जैसे ही यह संदेश माता नानकी जी तथा परिवार को मिला कि गुरुदेव ने अपने प्राणों की आहुति मानवता के मूल अधिकारों की सुरक्षा हेतु दे दी है और उन का शीश एक सिक्ख कीरतपुर (साहब) लेकर पहुँच गया है तो वे सभी सिक्खों सहित अगवानी करने कीरतपुर (साहब) पहुँचे उस समय भले ही वातावरण में दु:ख और शोक की लहर थी परन्तु गोबिन्द राय सभी को धैर्य का पाठ पढ़ा रहे थे और उन्होंने अपनी दादी माँ व माता गुजरी जी से कहा कि गुरुवाणी मार्ग दर्शन करते हुए संदेश देती है।-

जनम मरन दुहहू महि नाही, जन पर उपकारी आए।।
जीअ दानु दे भगती लाइनि, हरि सिउ लैन मिलाए।। पृष्ठ 749

कीरतपुर (साहब) पहुँच कर भाई जैता जी से स्वयं गोबिन्द राय जी ने अपने पिता श्री गुरु तेग बहादुर साहब का शीश प्राप्त किया और भाई जैता जो रंगरेटा कबीले सम्बन्धित थे। उन को अपने अलिंगन में लिया और वरदान दिया ''रंगरेटा गुरु का बेटा''। विचार हुआ कि गुरुदेव जी के शीश का अन्तिम संस्कार कहां किया जाए। दादी मां व माता गुजरी ने परामर्श दिया कि आनंदपुर (साहब) की नगरी गुरुदेव जी ने स्वयं बसाई हैं अत: उन के शीश की अंत्येष्टि वहीं की जाए। इस पर शीश को पालकी में आंनदपुर (साहब) लाया गया और वहां शीश का भव्य स्वागत किया गया सभी ने गुरुदेव के पार्थिक शीश को श्रद्धा सुमन अर्पित किए तद्पश्चात विधिवत् दाह संस्कार किया गया।

कुछ दिनों के पश्चात भाई गुरुदिता जी भी गुरुदेव का अन्तिम हुक्मनामा लेकर आंनदपुर (साहब) पहुँच गये। वह हुक्मनामा उन्हें बन्दी खाने के सफाई र्कमचारी द्वारा प्राप्त हुआ था। हुक्म नामे में गुरुदेव जी का आदेश था कि उन्होंने आंनदपुर (साहब) से चलते समय ने घोषणा की थी कि उनके पश्चात गुरु नानक देव जी के दसवें उत्तराधिकारी गोबिन्द राय होंगे। ठीक उसी इच्छा अनुसार गुरु गद्दी की सभी औपचारिताएं सम्पन्न कर दी जाएं। उस हुक्मनामे पर परिवार के सभी सदस्यों और अन्य प्रमुख सिक्खों ने शीश झुकाया और निश्चय किया कि आने वाली बैसाखी को एक विशेष समारोह का अयोजन कर गोबिन्द राय जी को गुरूगद्दी सौंपने की विधिवत् घोषणा करते हुए सभी धार्मिक पारम्परिक रीतियां पूर्ण कर दी जाएंगी।

गुरूदेव जी के शीश के दाह-संस्कार के पश्चात, गुरूदेव जी के नमित प्रभु चरणों में अन्तिम अरदास के लिए शोक सभा का आयोजन किया गया। जहां गुरू घर के प्रवक्ताओं ने गुरूदेव जी के निष्काम, निस्वार्थ तथा परहित के लिए बलिदान पर अपनी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा - श्री गरू तेगबहादुर साहब जी वास्तव में वचन के शूरबीर थे उन्होंने मज़लूमों के धर्म-रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहुति देकर एक अद्वितीय बलिदान दिया है जो पुकार-पुकार कर उनके इस महान मानवीय सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा है।

"बांह जिन्हांदी पकड़िये, सिर दीजै बांह न छोड़िये।"

वक्ता ने कहा - यहां यह बताना आवश्यक है कि गुरूदेव जी ने काश्मीरी पंडितों की बांह इसलिए नहीं थामी कि वे हिन्दू थे, वे इस लिए कि वे शक्ति हीन थे, अत्याचारों के शिकार थे। न ही औरंगजेब के साथ गुरूदेव जी को इस कारण वैर था कि वह मुस्लमान था। जबकि इस कारण कि वह दीन-हीन और अशक्त व्यक्तियों पर अत्याचार करता था। यदि भाग्यवश औरंगज़ेब, पंडितों के स्थान पर होता और पण्डित, औरंगज़ेब के स्थान पर होते तो गुरूदेव जी की सहायता औरगंज़ेब की ओर होती। वक्ता ने कहा - गुरूदेव जी ने मानव समाज के समक्ष अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। यह बात इतिहास में पहली बार घटित हुई है कि मकतूल (शहीद होने वाला) कातिल (हत्या करने वाला) के पास अपनी इच्छा से गया। ऐसा करके गुरूदेव जी ने उल्टी गंगा बहा दी। अंत में गोबिन्द राय जी ने भी अपने पिता श्री गुरू तेग बहादुर जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा हैं :-

तिलक जञ्जू राखा प्रभ ताका।
कीनो बडो कलू माहि साका।
साधनि हेति इती जिनि करी।
सीसु दीया परु सी न उचरी।
धरम हेति साका जिनि कीआ।
सीसु दीआ परू सिररू न दीआ।
नाटक चेटक कीए कुकाजा।
प्रभ लोगन कह आवत लाजा।
ठीकरि फोरि दिलीसि सिरि प्रभ पुर कीया पयान।
तेग बहादुर सी क्रिआ करी न किनहू आन।
तेग बहादूर के चलत भयो जगत को सोक।
है है है सभ जग भयो जै जै जै सुर लोक। *विचित्र नाटक*

अर्थात- गुरूतेग बहादूर जी ने इस कालियुग में तिलक एवं जनेऊ की रक्षा हेतु अपना शरीर रूपी ठीकरा दिल्ली पति औरंगज़ेब के सिर पर फोड़ दिया है। जिस कारण मात लोक में लोग आश्चर्य में है ही किन्तु देव लोग में भी इस अद्‌भुत घटना पर उन की स्तुति हो रही है। क्योंकि इस प्रकार परहि के लिए इस से पहले कभी किसी ने भी अपने प्राणों की आहुति नहीं दी थी।

जब गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी को भाई गुरदित्ता जी द्वारा ज्ञात हुआ कि गुरू तेगबहादुर साहब जी के पार्थिक शरीर की अंत्येष्टि क्रिया गुप्त रूप में सम्पन की गई क्योंकि औरंगज़ब द्वारा ढिंढोरा पिटा कर चुनौती दी गई थी कि है कोई गुरू का शिष्य! जो उनके शव का अन्तिम संस्कार करके दिखाए!!! इस घटना पर उनको बहुत ग्लानि हुई। अत: वह कह उठे-जिन लोगों की रक्षा हेतु पिता जी ने अपना बलिदान दिया वही लोग वहां पर मूक दर्शक बनकर तमाशा देखते रहे। उनके शहीद हो जाने पर भी किसी ने साहस कर उनकी अंत्योष्टि भी उसी समय स्पष्ट रूप में नहीं की तथा किसी ने भी शासकों के विरूद्ध रोष प्रकट करने हेतु कोई नारे-बाजी नहीं की। समय आने पर सब के सब मुंह छिपाकर भाग खड़े हुए। इसी कारण मानवता के पक्षधर का शव वहां पर पड़ा रहा। भला ऐसे सिक्खों (शिष्यों) की क्या आवश्यकता है जो परीक्षा की घड़ी आने पर जान बचाकर भाग गये हों? सिक्ख तो वही है जो समय आने पर अपने सीने पर हाथ धर कर कहे कि वह गुरूदेव जी का सिक्ख है तथा उन के एक संकेत पर अपना तन, मन, धन न्यौछावार कर सकता है। शिष्य तो ऐसा होना चाहिए जो लाखों लोगों में एक भी खड़ा हो तो वह अपने न्यारेपन के कारण स्पष्ट और भिन्न दिखाइ दे।

औरंगज़ेब ने तो समझा कि गुरू तेगबहादुर की हत्या करवाके उसके मार्ग का रोड़ा सदैव के लिए हट गया है परन्तु इस शहादत ने समस्त भारत वासियों का सीना छलनी-छलनी कर दिया। क्रोध, घृणा और बदले की भवना की ऐसी अग्नि प्रज्वलित हुई कि गुरू नानक के पंथ को शांति और अहिंसा का मार्ग त्याग कर तलवार उठानी पड़ी। इस सब का परिणाम भक्ति में शक्ति आ मिली।

गुरूदेव जी की इस आद्वितीय शहादत की एक विशेषता यह रही कि शेष दुनिया के शहीदों को तो मज़बूरन अथवा बलपूर्वक शहीद किया जाता रहा। परन्तु गुरूदेव जी स्वयं अपने हत्यारे के पास अपनी इच्छा से शहीद होने के लिए आनंदपुर (साहब) से दिल्ली आए। इस निर्लेप और परमार्थ बलिदान के परिणाम भी तो अद्वितीय ही उपलब्ध होने थे। गुरू गोबिन्द सिंघ को मजबूरी में तलवार का सहारा लेना पड़ा। इस सिद्धान्त को उन्होंने स्पष्ट करने के लिए फारसी भाषा में विश्व के समक्ष एक ऐसा नियम प्रस्तुत किया जो जन्म जन्मान्तर के लिए सत्य सिद्ध होता रहेगा।

चूंकार अज़ हमे हीलते दर गज़शत,
हलाल अस्त बुरदन ब-शमशीर दस्त। *(ज़फर नामा)*

भावार्थ जिसका भाव है, जब कोई अन्य साधन शेष न रहे तो व्यक्ति का धर्म है कि तलवार हाथ में उठा ले। ताकत के अहंकार में अंधी हुई मुग़ल सत्ता पर मानवीय दबाव कोई प्रभाव न डाल सकता था। शक्ति का उत्तर शक्ति ही थी।

अपने पूज्य पिता श्री गुरू तेगबहादुर जी की शहादत से गुरू गाबिन्द सिंघ को दो बातें स्पष्ट हो चुकी थीं। एक तो यह कि आशक्त व्यक्ति का कोई धर्म नहीं होता। दुनियां के लालच अथवा मौत का डर देकर उन्हें फुसलाया जा सकता है और धर्म से पतित किया जा सकता है। औरंगजेब के मज़हबी दबाव के नीचे असंख्य हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन कर देना इस बात का सबूत हैं। इन बातों को मुख्य रखकर गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने शक्ति के साथ टक्कर लेने हेतु तलवार उठा ली। इस लिए नहीं कि वे कोई प्रान्त पर विजय प्राप्त कर अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे। न ही इसलिए कि इस्लाम से उन्हें किसी प्रकार का वैर अथवा विरोध था। संयोगवश समय की सरकार मुसलमानों की थी। यदि अत्याचार हिन्दुओं की ओर से होता तो तलवार का रूख उनकी ओर होता। यह तलवार तो धर्म युद्ध के लिए उठाई गई। किसी विशेष मज़हब के विरूध अथवा अधिकार के लिए नहीं। केवल न्याय और मानवता के हेतु गुरूदेव जी ने अपने जीवन का लक्ष्य प्रदर्शित करते हुए स्वयं 'विचित्र नाटक' में लिखा हैं

हम इह काज जगत मो आए।।
धरम हेत गुरदेव उठाए।।
जहां तहां तुम धरम बिथारो।।
दुसट दोखीअन पकरि पछारो।।42।।
इहै काज धरा हम जनमम्,
समझ लेहु साधू सभ मनमां।
धरम चलावन संत उबारन,
दुष्ट समन कौ मूल उपारन।।43।।

दुष्टों का नाश और सन्तों की रक्षा ही उनके जीवन का मनोरथ हैं।

द्वितीय अध्याय

गुरु गद्दी अलंकृत समारोह

गोबिन्द राय जी को गुरु गद्दी समर्पित करने के लिए एक विशेष समारोह का आयोजन किया गया। जिसमें गणमान्य अतिथियों को आमंत्रित करके सभी प्रकार की औपचारिकताएं पूरी करने के लिए एक भव्य समागम रचा गया। गुरू मर्यादा अनुसार बाबा बुड्ढा जी के पौत्र भाई राम कुवर जी द्वारा यह कुलरीति सम्पन्न कर दी गई और श्री गुरू तेग बहादुर साहब के आदेश अनुसार विधिवत घोषणा की गई कि श्री गुरू नानक देव जी के दसवें उत्तराधिकारी आज से गोबिन्द राय जी होंगे। इस समारोह में बहुत दूर-दूर से संगतों ने भाग लिया। जिस से समारोह की चर्चा चारों ओर फैल गई। इस प्रकार गोबिन्द राय जी गुरू पदवी से विभूषित कर दिये गये।

आनन्दपुर का नगर, बिलासपुर के नरेश भीमचन्द के राज्य में था। यह स्थान गुरू तेग बहादुर जी ने मूल्य देकर भीमचन्द के पिता राजा दीपचन्द से खरीदा था। जब उसको गुरू जी के तिलक समारोह का पता चला, तब वह अपने मन्त्री को बुलाकर और गुप्त स्थान पर बैठ कर पूछने लगा – 'मंत्री जी ! सुना है कि हमारे राज्य में एक ऐसी गद्दी नशीनी हुई है जैसा कि इससे पूर्व हमारे यहाँ कभी नहीं हुई। इस देश की इतनी प्रजा हमारे यहाँ कभी भी नहीं आई क्या ये समाचार दिल्ली पति औरंगज़ेब के पास नहीं पहुंचेगे? जिसने देश को कँपा रखा है। जिसने उनके पिता की हत्या करवाई है, क्या वह हम से नहीं पूछेगा कि तुमने अपने राज्य में ऐसा क्यों होने दिया ?' मंत्री जी ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया – राजन ! मुझे समस्त समाचारों का पता है। मैंने अपने पुत्र को वहाँ पर भेजा था कि मुझे पूरा विवरण मिल जाये। अतः वह प्रत्यक्षदर्शी है। राजन ! वह गद्दी गुरू नानक की है। जिनके सिक्ख दक्षिण में सिंहलदीप तक, पूर्व में आसाम तक, पश्चिम में बलख-बुखारे तक और उतर में लद्दाख-तिब्बत तक फैले हुए हैं। उनकी गद्दी के समारोह के समय भीड़ तो अवश्य ही होनी थी। क्योंकि वह पूज्य है। रही बात उनकी विचारधारा की तो वह निर्भय है। औरंगज़ेब ने नवें गुरू की हत्या करवाई है, इससे उनके अनुयायी और अधिक दलेर और साहसी हो गये हैं, दबे नहीं। इसलिए मैंने विचार किया है इनको छेड़कर गले न पड़ने दिया जाये। जैसे कि औरंगज़ेब ने नवें गुरूदेव जी के साथ किया है। इसके विपरीत यदि ये बढ़े तो वह स्वयं समझ लेगा। दशम गुरू अभी बच्चा है। समय ही बतायेगा कि वह कितना प्रतिभावान निकलता है ? अभी आयु है ही कितनी ? यदि औरंगज़ेब हमसे पूछेगा तो हम कहेंगे कि हजूर की ओर से कोई हुक्म आया ही नहीं था इसलिए आपकी राजनैतिक चाल का पता न होने के कारण हमने स्वयं कुछ नहीं किया। इसलिए हे राजन ! मैंने आपकी ओर से दस्तार नहीं भेजी ताकि हम अपनी उदासीनता उस समय स्पष्ट कर सकें। यह सुनकर नरेश सन्तुष्ट हो गया।

गुरू गद्दी पर विराजते ही गुरू गोबिंद राय (सिंघ) जी ने गुरू परम्परा की विचारधारा को भक्ति से शक्ति के परिवेश में बदल लेने का निर्णय कर लिया। यों भी अत्याचारी शासन के विरूद्ध उन्हें घृणा होना स्वाभाविक ही था। बचपन से ही अस्त्र-शस्त्रों तथा शस्त्र विद्या से उन्हें प्रेम था। उनकी बाल-क्रीड़ाएं ऐसे ही आयोजनों से सम्बन्धित होती थीं। अब स्वयं साधिकार होने पर उन्होंने अपने सेवकों में भी शौर्य, उत्साह, समस्त मानवता के प्रति प्रेम की भावनाएं भरना आरम्भ कर दिया। गुरूदेव जी ने सभी प्रकार के शस्त्र इत्यादि एकत्रित करने के लिए समस्त सिख संगतों के लिए एक विशेष आदेश जारी कर दिया कि हमारी प्रसन्नता केवल उन श्रद्धालुओं पर होगी जो रणक्षेत्र में काम आने वाली वस्तुएं भेंट करेंगे। इस प्रकार गुरू गद्दी पर विराजमान होते ही गोबिन्द राय जी ने भविष्य में आने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का सामना करने के लिए तैयारियां प्रारम्भ कर दी। जिसके अन्तर्गत उन्होंने अपने सिख युवकों के भीतर शस्त्र विद्या, घुड़-सवारी, शिकार, तैराकी आदि पुरूषत्वों के खेलों की ओर रूचि बढ़ाना शुरू कर दिया। संगत को तैयार बर तैयार रहने, शस्त्र धारण करने और शस्त्रों का अभ्यास करने को कहा। इन आदेशों को सुनकर गुरसिख युवक अपने शस्त्र और अपना यौवन गुरूदेव जी के चरणों में समर्पित करने के लिए आनंदपुर साहब पहुंचने लगे। आनन्दपुर में गुरूदेव जी ने युद्ध प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित कर दिये। साहस भरने के लिए कई प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन करने लगे और विजयी युवकों को प्रोत्साहन देने के लिए पुरस्कारों से समय समय पर सम्मानित करते। इसके अतिरिक्त आत्मनिर्भर बनने के लिए आनन्दपुर में ही शस्त्र व बंदूकें ढालने का कारखाना भी लगा लिया जिसके लिए दूसरे प्रान्तों से कुशल कारीगर मंगवाए।

गुरूदेव जी ने दरबार में बैठने के नये नियम बनाए। जहां पहले माला लेकर संगत बैठती थी अब योद्धाओं को शस्त्र धारण करके बैठने का आदेश दिया गया और स्वयं भी ताज-कलगी इत्यादि राजाओं जैसी वेश-भूषा पहन कर सिंहासन पर विराजमान होने लगे। आप वीर-रस की कविताओं में रूचि लेने लगे। इस प्रकार आप का अधिकतर समय शूरवीरों की वारें सुनने में व्यतीत होने लगा।

राजा राम सिंह द्वारा घोड़े भेंट

राजा राम सिंह अभी आसाम में ही था कि श्री गुरू तेगबहादुर जी की शहादत हो गई। जब वह दिल्ली पहुंचा तो उसको गुरूदेव जी की शहीदी के विषय में ज्ञात हुआ और उसे औरंगज़ेब पर बहुत ग्लानि हुई। वह गुरूदेव जी के परोपकारों को भला कैसे भुला सकता था। औरंगज़ेब अजमेर की ओर प्रार्थना करने चला गया तभी राजा राम सिंह श्री गुरू गोबिंद राय जी के दर्शनार्थ आनंदपुर आया। उसने पाँच बढ़िया घोड़े भेंट किये और गुरू तेगबहादुर जी को श्रद्धाजंली अर्पित करते हुए शोक व्यक्त किया। किन्तु गोबिन्द राय जी ने समस्त घटनाक्रम को परमेश्वर का हुक्म कह कर सामान्य स्थिति बनाये रखी।

भाई लखी शाह

आनंदपुर में प्रतिदिन रौनक बढ़ रही थी। सिक्ख संगतें प्रतिदिन दूर दूर से दर्शनों को आने लगी। एक दिन दिल्ली की संगत आई उनमें लुबाणा कबीले का सिक्ख भाई लक्खी शाह वणजारा भी था। दीवान में जब आसा की वार की समाप्ति हुई, संगतों की तरफ से भेंट प्रस्तुत की गई तब किशोर मूर्ति गोबिन्द राय जी ने भाई लखी से पूछा, 'हे मेरे परम स्नेही सिक्ख ! आपने किस प्रकार सतगुरू जी की देह संभाली थी और दाह संस्कार किया था ?' इस पर लखी शाह ने द्रवित नेत्रों से समस्त घटना विस्तारपूर्वक कह सुनाई कि किस प्रकार वे लोग योजनाबद्ध नियम से शव की सेवा संभाल करने में सफल हुए। यह वृतान्त सभी पहले भी सुन चुके थे। किन्तु भाव आवेश में सभी ने पुन: करूणामय गाथा सुनी। लखी शाह ने बताया कि हम तो एक साधनमात्र थे वास्तव में हमारी पग-पग पर प्रकृति सहायता कर रही थी। पहले आँधी तूफान के रूप में फिर संतरियों को भ्रम में डाल कर। इसीलिए हम लोगों ने उसी समय चिता अपने मकान में ही बनाकर उसे आग लगा दी। बाद में समस्त विभूति को एक तांबे की गागर में भर कर वहीं उसी स्थान पर दबा दिया है। इस पर गुरूदेव जी ने कहा अभी वहाँ पर पक्का चबूतरा बना दो और निशान कायम कर दो। समय आयेगा जब हमारे सिख दिल्ली पर विजय प्राप्त करेंगे तो वहाँ भव्य भवन का निर्माण कर शहीदों का समारक उजागर करेंगे।

गोबिन्द राय जी ने लखीशाह से पूछा - लखी ! दिल्ली में तो सिक्खों की गिनती बहुत है। उस समय वे क्यों नहीं सामने आये ? उत्तर में भाई लखीशाह ने कहा - हे गुरूदेव जी ! दिल्ली में नित नये उपद्रव होते ही रहते हैं। इसलिए प्रजा सहमी हुई है। बादशाह का बड़ा त्रास है। सिक्ख बहुत कम हैं और गरीब हैं। भयभीत करने के लिए कई सिक्खों को भी कष्ट दिये गये हैं। इसलिए कोई साहस बटोर कर सामने नहीं आ पाया। इनमें मैं भी सम्मिलित हूँ। बस यह सेवा आप की कृपा से करने में सफल हो पाया हूँ। सारे सिक्ख दुखी हैं, किन्तु भय से विचलित हैं। यह सुन गुरूदेव जी में एक तेजमय दिव्य आभा जगमगा उठी और वह वीर रस में कह उठे - 'मैं ऐसे लोगों का गुरू कहलवाना ही नहीं चाहता जो विपत्तिकाल में छिप जाएं। मैं तो ऐसे सिक्ख (शिष्य) का निर्माण करूँगा जो अपने न्यारेपन से लाखों में दृष्टिमान होगा और वह कह उठेगा कि मैं अपने गुरूदेव जी के एक संकेत पर अपना तन, मन, धन समस्त न्यौछावर करने को तत्पर हूं।

नन्हीं आयु से ही गुरूदेव जी को घोड़े की सवारी और धनुष बाण चलाने का शौक था, जो अब बढ़ कर जनून का रूप धारण कर गया। आप अब अपना अधिकांश समय शस्त्र विद्या के अभ्यास में व्यतीत करते। आपके नित्य कर्म में अमृत बेला में 'आसा की वार' का कीर्तन अडोल आसन लगाकर सुनते और कीर्तन की समाप्ति पर स्वयं संगतों को सम्बोधन कर प्रवचन करते। अरदास सुनकर अनुकंपा भी करते और संगतों के संग उन के सुख दुख पर विचार विमर्श भी करते। तद्पश्चात भोजन के लिए उठकर घर चले जाते यहाँ आप जी अपनी माता गुजरी जी द्वारा तैयार भोजन ग्रहण करते। कुछ विश्राम के पश्चात पाठशाला पहुंच जाते, यहाँ आप अपनी आयु के किशारों के साथ विद्या अध्ययन में व्यस्त रहते। दोपहर को अपने योद्धाओं का युद्ध अभ्यास देखते और अपने बाणों से नये नये कौशल दिखाते, इस कार्य के लिए आप जी लाहौर से विशेष प्रकार के तीर मंगवाते। आपने अपनी बुआ, बीबी वीरो जी के पुत्रों तथा अपने ताऊ सूरजमल के पोते जो तीरंदाजी घुड़सवारी और बन्दूक चलाने में बहुत प्रवीण थे। उनको अपने पास रख लिया और इनके साथ मिलकर नित्य अस्त्र शस्त्र चलाने के अभ्यास में लीन रहने लगे। तीसरे पहर आप शिकार को जाते।

गोबिन्द राय जी का समय और परिस्थितियां

अपने पूज्य पिता श्री गुरू तेगबहादुर साहब की शहादत से गुरू गोबिन्द राय जी को दो बातें स्पष्ट हो चुकी थी। एक तो यह कि अशक्त व्यक्ति का कोई धर्म नहीं होता। दुनियां के लालच अथवा मौत का डर देकर उन्हें फुसलाया जा सकता है। धर्म से पतित किया जा सकता है। औरंगज़ेब के मज़हबी दबाव के नीचे असंख्य हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन कर लेना इस बात का सबूत था। दूसरा अशक्त व्यक्तियों का धर्म पाखण्डों, भ्रमों और स्वार्थवश की गई चालाकियों, धोखा, फरेब और गरीब अनपढ़ जनता को खोखले रीति-रिवाजों के चक्रव्यूह में फंसाने का नाम है। यह बात आनन्दपुर के पड़ोस में बसने वाले पहाड़ी राजाओं के व्यवहार से सिद्ध हो चुकी थी। एक ओर तो वह जाति-पाति, छूत-छात, मूर्ति पूजा के हक में थे और दूसरी ओर औरंगज़ेब के पिट्ठू। गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जैसे स्वतन्त्र विचारवान, केवल एक प्रभु को मानने वाले और जाति पाति के भेदभाव से ऊपर उठकर भ्रमों के जंजालों का खण्डन करने वाले व्यक्ति का धर्म इन्हें कहाँ भा सकता था। इस संदर्भ में पर्वतीय नरेशों ने विचार किया गुरू गोबिन्द सिंघ के होते हुए उनकी दाल नहीं गलेगी। साथ ही गुरू साहब तो मुग़ल सम्राट से टक्कर लेने की तैयारियां कर रहे हैं। उनका साथ देना मुगलों को अपना शत्रु बना लेने की बात है।

इन कारणों से वे गुरू गोबिन्द सिंघ से भय अनुभव करते हुए उन्हें आनंदपुर से निकालने की युक्तियां ढूँढने लगे। अत: वे व्यर्थ की छेड़खानी करने लगे।

मसंद प्रथा की समाप्ति

'मसंद' शब्द अरबी के मसनद से बना है जिस का भाव है - तकिया, गद्दी, तख्त अथवा सिंहासन। अत: मसंद का गुरू घर में अर्थ था वह मनुष्य जो गुरू गद्दी पर विराजमान सतगुरू जी का प्रतिनिध घोषित हुआ हो। जो गुरसिख संगत से आय का दशमांस (दसवंध)अथवा कर

भेंट एकत्र करते और सिक्खी का प्रचार प्रसार करते थे। उनको मसंद कहा जाता था। मसंद प्रथा चौथे गुरूदेव जी श्री गुरू रामदास जी ने चलाई थी। इन मसंदों ने उन दिनों सिक्खी प्रचार व प्रसार में विशेष योगदान दिया परन्तु समय व्यतीत होने के साथ साथ कई मसंद माया के लोभ में फँसकर अमानत में ख्यानत करने लगे थे। पूजा के धन से वे अपने लिए सुख सुविधा के साधन एकत्र करने लगे। ये लोग विलासी हो जाने के कारण आलसी और नीच प्रवृति के हो गये। ये लोग नहीं चाहते थे कि राज्य शक्ति अथवा स्थानीय प्रशासन से अनबन हो या मतभेद उत्पन्न कर टकराव का कारण बने। परन्तु उधर गुरूदेव जी सत्ताधारियों की कुटिल नीति के विरोध में टक्कर लेने की तैयारियां कर रहे थे। अत: मसंदों ने ऐसा प्रचार करना प्रारम्भ किया कि टक्कर लेने की राह न अपनाई जा सके क्योंकि उनके विचार से पहले ही नवें गुरू तेगबहादुर जी को औरंगज़ेब ने शहीद करवा दिया था और अब उसके साथ टक्कर लेना मृत्यु को निमंत्रित करना है। कुछ उदासीन वृत्ति के सिख इस प्रकार के गलत प्रचार व प्रभाव में भी आ गये। ऐसे विचारों वाले कुछ सिक्खों ने माता गुजरी जी को भी परामर्श दिया कि वह गुरूदेव जी को समझाएं कि सिक्खों को केवल नाम सिमरन में ही लगाया जाए और मुग़ल शासन में किसी तरह शान्तिपूर्वक दिन काटे जाएं। जब ऐसी बातें गुरूदेव जी तक पहुंची तो उन्होंने कहा – 'इन मसंदों की आत्मा पूजा का धन खा खा कर मलीन हो गई है। ये आलसी और नकारा हो गये हैं। औरंगज़ेब चाहता है कि लोग गुलामी के भाव में सिर झुका कर चलें। हम चाहते हैं कि सिक्ख सिर उठा कर चलें। हमने तो सिक्खों को इस योग्य बनाना है कि वे अत्याचारों के विरूद्ध दीवार बनकर खड़े हो जाएं, गुलामी की जंजीरों को तोड़ दें और इस देश की किस्मत के स्वयँ मालिक बनें।' इन्हीं दिनों एक मसंद जिस का नाम दुलचा था। गुरूदेव जी के दर्शनों को कार भेंट लेकर उपस्थित हुआ। किन्तु उसके हृदय में किशोर अवस्था वाले गुरू जी को देखकर संशय उत्पन्न हुआ। वह दुविधा में विश्वास-अविश्वास की लड़ाई लड़ने लगा। जिसके अन्तर्गत उसने समस्त कर भेंट गुरूदेव जी को नहीं अर्पित की और एक स्वर्ण के कंगनों का जोड़ा अपनी पगड़ी में छिपा लिया। परन्तु गुरूदेव जी ने उसे समरण कराया कि उसे एक हमारे परम स्नेही सिक्ख ने कोई विशेष वस्तु केवल हमारे लिए दी है जो उसने अभी तक नहीं सौंपी। उत्तर में मसंद दुलचा कहने लगा – नहीं गुरूदेव जी ! मैंने एक-एक वस्तु आप को समर्पित कर दी हैं। इस पर गुरूदेव जी ने उसे पगड़ी उतारने को कहा, जिसमें से कंगन निकल आये। यह कौतुक देखकर संगत आश्चर्य में पड़ गई और दुलचा क्षमा याचना करने लगा। गुरूदेव जी ने उसे क्षमा करते हुए कहा – आप लोग अब भ्रष्ट हो चुके हो। अत: हमें अब यह पुरानी प्रथा समाप्त कर संगत के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करना होगा और गुरूदेव जी ने उसी दिन मसंद प्रथा समाप्त करने की घोषणा करवा दी।

वास्तव में खालसा निर्माण की कल्पना के साथ ही गुरूदेव जी ने पंथ की व्यवस्था में संशोधन का कार्य भी प्रारम्भ किया। इस से पूर्व विभिन्न प्रदेशों में गुरू के मसंदों की नियुक्तियां हुआ करती थी। वे मसंद सिक्खों से सेवा भेंट एकत्र करने गुरू दरबार तक पहुँचाने का कार्य करते थे। सेवा में इक्ट्ठा हुआ धन प्राय: उनमें लोभ-लालसा की भावनाएं उपजा देती थी। परिणामत: वे सिक्खों की कमाई का धन गुरू चरणों तक पहुँचाने की अपेक्षा स्वयँ प्रयोग में ले आते थे। लोभवश सेवा में घपला होता था। एकत्रित हुए भेंट के धन से आधा ही गुरू सेवा में पहुंच पाता था। अत: गुरूदेव जी ने सिक्खों (खालसा) को वैशाखी के उस पर्व पर आदेश दिया कि वे सेवा भेंट का धन मसंदों के हवाले करने की बजाय अपने ही पास सम्भाल कर रख छोड़े और जब भी उन्हें गुरू दर्शनों का अवसर प्राप्त हो तभी साथ लेकर आवें और अपने हाथों गुरूदेव जी को समर्पित करें। ऐसे आदेशों से मसंद प्रथा समाप्त हो गई और समस्त धन गुरू के लंगर तक पहुँचने लगा।

जल क्रीड़ाएं

बाल्यकाल अवस्था में गोबिन्द राय जी को पटने नगर में गंगा जी के जलसे क्रीड़ा करने का शौक था। वह आनन्दपुर आकर और बढ़ गया। कई बार आपने अपनी आयु के साथियों के साथ सतलुज नदी में स्नान करते हुए दो दल स्थापित कर लिए और तैराकी की प्रतियोगिताएं आयोजित की। एक बार प्रतिद्वंदी दल का नेता गुलाब राय पराजित हो गया परन्तु वह अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर रहा था। जिस कारण गुरूदेव जी गोबिन्द राय जी ने उस के नेत्रों पर जोर जोर से पानी के छींटे मारने शुरू कर दिये। वह पानी के वेग को न सहन कर पाया और नदी से बाहर निकल कर भाग खड़ा हुआ। जल्दी में बाहर दरी से अपने वस्त्र उठाये और पहनने लगा। इस बीच उसने गलती से गुरूदेव जी की पगड़ी उठा कर सिर में बांध ली। तभी संतरी ने बताया कि यह पगड़ी आप की नहीं यह तो गुरूदेव जी की है। वह जल्दी से भूल सुधारने के विचार से पगड़ी बदलने लगा। तभी गुरूदेव जी भी लौट आये और उन्होंने कहा – गुलाब राय अब यही पगड़ी बांधे रहो। समय आयेगा जब तुम्हारी भी पूजा होगी। तुम भी कुछ आध्यामिक प्राप्तियां करोगे। परन्तु नम्रता धारण करना। जिससे सदैव सम्मान बना रहेगा। गुलाब राय रिश्ते-नाते में गुरूदेव जी का फुफेरा भाई लगता था।

गुरू की त्रिवेणी

एक दिन गोबिन्द राय अपने फुफेरे भाईयों तथा सेवकों के संग भाला फैंकने का अभ्यास कर रहे थे तो गर्मी के कारण सभी को प्यास सताने लगी। किन्तु पानी का स्रोत कहीं दिखाई नहीं दिया। इस पर संगोहशाह ने कहा यदि यहीं कहीं जलकुण्ड होता तो कितना अच्छा होता। भाई की यह इच्छा सुनकर गुरूदेव जी बोले यह कोई बड़ी बात नहीं है। खोजने पर क्या नहीं मिल सकता। तभी आपने एक टीले पर संकेत किया और कहा यहाँ पानी अवश्य ही मिलेगा। किन्तु वहां पानी तो था नहीं। तभी गुरूदेव जी ने अपने भाले को सम्पूर्ण बल से धरती में दे मारा और कहा – इसे निकालो, यहां से तुम्हारी प्यास बुझेगी। सभी ने बारी बारी भाला उखाड़ने की चेष्टा की परन्तु असफल रहे। तदपश्चात स्वयं ही

गुरूदेव जी ने घोड़े पर बैठे बैठे उसे उखाड़ा। उस भाले के धरती से बाहर आते ही वहां से एक मीठे जल की धारा बह निकली। यह देखकर सभी अति प्रसन्न हुए और सभी ने प्यास बुझाई किन्तु गुलाब राय के मन में एक बात आई कि यदि मैं यह भाला उखाड़ दिखाता तो चश्मे का श्रेय मुझे मिलना था। तभी गुरूदेव जी ने पुन: कुछ दूरी पर भाला धरती पर फैंका और हुक्म किया गुलाब राय इसे उखाड़ लाओ। उसने आदेश पाते ही समस्त बल लगा दिया किन्तु भाला बाहर नहीं खींचा जा सका। अन्त में फिर से भाला गुरूदेव जी को ही निकालना पड़ा। भाला जैसे ही धरती से बाहर आया वहां से भी पानी का फव्वारा फूट निकला। यह देख गुलाब राय मन ही मन शर्मिंदा हुआ किन्तु आग्रह करने लगा हमारे पास अब दो धाराएं हैं। यदि एक धारा और उत्पन्न हो जाए तो त्रिवेणी ही बन जाए। उसकी यह मंशा देखकर गुरूदेव जी ने एक अन्य स्थान पर भाला फैंका और उखाड़ा और वहाँ से एक पानी के चश्में की उत्पत्ति हुई। इन तीनों जल धाराओं के संगम के स्थान को गुरू की त्रिवेणी कहा जाने लगा।

राजा रतन राय

त्रिपुरा का युवक राजकुमार एक दिन प्रात:काल शीशे के समक्ष केशों में कंघा कर रहा था कि उसकी दृष्टि अपने माथे के ऊपर भाग में एक दागनुमा निशान पर पड़ी। यह दाग कोई अक्षर सा प्रतीत हो रहा था। युवराज ने कौतुलवश अपनी माता से इस अक्षरनुमा निशान के विषय में पूछा - उत्तर में महारानी स्वर्णमती ने कहा - बेटा इस निशान में तुम्हारे जन्म का रहस्य छिपा हुआ है। यह ज्ञात होते ही युवराज के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वह बहुत उत्सुकता से पूछने लगा - माता जी मुझे पूरा वृतान्त सुनाओ कि यह दाग मेरे जन्म से क्या संबन्ध रखता है। इस पर माता स्वर्णमती ने कहा - पंजाब से श्री गुरू नानक देव जी के नौवें उत्तराधिकारी श्री गुरू तेगबहादुर जी राजा राम सिंह के साथ आसाम में मुग़ल सम्राट का झगड़ा निपटाने आये थे। वह स्वयं गुरू नानक देव जी के उपदेशों व सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार कर रहे थे कि उनकी भेंट तेरे पिता जी के साथ गोरीनगर में हुई। तेरे पिता पहले से ही गुरू नानक मतावलम्बी थे जिस कारण उन्होंने तेग बहादुर जी का बहुत सम्मान किया और उनके अनुयायी हो गए। एक दिन तेरे पिता जी ने गुरूदेव जी के सम्मुख अपने हृदय की मांग रखी कि उनके गृह, पुत्र की कमी है। अत: उन्हें आप इस दात से निवाजें। गुरूदेव जी उन की सेवाभाव से बहुत सन्तुष्ट थे। अत: उन्होंने अपने हाथ की अंगुठी उतार कर तेरे पिता जी को दी। जिस पर पंजाबी भाषा में एक ओंकार का अक्षर (੧) स्वर्णकार ने बनाया हुआ था और उन्होंने कहा कि कुछ समय पश्चात आप की यह कामना भी पूरी होगी। आपके यहां एक पुत्र जन्म लेगा जिस के मस्तिष्क के एक किनारे यह अक्षर बना हुआ होगा। ऐसा ही हुआ तेरे जन्म पर हमने जब तुझे देखा तो तेरे मस्तिष्क पर यह निशान अंकित था। यह वृतान्त सुनते ही युवराज के हृदय में श्रद्धा की लहर उठी वह कहने लगा मैं उनके दर्शन करने पंजाब जाना चाहता हूँ। इस पर महारानी स्वर्णमती ने कहा - परन्तु वह अब नहीं हैं क्योंकि मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब ने उन्हें धर्मान्धता के जनून में शहीद करवा दिया है। किन्तु अब उनके पुत्र जो तेरी आयु के लगभग हैं और जिनका नाम गोबिन्द राय है। वह उनकी गद्दी पर विराजमान है। यदि तुम उनके दर्शनों को पंजाब चलो तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी और मैं भी तेरे साथ चलूंगी।

गुरू दर्शनों की बात निश्चित करके युवराज रतन राय तैयारी में व्यस्त हो गया। अब उस के समक्ष समस्या यह उत्पन्न हुई कि गुरूदेव जी को कौन कौन सी वस्तुएं भेंट की जाए जो अद्भुत तथा अनमोल हों। उसे ज्ञात हुआ कि गुरूदेव जी युद्ध सामग्री इत्यादि पर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं तो उसने कुछ विशेष कारीगरों को बुलाकर शस्त्र निर्माण का आदेश दिया। इस प्रकार एक नवीन शस्त्र को उत्पत्ति हुई। जो पाँच प्रकार के कार्य कर सकता था अर्थात वह समय समय पर नये रूपों में परिवर्तित किया जा सकता था। उन्होंने इसे पांच कला शस्त्र नाम दिया। इस प्रकार उसने एक विशेष हाथी मंगवाया जो छोटे कद का था परन्तु था बहुत गुणवान, उसको विशेष प्रशिक्षण देकर तैयार किया गया था और वह बहुत आज्ञाकारी होकर कार्यरत रहता था। इसके अतिरिक्त एक चौकी थी जिस पर पुतलियां स्वयं चौपड़ खेलती थीं।

त्रिपुरा से लम्बी यात्रा करता हुआ यह राजकुमार अपनी माता स्वर्णमती के साथ पंजाब पहुँचा। गुरूदेव जी ने उन का भव्य स्वागत किया और रतनराय को गले से लगाया। रतन राय ने सभी उपहार गुरूदेव जी को समर्पित किये। गुरूदेव जी ने पंचकला शस्त्र और हाथी के लिए बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। हाथी के गुणों को देखते हुए गुरूदेव जी ने उस का नाम प्रसादी हाथी रखा। रतन राय अध्यात्मिक प्रवृत्ति का स्वामी था। अत: उसके साथ गुरूदेव जी की बहुत सी विचार गोष्टियां हुई। जब वे संशयनिवृत्त हो गये तो उसने गुरूदेव जी से गुरू दीक्षा प्राप्त की। राजकुमार गुरूदेव जी के पास आकर बहुत सन्तुष्टि अनुभव करने लगा। जैसा उसने सोचा था। उस से भी कहीं अधिक पवित्र वातावरण पाया। उस का गुरूदेव जी के पास मन रम गया। एक तो गुरूदेव जी उस के आयु के थे। दूसरा गुरूदेव जी के यहाँ सभी राजसी ठाठ बाठ था। गुरूदेव जी उसे शिकार पर वनों में ले जाते। वीर रस की बातें सुनाते जो उसे बहुत अच्छी लगती। वास्तव में गुरूदेव जी के दो स्वरूप उसे देखने को मिलते, पहला संत दूसरा सिपाही। यही कारण था कि वह गुरूदेव जी के व्यक्तित्व पर मंत्रमुग्ध हो गया और वापस जाना भूल गया। इसलिए कई महीने गुरूदेव जी के अतिथि के रूप में ठहरा रहा। उसकी माता तथा उसके मंत्रियों ने जब वापस लौटने का आग्रह किया तो वह विवशता में गुरूदेव जी से आज्ञा लेकर लौट गया किन्तु उसका मन गुरू चरणों में ही रहा।

विवाह

सन् 1684 में लाहौर नगर से बहुत सी संगत एक काफिले के रूप में गुरू दर्शनों को आनंदपुर साहब पहुँची। इन में रामशरण नाम का गुरू सिक्ख, युवक गोबिन्द राय जी के सौन्दर्य तथा प्रतिभा को देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उस के हृदय में इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि वह

अपनी पुत्री 'जीतो' का नाता गुरूदेव जी से कर दे तो ये जोड़ी अद्भुत रहेगी। यह कल्पना लेकर वह माता गुजरी जी तथा दादी मां नानकी जी के समक्ष उपस्थित हुआ। माता जी ने बहुत प्रसन्नता से उस की विनम्र विनती सुनी और युवती जीतो को भी देखा जो कि साथ में ही दर्शनों के लिए आई हुई थी। युवती जीतो को देखकर माता जी उसके सौन्दर्य पर मंत्रमुग्ध हो गये। उन्होंने उस समय अपनी सास नानकी जी से विचारविमर्श किया और कहा हमें यह रिश्ता स्वीकार है। स्वीकृति प्राप्त होते ही रामशरण जी ने आग्रह किया मैं सगाई की रीति सम्पूर्ण करना चाहता हूँ। यह अनुरोध भी स्वीकार कर लिया गया क्योंकि लाहौर की संगत की यही इच्छा थी। सगाई की रस्म गुरू मर्यादा को ध्यान में रखकर बहुत शान्त वातावरण में कर दी गई कोई विशेष समारोह का आयोजन नहीं किया गया। तद्पश्चात रामशरण जी ने प्रस्ताव रखा कि आप लाहौर में बारात लेकर आयें। किन्तु गुरूदेव जी ने कहा हमारा वहां जाना कठिन है, कृपया आप यहां आ जाएं और यहां विवाह सम्पन्न किया जाए। इस पर रामशरण ने अपनी कुछ कठिनाईयां बताई कि मैं दुविधा में हूँ क्योंकि मेरी मंशा लाहौर में ही आपका स्वागत करने की है। गुरूदेव जी ने कहा हम आपकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए यहां एक नया लाहौर नगर बसा देते हैं, जिससे आपकी उलझन समाप्त हो जाएगी। इस पर रामशरण जी ने कहा - यदि ऐसा हो सकता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बस फिर क्या था दोनों पक्ष विवाह की तिथि पर सहमत हो गये और रामशरण जी लाहौर की संगत के साथ वापस तैयारी के लिए चले गये। इधर गुरूदेव जी ने आनन्दपुर के निकट 7 कोस की दूरी पर एक नये नगर की रचना के लिए शिलान्यास किया और नगर का नाम गुरू का लाहौर रखा। कुछ ही दिनों में नगर में चहल पहल हो गई। दूर दूर से व्यापारी वहीं आकर बसने लगे। नगर के तैयार होने पर लाहौर से सपरिवार रामशरण जी यहीं आकर बस गये। फिर उन्होंने माता गुजरी से अनुरोध किया कि आप निश्चित समय पर बारात लेकर आयें। ऐसा ही किया गया, गोबिन्द राय जी दूल्हा बने और बारात लेकर नये लाहौर नगर में अपने ससुराल पहुंचे। वहां कुल रीति के अनुसार गुरूदेव जी का विवाह सम्पन्न कर दिया गया। इस प्रकार दुल्हन लेकर बारात लौट आई। माता गुजरी जी की पुत्रवधु जहां गुणवती थी वहीं अति सुन्दर भी थीं। उसने आते ही अपनी सासु मां का मन मोह लिया। वह नम्र और मधुरभाषी थी। इसलिए गुरूदेव जी के मन को भी बहुत भा गई। दादी मां नानकी जी तो उस के रूप पर मुग्ध हो गई। उन्होंने वधु को सुन्दरी कहना प्रारम्भ कर दिया जिससे धीरे धीरे युवती जीतो का नाम ससुराल में सुन्दरी प्रसिद्ध हो गया।

रणजीत नगारा

गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी के वरिष्ठ सैन्य अधिकारी नन्दचन्द ने गुरूदेव जी से एक दिन अनुरोध किया - हे गुरूदेव जी ! हमें सेना का मनोबल बढ़ाने के लिए एक नगारा (एक विशेष प्रकार का ढोल) बनाना चाहिए। बिना नगारा बजाए सेना का प्रशिक्षण अधूरा रहता है। बस फिर क्या था तुरन्त गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि आकार में बढ़े से बढ़ा नगारा बनवाओ और इसके अतिरिक्त शिकार खेलते समय वनों में जंगली पशुओं को भयभीत करने के लिए भी कुछ छोटे आकार के नगारे बनवाओ जो साथ लिए जा सके और शिकार करने में सहायक सिद्ध हो। आदेश के मिलते ही कुशल कारीगरों ने एक बहुत बढ़े आकार का नगारा बनाया जिसकी गूंज और कर्कश ध्वनि गगनचुम्बी थी। इसे देखकर गुरूदेव जी ने प्रसन्नता व्यक्त की और इस नगारे का नाम रणजीत नगारा रखा और इसे आनन्दगढ़ की एक विशेष ऊँची मीनार में स्थापित कर दिया गया। रणजीत नगारे को आवश्यकता अनुसार दिन में कई बार बजाया जाने लगा। जिससे आसपास के क्षेत्र दहल जाते। इस नये कार्य से कुछ मसंद खुश नहीं हुए अपितु कुछ आशंकाये प्रकट करने लगे। गुरूदेव जी ने इन लोगों की बातों पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु वे भविष्य में विपत्तियों की सम्भावना बताने लगे और वे लोग एकत्र होकर माता गुजरी जी के समक्ष प्रार्थना करने लगे कि गुरूदेव जी अभी अल्पायु के हैं। इनको इन बातों के परिणाम मालूमनहीं। सम्राट औरंगज़ेब पहले से ही हमारा शत्रु है तथा पर्वतीय हिन्दू नरेशों का भी कोई भरोसा नहीं। न जाने वे कब बदल जाएं। वे पहले से ही हमारी सैन्य तैयारियों से असन्तुष्ट हैं। वे शक्ति सन्तुलन के भय से भी चिन्तित रहते हैं। अत: अब नगारों पर हर समय की चोटें सुनकर कहीं हमारे विरोधी ही न बन जाए। यदि स्थानीय नरेशों से इन्हीं बातों से ठन जाती है तो वे हमारे विरूद्ध सम्राट से सहायता भी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में हम क्या करेंगे ? जबकि एक तरफ समस्त देश की सैनिक शक्ति और दूसरी ओर हम जो केवल मुट्‌ठीभर स्वयं सेवकों की सैन्य टुकड़ी रखे हुए हैं, प्रतिस्पर्धा के अनुपात में नगण्य हैं। ठीक इसी प्रकार एक तरफ राष्ट्रीय कोष है और हमारे पास केवल सिक्ख संगतों द्वारा श्रद्धावश भेंट किया हुआ सीमित धन, साधन। समस्त परिस्थितियों को एक दृष्टि से आकलन कर ही लेना चाहिए।

माता जी को इन बातों में तथ्य प्रतीत हुआ। उन्होंने मसंदों को आश्वासन दिया कि वह गोबिन्द राय जी को इन तथ्यों से अवगत करवायेंगी। रात्रि के भोजन के उपरान्त अवकाश के समय माता गुजरी जी ने तथा दादी माँ नानकी जी ने गुरूदेव जी को बहुत प्रेम से इन कड़वे सत्य से परिचित करवाया तो वह मुस्कुरा दिये और कहने लगे कि आज फिर कहीं मसंदों ने आपके मन में भ्रम उत्पन्न कर दिया है जैसा कि आप जानती हैं, जो भी होता है वह सर्वशक्तिमान पारब्रह्म के हुक्म से ही होता है फिर आप चिन्ता क्यों करती हैं ? हमें उस दिव्य ज्योति ने भेजा है और हमारा एक लक्ष्य है धर्म की स्थापना और इसके विपरीत दुष्टों का दमन करना। इस कार्य के लिए वह हमारे अंग-संग हैं केवल विश्वास की आवश्यकता। इस तर्क को सुनकर माता जी गम्भीर हो गई और उन्होंने फिर कभी इस विषय पर चर्चा नहीं की।

अफ्गानिस्तान की संगत

अफ्गानिस्तान के भिन्न भिन्न क्षेत्र से प्राय: संगत गुरू दर्शनों को आती रहती थी। इस पर मसंद दयालदास जी की प्रेरणा और उनकी योजना के अन्तर्गत वहां की संगत एक विशाल काफिले के रूप में एकत्रित होकर गुरू दर्शनों के लिए आई। इनमें काबुल, कंधार, बलख बुखारे

तथा गजनी आदि नगरों की संगत बहुत प्रेम तथा श्रद्धा के साथ कुछ विशेष उपहार लेकर उपस्थित हुई। काबुल के सेठ दुनीचन्द ने एक विशेष मखमली तम्बू भेंट किया यह उसने बहुत श्रद्धा के साथ कई वर्षों में दो लाख रूपये की लागत से तैयार करवाया था। इस पर अति सुन्दर मीनाकारी करवाई गई थी, जिसकी छटा अनूप थी। गुरूदेव जी इसे देखकर अति प्रसन्न हुए। अन्य श्रद्धालुओं ने भी अद्भुत वस्तुएं भेंट की जिससे वस्तुओं के अम्बार लग गये। इनमें कुछ उपहार ऐसे थे जो युद्ध के समय रणक्षेत्र में काम आते थे, इसलिए गुरूदेव जी ने उन सिक्खों को विशेष रूप में सम्मानित किया जो युद्ध सामग्री लाये थे।

भीमचन्द की दुविधा

गोबिन्द राय (सिंघ) जी के कार्यक्षेत्र में बहुत उलझनें और कठिनाइयाँ थी। वह उस समय बचपन को पीछे छोड़कर यौवन में पर्दापण कर रहे थे। गुरू गद्दी पर विराजमान होने के कारण उनके अपने ही कई सम्बन्धी उनसे ईर्ष्या और विरोध रखते थे। सिक्खों को तत्कालीन सरकार संदेह की दृष्टि से देखती थी किन्तु गोबिन्द राय जी को ऐसा विशाल हृदय प्राप्त हुआ था जो सारे कष्टों, कलेशों तथा कठिनाइयों को तुच्छ समझता था। अत: वह नित्य प्रति अभ्यास करते, बल्कि अपने सिक्खों को भी इसी में सदैव व्यस्त रखते। उनका अधिकतर समय शूरवीरों की गाथाएं (वारें) गाने और सुनने, शिकार खेलने, धनुष बाण के लक्ष्य बेंधने, घुड़दौड़ इत्यादि ऐसे ही अन्य अनेक कार्यो में व्यतीत होता।

धर्म युद्ध की तैयारी में गुरूदेव जी पूर्णत: व्यस्त रहने लगे। इस प्रकार उन्होंने अपना सैन्य बल बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित कर दिया। अत: उन्होंने समस्त सिक्खों को आदेश दिया कि वह प्रत्येक परिवार से एक बेटा गुरू की सेना में अवश्य भर्ती करवाये। उन दिनों सिक्ख युवक किशोर अवस्था में ही शस्त्र विद्या सीखते थे जिस कारण उनके हृदय में एक अच्छे सैनिक बनने की उत्सुकता बनी रहती थी। इसलिए गुरूदेव जी को स्वस्थ युवकों की कमी कभी आड़े नहीं आई।

गुरूदेव जी अवकाश के समय कुछ सुयोग्य योद्धाओं को अपने साथ शिकार पर ले जाते। शिकार की खोज में कभी कभी दूर कहिलूर नगर के निकट पहुंच जाते और वहां नगारे जोरों से बजाते जिसे सुनकर राजा भीमचन्द्र विचलित हो गया। उसने नगारे की ध्वनि को अपने लिए चुनौती के रूप में लिया और मंत्रियों की सभा बुलाकर परामर्श किया। इस पर पुरोहित परमानंद (पम्मा) ने समय का लाभ उठाते हुए राजा भीमचन्द को मनोकल्पित शंकाएं व्यक्त कर-कर के भयभीत करना प्रारम्भ कर दिया। उस ने कहा - गुरू की बढ़ती हुई सैन्य शक्ति कभी भी हमारे लिए ख़तरा बन सकती है क्योंकि सम्राट औरंगज़ेब के ये लोग शत्रु हैं। अत: वह हमें इस का उत्तरदायी मानेगा क्योंकि आनन्दपुर हमारा भू-भाग है परन्तु इसके विपरीत महामंत्री देवीचन्द ने कहा - गोबिन्द राय जी गुरू नानकदेव जी के उत्तराधिकारी है जो देश विदेशों में पूज्य है। अभी 10 वर्ष पूर्व ही इनके पिता तेगबहादुर जी ने मानवता का पक्ष लेकर जनेऊ तिलक की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहुति दी है। यह सभी तैयारियां आत्मनिर्भर बनने के लिए हैं न कि किसी पर आक्रमण करने के लिए, इसलिए हमें चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। फिर वह हमारे शत्रु क्यों बनेंगे ? इसका मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता। ऐसा तो हो सकता है कि हम उनसे विपत्तिकाल में सैनिक सहायता ले। उनका हमारी भूमि पर होना, हमारे लिए हितकर है। हम इस प्रकार सबल ही हुए हैं। वैसे भी उनके पूर्वजों के आपके पूर्वजों पर बहुत बड़े उपकार हैं। आप को मालूम ही है आप के दादा जी राजा ताराचन्द जी को सम्राट जहांगीर ने ग्वालियर के किले में अन्य 52 राजाओं के साथ कारावास में बन्दी बना रखा था जिनको गोबिन्द राय जी के दादा श्री गुरू हरिगोबिन्द साहब ने ही स्वतन्त्रता दिलवाई थी।

राजा भीमचन्द को मंत्री देवीचन्द के सभी तर्कों में सत्य प्रतीत हुआ। वह कह उठा, ठीक है - मैं उनके प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ, आप जाकर भेंट वार्ता का समय व तिथि निश्चित करें।

पुरोहित परमानंद तथा महामंत्री देवीचन्द कहिलूर से राजा भीमचन्द के दूत बनकर गुरूदेव जी के दर्शनों को आये और उन्होंने सब प्रकार से आनन्दपुर का निरीक्षण किया। देवीचन्द ने गुरूदेव जी के समक्ष भीमचन्द के लिए भेंट वार्ता का समय निश्चित करने का आग्रह किया। गुरूदेव जी ने सहर्ष उन्हें आने का निमन्त्रण दिया और एक विशेष तिथि निश्चित कर ली गई।

राजा भीमचन्द विशेष तैयारी करके गुरू दरबार में उपस्थिति हुआ। उसने गुरूदेव जी के समक्ष शीश झुका कर प्रणाम किया और बहुत से बहुमूल्य उपहार भेंट किये। गुरूदेव जी के साथ उसकी यह प्रथम भेंट थी। वह गुरूदेव जी के यौवन और तेजोमय आभा से बहुत प्रभावित हुआ। गुरूदेव जी ने भी उसका भव्य स्वागत किया और उसके स्वागत में कोई कोर-कसर न रखी। यहाँ तक की, उसको उसी तम्बू में ठहराया गया जो काबुल की संगत दुनीचन्द द्वारा भेंट किया गया था और उसे अपने श्रद्धालुओं की ओर से प्रस्तुत की गई। अन्य भेंट सामग्री भी दिखवाई। जिनमें एक श्वेत मस्तक वाला बड़ा सधा हुआ हाथी, सुनहरे साज-सामान से सजे हुए पांच घोड़े, एक हथियार जो पाँच शस्त्रों का अलग अलग रूप धारण कर सकता था जिसका नाम पंचकला शस्त्र था। एक तख्त जिसमें से बटन दबाने पर पुतलियां निकल कर चौपड़ खेल सकती थी, इत्यादि। यह सब शाही ठाठ-बाट देखकर राजा भीमचन्द हक्का-बक्का रह गया और वह मन ही मन जल उठा। उसके मुँह में पानी भर आया और अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या की ज्वाला में जल उठा कि ऐसी अनुपम वस्तुएं गुरूदेव जी के पास हैं, जो हम राजाओं अथवा मुग़ल सम्राट को भी नसीब नहीं। वह मन ही मन इन अनमोल वस्तुओं को प्राप्त करने की युक्ति पर विचार करने लगा। यह तो वह जान गया था कि बलपूर्वक यह वस्तुएं प्राप्त नहीं की जा सकती क्योंकि गुरूदेव जी के पास भी विशाल सैन्यबल है। अत: उसने इन वस्तुओं को छल से प्राप्त करने का मन बना लिया। रात्रि में उसे नींद नहीं आई वह उस श्वेत अद्भुत 'प्रसादी' हाथी को स्वप्न में ही देखता रहा जो उसने स्वागत द्वार पर फूलों की वर्षा

करते हुए देखा था। वास्तव में राजा भीमचन्द गुरूदेव जी पर अपनी शान-शौकत दिखाने और अपनी सम्पन्नता की धाक बिठाने के लिए आया था किन्तु हुआ इसके ठीक विपरीत, वह अपनी समृद्धि भूल गया और अपने को तुच्छ समझने लगा, जिस कारण उसे हीनभावना का अहसास होने लगा।

शेर का शिकार

अगली सुबह गुरूदेव जी ने मेहमान राजा भीमचन्द को शिकार के लिए निमन्त्रित किया। राजा तो अपनी वीरता की धाक बिठाने के लिए ही आया था। उधर सम्पन्नता प्रदर्शन में तो वह उन्नीस रहा था, इसलिए भी अब वीरता दिखाने का उसे चाव था। उसने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। भीमचन्द के चुने हुए वीर जो उसके संग आए थे, शिकार में भी साथ हो लिए। गुरूदेव जी के पाँच सिक्ख भाले-तलवारें लिए साथ साथ चले। कुछ सिक्खों ने आगे आगे जंगल में हांका किया। शिकार दल ने कई हिरन और नील गायें मार ली, जंगली सूअर भी मारे गए, किन्तु जिस सिंह की तलाश में दल आया था, उसका कहीं पता न चला। सांझ ढल आई। राजा भीमचन्द थकावट महसूस करने लगा था। लौटने की बात होने लगी। गुरू जी अभी सिंह की टोह में थे, वे शिकार का लक्ष्य पूरा किए बिना लौटना नहीं चाहते थे। सिंह ने उस प्रदेश में कई हत्याएं कर दी थी, ग्रामीणों ने गुरू जी के पास शिकायत की थी। भीमचन्द भीतर से घबरा रहा था। रात्रि के समय, बिना मचान बांधे सिंह से टक्कर लेना अपनी मौत को आमंत्रित करने के समान था। किन्तु यह बात गुरूदेव जी को बताने में हेठी समझता था, इसलिए चुप था। गुरूदेव जी सबको लेकर और भी बीहड़ में घुस गए। राजा भीमचन्द रोकता ही रहा, किन्तु गुरूदेव जी को तो उसका घमण्ड तोड़ना था। वे अन्तर्यामी थे और भीमचन्द के मन को समझते थे। तलाश सफल हुई। बीहड़ झाड़ियों में एक जगह शेर बड़े मज़े से विश्राम कर रहा था। उसकी लम्बी दुम ही झाड़ियों से बाहर दृश्यमान थी। दुम की लम्बाई और मोटाई से सहज ही अनुमान होता था कि शेर भीमकाय और बड़ा शक्तिशाली है। जंगल का एकछत्र सम्राट होने के नाते वह सबकी उपेक्षा करता हुआ लेटा था। उसका पूरा विश्वास था कि उसके विश्राम में हस्तक्षेप का साहस किसी को भी नहीं हो सकता। गुरू जी ने झाड़ी के निकट आकर सिंह को ललकारना चाहा, किन्तु भीमचन्द ने ऐसा कदम उठाने से उनका निषेध किया। ऐसे में सिंह की झपट जानलेवा हो सकती है, हम सब बिना किसी सुरक्षा साधन के धरती पर खड़े हैं। उसका एक ही वार घातक सिद्ध होगा। ऐसी बातें भीमचन्द के मुख से सुनकर गुरू जी को हंसी आ गई। वीरता की धाक बिठाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति अचानक कायरता की बातें करने लगा था। गुरूदेव जी ने राजा के वीर सैनिकों को साथ आने के लिए आह्वान किया। उस समय संध्या में सिंह के निकट जाने का किसी को साहस नहीं हुआ।

सच है, सिंहों के दल नहीं होते। शिकारी दल में एक ही सिंह था और वह जंगल के सिंह से भिड़ने को उतावला था। गुरूदेव जी ने दूर से बंदूक द्वारा सिंह पर गोली चलाना भी अनुचित समझा। राजा और उसका दल तो गुरूदेव जी की उतावली देख शीघ्रता से पेड़ों के पीछे सुरक्षा ढूँढने लगा, उधर गुरूदेव जी हाथ में खड़ग लेकर उस घनी झाड़ी की ओर चले, जिसमें से सिंह की दुम दिखाई पड़ रही थी। गुरू गोबिन्द सिंघ ने निकट पहुँच कर एक बड़ा पत्थर झाड़ी में लुढ़का दिया। सिंह ने अपने विश्राम में खलल महसूस किया और गुरू ने गम्भीर आवाज में गर्जन किया, किन्तु यहां से हिला नहीं। उसका दिल दहला देने वाला घोर-गर्जन सुनकर राजा दल के रौंगटे खड़े हो गए। गुरूदेव जी ने पुनः झाड़ियों को पकड़ कर जोर से हिलाया डुलाया। सिंह को अचम्भा हो रहा था कि यह किसकी मौत आई है, जो उसके साथ सींग लड़ा रहा है। आखिर उठना ही पड़ा उसे। सिंह विश्राम मुद्रा से क्रोध मुद्रा में आ गया और उठकर झाड़ी से बाहर खड़ा हुआ। लम्बी अंगड़ाई ली, इतने भयंकर ढंग से उसने मुंह खोला कि उसकी दाढ़ें मौत के अनुचरों की तरह शरीर के भीतर तक रोमांच की शीतलता प्रदान करने लगी। गुरूदेव जी के सहयोगी सिक्ख भी धीरे धीरे बिखरने लगे, किन्तु गुरू गोबिन्द सिंघ की अपलक दृष्टि सिंह की दृष्टि से ऐसी मिली थीं कि दोनों पुतली को भी हिला नहीं रहे थे। सिंह शायद सोच रहा था कि यह कौन साहसी व्यक्ति हो सकता है जो अपने कदमों पर ऐसा डटा है कि आंख झपकने तक का नाम भी नहीं लेता। वह क्रोध में गुर्राया और उसने जोर से पूंछ को फटकारा। गुरूदेव जी ने भी उसे पुनः ललकारा और वह अब लपकने को तैयार था। गुरूदेव जी उसका वार सम्भालने को दृढ़ संकल्प थे। सिंह उछला और गर्जना करता हुआ गुरू गोबिन्द सिंघ जी पर झपटा। भीमचन्द और उसके दल के वीरों की आंखें बन्द हो गई। लेकिन गुरूदेव जी ने अपने दादा गुरू हरगोबिन्द जी की तरह सिंह के अगले पंजों और मुख का वार अपने सिर के निकट ढाल पर रोका। पैरों को मजबूत रखते हुए अपनी तलवार का एक भरपूर वार सिंह के शरीर पर किया। इससे पूर्व कि सिंह पीछे हट कर दोबारा लपकता, उसका शरीर बीच से कटकर लटक गया और वह वहीं हवा में सिहर कर धरती पर आ गिरा। पांच सात क्षण उसके आगे के पंजे हिले, मुख से गम्भीर और भयावह स्वर निकला तथा उसका शरीर अडोल हो गया। सिंह मर चुका था, उसका विशाल शरीर रक्त-रंजित धरती पर बेसुध पड़ा था। राजा भीमचन्द ने सारी घटना अपनी आंखों से देखी थी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई पुरुष इतने बड़े सिंह को केवल ढाल-तलवार की सहायता से मार सकता है। वह तो गुरूदेव जी पर अपनी शूरवीरता का सिक्का बिठाने आया था, किन्तु गुरूदेव जी की सिंह से हुई इस मुठभेड़ को देखकर वह विचलित था। वह गुरूदेव जी की वीरता को मानना नहीं चाहता था, प्रत्यक्ष घटना को नकार भी नहीं सकता था। अतः चुपचाप, बिना गुरूजी के शौर्य की प्रशंसा में एक भी शब्द बोले, वह गुरूदेव जी के निकट चला आया। सेवकों ने सिंह के मृत शरीर को सम्भाला और शिकारी दल जंगल से लौट पड़ा। वन में अन्धेरा गहराने लगा था।

भीमचन्द का असफल छल

राजा भीमचन्द गुरू दरबार की शान देखकर बौखला गया। वह आनन्दपुर टिक नहीं पाया। जल्दी ही आज्ञा लेकर वापस कहिलूर पहुँचा। अब उसको एक ही धुन सवार हो गई कि किस प्रकार गुरूदेव जी से ये अनमोल वस्तुएं हथियाई जाए। उसे इस कार्य के लिए एक बहाना सूझा। उसके राजकुमार अजमेरचन्द की सगाई जिला गढ़वाल के राजा फतेहशाह की राजकुमारी के साथ होने वाली थी। इस शुभ अवसर पर समस्त पर्वतीय नरेशों को भी आमन्त्रित किया गया था। भीमचन्द ने अपने वकील पुरोहित परमानन्द को गुरूदेव जी के पास यह कह कर भेजा कि सगाई के अवसर पर यदि 'प्रसादी हाथी' तथा काबली शमियाना इत्यादि वस्तुएं उधार मिल जाए तो भीमचन्द की अन्य राजाओं के समक्ष शान बन जाएगी। गुरूदेव जी अवश्य ही अलप आयु में थे किन्तु सब बात समझते थे। उन्होंने वकील परमानन्द की चिकनी चुपड़ी बातों को भांप लिया कि उधार का तो बहाना है। असल में तो यह पहाड़ी राजा हमें छलना चाहता है। उत्तर में गुरूदेव जी ने परमानन्द को कह दिया कि हाथी इत्यादि वस्तुएं तो श्रद्धालुओं द्वारा अपने गुरू को निजी भेंट दी हुई होती हैं। अतः यह गुरू मर्यादा के विरूद्ध है कि प्रेमपूर्वक भेंट की गई किसी की कोई वस्तु उनकी आज्ञा के बिना आगे किसी को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दी जाए। यह बात भेंट का निरादर भी होगी।

भीमचन्द की छल कपट वाली चाल असफल रही। इस पर उसके साले राजा केसरीचन्द जसवालिया ने योजना बनाई कि हम यह वस्तुएं गुरूदेव जी को धमका कर प्राप्त कर लाएंगे। अतः वह कुछ चुने हुए राजनीतिज्ञ अथवा वकील साथ में ले गया। पहले वे सब गुरूदेव जी के समक्ष चापलूसीपूर्ण व्यवहार करते रहे और आग्रह करते रहे कि वे वस्तुएं हमें कुछ दिनों के लिए उधार दी जाए परन्तु गुरूदेव जी के साफ इन्कार पर वे गुरूदेव जी पर रोब डालने लगा और अशिष्टता पर उतर आया। तभी गुरूदेव जी का संकेत पाते ही सिक्खों ने उसे अभद्रता के कारण धक्के मार कर आनन्दपुर से बाहर भगा दिया। अब स्थिति पर्याप्त विस्फोटक हो गई थी। इस प्रकार दोनों पक्षों में तनाव प्रारम्भ हो गया और राजा भीमचन्द गुरूदेव जी को अपना शत्रु मानने लगा। राजा भीमचन्द ने पर्वतीय नरेशों की सभा बुलाई। उनकी सलाह पूछी कि गुरूदेव जी के विरूद्ध अगला कदम क्या उठाया जाये। समस्त पर्वतीय राजाओं ने मिलकर परामर्श दिया कि अभी समय उपयुक्त नहीं है। सर्वप्रथम राजकुमार का विवाह सम्पन्न होने दो फिर मिलकर गोबिन्द राय पर आक्रमण कर देंगे, जिससे सम्राट की दृष्टि में भी सम्मान प्राप्त होगा। अभी सोते शेर को जगाना ठीक नहीं। कहीं सीधे युद्ध में राजकुमार के विवाह में विघ्न न उत्पन्न हो जाए।

उपरोक्त घटनाक्रम को देखते हुए सिक्ख महसूस कर रहे थे कि किसी भी दिन राजा भीमचन्द उन पर आक्रमण कर सकता है। माता गुजरी जी भी ऐसा ही मानती थी किन्तु वह चाहती थी कि किसी भी प्रकार सशस्त्र युद्ध को टाला जाना चाहिए।

कालसी का ऋषि

एक दीर्घ आयु का तपस्वी यमुना के किनारे पर्वतीय क्षेत्रों में बसे कस्बे 'कालसी' में रहता था। वह जीवन भर प्रभु की निष्काम आराधना में व्यस्त रहा। जिस कारण उसको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई। किन्तु उनका एक मात्र लक्ष्य प्रभु चरणों में अभेद होना था। वह साँसारिक बातों में कोई रूचि नहीं रखते थे। अतः एकान्तवास ही उनका जीवन था किन्तु प्रभु की निकटता प्राप्त होने के कारण उनकी स्तुति भी कस्तूरी की तरह फैली हुई थी। जब नाहन के नरेश को मालूम हुआ कि मेरे पड़ौसी तथा प्रतिद्वन्दी नरेश फतेहशाह की लड़की की सगाई कहिलूर के नरेश भीमचन्द के लड़के के साथ निश्चित हो गई है तो वह बहुत चिन्तित हुआ। उसको भय हो गया कि कहीं फतेहशाह की शक्ति बढ़ गई तो शक्ति सन्तुलन के बिगड़ने पर वह मेरे पर हावी हो जाएगा। अतः वह कोई उपाय सोचने लगा। उसके एक मंत्री ने उसे परामर्श दिया कि इसी गुरू-पीर से इस गम्भीर विषय में विचार कर लिया जाये शायद वह कोई युक्ति बता दे। नरेश ने परन्तु अपने निकटवर्ती को ऐसे पूर्ण पुरूष की खोज करने को कहा - इस पर एक व्यक्ति ने बताया कि यमुना के उस पार चकरोता के निकट कालसी कसबे में एक वृद्ध ऋषि रहते हैं जो अच्छे अच्छे सुझाव और उचित निर्णय देकर समस्या का समाधान बता देते हैं।

नरेश मेदनी प्रकाश अपने मन्त्रियों के साथ कालसी ऋषि के पास पहुँचा। ऋषि जी लगभग 100 वर्ष की आयु के हो चुके थे। अतः वह शरीर के जरज़रा होने के कारण किसी से भेंट इत्यादि नहीं करना चाहते थे किन्तु मेदनी प्रकाश को उनसे भेंट की अनुमति मिल गई। नरेश ने अपना संकट बताया और समाधान पूछा। उत्तर में ऋषि ने कहा - आप को किसी पराक्रमी पुरूष की सहायता चाहिए। यह इन दिनों युवावस्था में शस्त्रधारी योद्धा के रूप में इन पर्वतीय क्षेत्र में ही विचरण कर रहे हैं। देखने में बहुत तेजस्वी, सुन्दर और कुलीन परिवार से है। आप उन की शरण में जाओ। नरेश ने पूछा आप इन्हें कैसे जानते हैं। उत्तर में ऋषि ने बताया, मैं जब प्रभु आराधना में प्रभु की निकटता प्राप्त करता हूँ तो महा आनन्दित होता हूँ। कभी कभी मेरे विचार में आता है कि प्रभु साकार हो, दर्शन दें तो मुझे एक अति सुन्दर, तेजस्वी, शस्त्रधारी केशों वाला युवक दिखवाई देता है। मैं उसी के दर्शन करता रहता हूँ। अब प्रश्न उठा, यह युवक कौन है और कहाँ मिलेगा ? सभी ने जब ध्यान केन्द्रित करके विचारा तो उनको एक ही व्यक्ति दृष्टिगोचर हुआ। वह था गुरू तेगबहादुर जी का बेटा गोबिन्द राय आनंद पुरी का वासी।

नरेश मेदनी प्रकाश ने समस्त सहयोगियों से विचार विमर्श के पश्चात गुरूदेव जी को अपनी नगरी नाहन आने का निमन्त्रण भेजा। जो स्वीकार कर लिया गया और यमुना किनारे नया नगर पाऊँटा बसा कर रहने लगे।

नाहन नगर में पदार्पण

हिमाचल प्रदेश के बिलकुल पूर्व में सिरमौर नाम की पर्वतीय रियासत थी। जिसकी राजधानी नाहन नगर थी। नाहन आनन्दपुर से पूर्व दक्षिण की ओर लगभग 100 कोस की दूरी पर स्थित है। यहां पर उन दिनों मेदनी प्रकाश नाम का नरेश राज्य करता था। सिरमौर क्षेत्र के पूर्वी सीमा पर यमुना नदी बहती है। यमुना के उस पार गढ़वाल रियासत (प्रदेश) है, जहां पर नरेश फतेहशाह राज्य करता था। इन दोनों राजाओं में सीमा विवाद के कारण तीव्र मतभेद चल रहा था। फतेहशाह ने मेदनी प्रकाश के कुछ भूभाग पर अवैध कब्जा कर रखा था। जब इसकी पुत्री की सगाई कहिलूर के नरेश भीमचन्द के पुत्र के संग हुई तो यह अपना पक्ष सैन्य दृष्टि से भारी महसूस करने लगा और मेदनी प्रकाश को आँखें दिखाने लगा। जब मेदनी प्रकाश को इस रहस्य का पता लगा तो वह गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी की सहायता लेने आनन्दपुर पहुँचा। उसको मालूम हुआ, गुरूदेव जी आपसी झगड़ों का कड़ा विरोध करते हैं और मतभेदों का कोई सम्मान जनक हल खोज निकालते हैं। अतः उसने गुरूदेव जी के समक्ष प्रार्थना की कि आप मेरे यहां नाहन नगर पधारे वहां बहुत रमणीक स्थल है और घने जंगलों में शिकार भी बहुत है, जिससे आप को हर प्रकार की सुविधा ही होगी। यह निमन्त्रण पाकर माता गुजरी जी ने भी गुरूदेव जी को नाहन चलने का परामर्श दिया। वह कहिलूर की विस्फोटक स्थिति से कुछ समय के लिए दूर चले जाने के पक्ष में थी। गुरूदेव जी ने माता जी का आदेश मानकर नाहन प्रस्थान कर गये किन्तु आनन्दपुर की सुरक्षा के लिए अपनी सैनिक टुकड़ियां पीछे छोड़ गए।

नाहन में पदार्पण करने पर मेदनी प्रकाश ने गुरूदेव जी का भव्य स्वागत किया और आपको रमणीक स्थल दिखाये, जिन में से यमुना नदी के किनारे का ऊँचा क्षेत्र आपके मन को भा गया। यह स्थान सामरिक दृष्टि से भी अति उत्तम था। जब आपने यहाँ पांव टिक्का दिया तो स्थानीय जनता ने इस स्थान का नाम पांउटा रख दिया अर्थात पांव रखने वाला स्थान। आपने यहां अक्टूबर, 1684 में नगर निर्माण का आदेश दिया। गुरूदेव जी के साथ हजारों स्वयं सेवक सैनिक रूप में थे। इसलिए नरेश मेदनी प्रकाश की शक्ति अचानक बहुत अधिक हो गई। अतः इसके विपरीत नरेश फतेहशाह स्वयं को कुछ दबाव में महसूस करने लगा। किन्तु गुरूदेव जी तो प्रेम का संदेश प्रसारित करने वाले थे। युद्ध तो वह चाहते ही नहीं थे परन्तु शक्ति सन्तुलन की दृष्टि से सैन्य बल बनाये रखना उनका एक मात्र उद्देश्य था। गुरुदेव जी ने एक प्रतिनिधि मण्डल भेजकर नरेश फतेहशाह को बुला लिया। फतेहशाह को गुरूदेव जी ने समझाया-बुझाया। वह गुरूदेव जी के वचनों से इतना प्रभावित हुआ कि अपने पुराने शत्रु मेदनी प्रकाश को भागकर गले लगा लिया और एक विशेष संधि के अन्तर्गत उस का क्षेत्र उसको लौटा दिया।

समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर गुरूदेव जी ने पाँउटा में एक किले का निर्माण करवाया। सेना की भर्ती की तरफ ध्यान केन्द्रित किया और युद्ध अभ्यास में तीव्रता लाने के लिए अपनी सेना का पुर्नगठन किया।

पीर बुद्ध शाह

'पाऊँटा साहब' के पश्चिम की ओर लगभग 15 कोस की दूरी पर सढौरा नाम का एक कस्बा है। यह अम्बाला नगर से लगभग 15 कोस पूर्व में स्थित है। यहां के सूफी संत, पीर बुद्ध शाह जी की इस क्षेत्र में काफी मान्यता थी। उन का असली नाम शेख-बदर-उद-दीन था। उदारवादी विचारों के होने के कारण जहां उनके हजारों मुसलमान मुरीद थे, वहीं उस क्षेत्र के हिन्दू भी उनका बहुत सम्मान करते थे। आध्यात्मिक दुनिया के पांधी होने के कारण वह गुरू गोबिन्द राय (सिंह) जी को जब मिले तो उन्हीं के होकर रह गये। आप जी प्रायः गुरूदेव जी के दर्शनों को पाऊँटा आते रहते और अपनी आध्यात्मिक उलझनों का समाधान पा कर सन्तुष्टि प्राप्त करते। ये गोष्ठियां आपके जीवन में क्रान्ति लाती चली गई। एक बार सढौरा में कुछ पठान सैनिक आपसे मिलने आये और उन्होंने आप से विनती की कि हमें औरंगज़ेब ने अपनी सेना से निष्कासित कर दिया है। अतः हम बेरोजगार हैं, हमें काम चाहिए। पीर बुद्ध शाह जी को उन पठानों की दयनीय दशा पर दया आ गई और उन्होंने उन सैनिकों को गुरू गोबिन्द सिंघ जी के पास सिफारिश करते हुए भेजा कि इनको आप अपनी सेना में भर्ती कर लें। गुरूदेव जी ने पीर जी का मान रखते हुए इन पाँच सौ सैनिकों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया और अच्छे वेतनमान निश्चित कर दिये। वास्तव में औरंगज़ेब ने इन सैनिकों को 'हुक्म-अदूली' की धारा पर दण्डित किया था। इन सैनिकों के सरदारों के नाम क्रमशः काला खान, भीखन खान, हयातखान, उमर ख़ान और जवाहर ख़ान था।

साहबजादा अजीत सिंह का जन्म

पाऊँटा नगर में 7 जनवरी 1687 (संवत 1743) को गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी के घर प्रथम सपुत्र अजीत सिंह ने माता सुन्दरी जी की कोख से जन्म लिया। इस शुभ अवसर पर पाऊँटा नगर में हर्षोल्लास छा गया और विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। गुरूदेव जी को सभी लोगों से बधाइयां मिलने लगी। इस पर आपने भी सभी को उपहार दिये और मिठाइयां बांटी।

निर्मला अभियान

भारतीय समाज में पठन-पाठन व अध्ययन के काम को ब्राह्मणों ने अपनी धरोहर बना रखा था। ब्राह्मण सँस्कृत भाषा को देव वाणी

कहते थे और अन्य किसी को यह भाषा पढ़ने की अनुमति नहीं प्रदान करते थे। गुरूदेव जी ने निर्णय लिया कि ब्राह्मणों के इस एकाधिकार को समाप्त करना आवश्यक है। समस्त जन साधारण को सँस्कृत व अन्य भाषाएं पढ़ने का अधिकार होना चाहिए। इस प्रतिबन्ध से मुक्ति दिलवाने के लिए गुरूदेव जी ने पाऊँटा साहब में आपका आश्रय लिये हुए एक पण्डित रघुनाथ से कहा कि वह सिक्खों को सँस्कृत पढ़ाए। उसने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। वह ब्राह्मणों के अतिरिक्त जनसाधारण को सँस्कृत पढ़ाना, ब्राह्मणों के अधिकारों पर छापा मारना समझता था। इस घटना के कारण गुरूदेव जी ने अपने निर्णय को शीघ्र ही व्यवहारिक रूप दे दिया। उन्होंने रघुनाथ ब्राह्मण को तो कुछ नहीं कहा, परन्तु अपने सेवकों में से पाँच सुयोग्य सिक्खों का चुनाव किया। इस चुनाव में गुरूदेव जी ने उनके विद्या प्रेम और शिक्षा अर्जन के सामर्थ्य को परखा और उनको गेरूए वस्त्र पहना कर बनारस सँस्कृत का अध्ययन करने भेज दिया। वे कई वर्ष सँस्कृत पढ़ते रहे। जहाँ इन सिक्खों ने विद्या ग्रहण की, वहाँ अब चेतन मठ नामक गुरू की संगत है। बनारस से लौटते ही इन्होंने गुरूदेव जी की इच्छा के अनुसार अमृत धारण किया और सिक्ख रहित मर्यादा में रहने लगे। सँस्कृत का अध्ययन करने गये सिक्खों का नाम क्रमशः इस प्रकार था – रामसिंघ, करम सिंघ, गण्डा सिंघ, वीर सिंघ और सोभा सिंघ।

गुरूकाल में ही इन सँस्कृत विद्या प्राप्त सिक्खों ने देश के विभिन्न क्षेत्र में गुरमत सँस्कार व शिक्षा का प्रचार आरम्भ कर दिया। वे सिक्ख पंथ के मूल प्रचारक कहलाये। बाद में उन्हीं की परम्परा में निर्मले महंतों ने प्रचार को सुचारू ढंग से चलाने के लिए अखाड़ों की स्थापना की। सर्वप्रथम अखाड़ा प्रयाग में स्थापित किया गया, तद्पश्चात कनखल, काशी, ऋषिकेश, अमृतसर इत्यादि स्थानों पर भी अखाड़े बनाये गये जो बाद में विद्या प्रसार की दृष्टि से बहुत लाभदायक हुए। इन सिक्खों से ही निर्मला सम्प्रदाय प्रारम्भ हुआ जिन्होंने गुरमति विद्या का प्रचार एवं प्रसार के लिए कई अनमोल गुरमत दर्शन की पुस्तकों की रचना की। समय के अन्तराल के साथ पंजाब के नरेशों ने पटियाला, नाभा और जीन्द इत्यादि ने धन एकत्रित कर निर्मलों का एक सुप्रसिद्ध अखाड़ा 'धर्म ध्वज' नाम से स्थापित किया। इन रियासतों ने मिलकर इस अखाड़े की 30 सूत्रीय एक विशेष नियमावली तैयार की जो आज तक इस 'धर्म ध्वज' अखाड़े और इसकी शाखाओं को कार्यरत रखे हुए है।

राम राय के संग भेंट

सातवें गुरू श्री गुरू हरि राय साहब जी ने अपने ज्येष्ठ सुपुत्र राम राय को औरंगज़ेब के पास उस के आग्रह पर उसके संशय निवृत्त करने भेजा था और चलते समय सावधान किया था कि बेटा कहीं सत्ताधारियों के वैभव अथवा दबाव में न आना, किन्तु रामराय जी ऐश्वर्य की चकाचौंध में यह वचन भूल गये और उन्होंने गुरूवाणी की पंक्तियां बदल डाली। बस इस भयंकर भूल के कारण उन्हें, पिता हरिराय जी ने, गुरू घर में से निष्कासित कर दिया। औरंगज़ेब ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए फूट डालने के विचार से राम राय को एक जागीर दे दी जिस का नाम बाद में देहरादून प्रसिद्ध हुआ। उन्हीं दिनों गढ़वाल के राजा फतेहशाह ने भी पाँच गाँव की भूमि उन्हें अपनी ओर से भेंट की। अतः राम राय जी यहीं डेरा बना कर स्थाई रूप में निवास करने लगे। यह स्थान पाऊँटा नगर के पूर्व 20 कोस पर है। जब राम राय जी को गुरू गोबिन्द सिंघ जी के नाहन में आने और पाऊँटा नगर बसाने की सूचना मिली तो उनके हृदय में गुरूदेव जी से भेंट करने की उत्सुकता उत्पन्न हुई। वास्तव में वह अपने मसंदों से तंग आये हुए थे क्योंकि मसंद उनकी आज्ञा के विरूद्ध मनमानी करते थे। मसंदों के विपरीत आचरण के कारण वह अब पीड़ित थे क्योंकि जिन मसंदों की सहायता से उन्होंने अपना गुरूडम चलाया हुआ था वे ही उनके लिए घातक सिद्ध हो रहे थे। राम राय जी की वृद्धावस्था के कारण वे अब अपने आप को डेरे के स्वामी समझने लगे थे और माया (धन-सम्पदा) में लूट मचा रखी थी। रामराय जी ने गुरूदेव जी को संदेश भेजा कि वह उन से गुप्त रूप में मिलना चाहते हैं। गुरूदेव जी ने उन्हें बुला लिया और यमुना नदी के बीच पाट में एक विशेष नाव में भेंट वार्ता हुई। राम राय जी आयु में बड़े थे किन्तु रिश्ते में गुरूदेव जी उनके चाचा लगते थे। मिलने के समय राम राय जी ने गुरूदेव जी को शीश झुका कर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और विनती की कि मेरी पिछली भूलें क्षमा की जाएं और उनकी मृत्यु के पश्चात उनके परिवार की रक्षा की जाये। गुरूदेव जी ने वचन दिया ऐसा ही होगा। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें और उनको कृतार्थ किया।

कपाल मोचन

जगाधरी से पाँच कोस उत्तर दिशा की ओर सढ़ौरा नामक स्थान के समीप कपाल मोचन तीर्थ स्थल है। यहाँ कार्तिक पूनम के दिन एक विशेष मेले का आयोजन किया जाता है। किवदन्तियों के अनुसार श्री रामचन्द जी ने एक दैत्य का सिर काटा था। वह सिर महोदर ऋषि की टांगों से चिपक गया। जब उसने इस तीर्थ पर आकर स्नान किया तो कहीं जाकर सिर उसकी टांग से पृथक हुआ। सन् 1685 में गुरूदेव जी पाऊँटा नगर से यहाँ मानव कल्याण के लिए पधारे। उन्होंने लोगों को यहाँ कुबुद्धि करते हुए ही पाया। यहाँ तक कि कपाल मोचन सरोवर के निकट ही कई व्यक्ति मलमूत्र त्यागने लग जाते थे। जिससे सरोवर की पवित्रता तो भंग होती ही थी अपितु प्रदूषण के कारण लोगों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव हो रहा था और हैजा इत्यादि रोग फैलने का भय उत्पन्न हो गया। जब गुरूदेव जी ने कुव्यवस्था देखी तो वह बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने तुरन्त इस पर्यटक स्थल के पर्यावरण को स्वच्छ बनाने का निर्णय लिया। आपने अपने समस्त शस्त्रधारी सेवकों को सरोवर के चारों ओर तैनात कर दिया और आदेश दिया कि यदि कोई व्यक्ति यहाँ शौच करता हुआ पाया जाता है तो उसकी पगड़ी उतार कर दण्ड रूप में रख ली जाए। सेवकों ने ऐसा ही किया। बहुत से लोग पकड़ लिये गये, लगभग जिनकी संख्या सात सौ थी। सभी की पगड़ी अथवा पगड़ी की कीमत अनुसार राशि वसूल की गई। ऐसा करने पर सभी लोग सतर्क हो गये। गुरूदेव जी का ऐसा करने का एकमात्र उद्देश्य था कि लोगों को सरोवर

की पवित्रता का अहसास हो जाए। उन दिनों लगभग सभी लोग पगड़ी धारण करते थे और पगड़ी व्यक्ति का सम्मानित चिन्ह हुआ करता था। पगड़ी का जब्त होना अर्थात इज्जत का खोना माना जाता था। इस प्रकार गुरूदेव जी ने लोगों में जागरूकता लाने के दृष्टिकोण से कुछ नये नियम बनाये जिससे सदैव पवित्रता अथवा स्वच्छता बनी रहे। यहाँ से लौटते समय इन पगड़ियों को धुला कर कुछ सम्मानित सज्जनों को उपहार स्वरूप भेंट कर दी।

राम राय की मृत्यु

बाबा राम राय जी के डेरे में उनके बिगड़े हुए मसंदों की चलती थी। बाबा जी उनकी कठपुतली बनकर रह गये थे। एक दिन राम राय जी समाधि लगाकर पवन आहारी हो गये अथवा उन्होंने दशम द्वार श्वास चढ़ा लिये। जिससे उनकी हृदयगति अति धीमी हो गई। मसंदों ने उनको मृत घोषित कर दिया परन्तु उनकी पत्नी पँजाब कौर ने इस बात का सख्त विरोध किया और कहा कि वह अभी जीवित हैं और मुझे बता कर समाधिलीन हुए हैं किन्तु मसंदों ने बलपर्वूक उन की चिता रच दी और सँस्कार कर दिया। इस बात की सूचना पँजाब कौर ने गुरूदेव जी को पाऊँटा नगर भेजी। गुरूदेव जी तुरन्त शोक समाचार पाते ही देहरादून पहुँचे। वास्तव में मसंदों ने अवसर पाते ही राम राय को जीवित जलाकर उनकी हत्या कर दी थी और वह आश्रम के चढ़ावे का सारा धन स्वयँ हथियाना चाहते थे। इसी संदर्भ में माता पँजाब कौर ने गुरूदेव जी से सहायता मांगी थी। अत: गुरूदेव जी ने अपने वचन अनुसार उनकी सहायता करने पहुँच गये। गुरूदेव जी ने युक्ति से काम लिया। सभी मसंदों को शोक सभा में आमन्त्रित किया गया और सभी को पुरस्कृत करने का झांसा दिया गया। जब सभी इक्ट्ठे हुए तो गुरूदेव जी के शूरवीरों ने अपराधि यों को धर दबोचा और माता पँजाब कौर के कथन अनुसार कठोर दण्ड दिये। कुछ को बंदी गृह में डाल दिया। गुरूदेव जी ने उन्हें सम्बोधित करते हुए स्पष्ट किया कि वे देहरादून घाटी से दूर नहीं, कुछ ही घंटों में वे लौटकर यहाँ पहुँच सकते हैं। यदि किसी मसंद की शिकायत दोबारा उन तक पहुँची तो उसको मृत्यु दण्ड भी दिया जा सकता है। इस प्रकार गुरूदेव जी माता पँजाब कौर की सहायता करके लौट आये।

नरेश फतेहशाह की लड़की के विवाह का निमन्त्रण

गढ़वाल श्रीनगर के नरेश ने गुरूदेव जी को अपनी पुत्री के शुभ विवाह पर आमन्त्रित किया। गुरूदेव जी को भीमचन्द के मन के खोट का आभास था, अत: उन्होंने स्वयँ वहाँ जाना उचित नहीं समझा और अपने दीवान नन्दचन्द के हाथ बेटी के लिए अनेक मूल्यवान उपहार फतेहशाह के पास तम्बोल के रूप में भिजवा दिये। राजा फतेहशाह ने सिक्खों की शूरवीर सैनिक टुकड़ी को सम्मान से नगर से बाहर एक अच्छे स्थान पर ठहराया।

गुरूदेव जी द्वारा भेजे गये उपहारों को जब सबके देखने के लिए रखा गया तो भीमचन्द को गुरूदेव जी का तम्बोल बहुत अखरा। गुरूदेव जी को वह अपना शत्रु मानने लगा था और अपनी होने वाली पुत्र-वधू के लिए शत्रु द्वारा भेजे गये लाखों के उपहार उसे स्वीकार नहीं थे। यों भी वह नहीं चाहता था कि उसका समधी फतेहशाह गुरूदेव जी से मैत्री रखे। अत: रंग में भंग डालने के लिए उसने वहाँ भी शत्रुता के बीज बो दिये। फतेहशाह से उसने स्पष्ट कह दिया कि गोबिन्द राय (सिंघ) उस का परम शत्रु है। वह अपने शत्रु के मित्र के घर अपने लड़के की शादी नहीं करेगा। इस पर फतेहशाह घबरा गये और उन उपहारों को लेना चाहकर भी खुले में स्वीकार नहीं कर पाया। नन्दचन्द को स्थिति में विस्फोट की गंध मिली। अत: उसने समय रहते अपना सामान एकत्र कर वहाँ से चले जाने में ही अपनी कुशलता देखी और वह वापिस चल पड़े। भीमचन्द की सेना ने तम्बोल लूटने का दुस्साहस किया किन्तु दीवान नन्द चन्द ने उन्हें ऐसे करारे हाथ दिखलाए कि वह अपनी जान बचाकर भागे। पाऊँटा पहुँच कर उसने गुरूदेव जी को सारी स्थिति से अवगत करवा दिया।

उधर फतेहशाह की लड़की का विवाह हो जाने के उपरान्त समस्त पर्वतीय नरेशों ने, जिनमें विशेष कर चम्बा, सुकेत, मण्डी जसवाल, हंडूर भंबोर, कुटलोड, नूरपुर, किश्तवार, नदौण, कहिलूर, गढ़वाल, ढडवाल, चंदौर इत्यादि थे, को एकत्रित किया और सभा बुलाई। इस सभा में यह प्रस्ताव पारित किया गया और गुरूदेव जी को लिखकर भेजा गया। वे उनकी अधीनता को स्वीकार कर लें।

'हमने अब तक आपको कुछ कहना ठीक नहीं समझा क्योंकि आप गुरू नानक देव जी की गद्दी पर विराजमान हो, परन्तु आपने उनकी सभी परम्पराएं बदल दी हैं। अत: हमारे से आपका राजसी आचरण और ज्यादा सहन करना कठिन हो गया है। यदि आप सुखी रहना चाहते हो तो आज्ञाकारी प्रजा की भांति रहें। पिछले कृत्यों की क्षमा मांगें और आगे से हमारे आदेश पालन करने का प्रण करें। यदि ऐसा नहीं करना तो आनन्दपुर छोड़ कर चले जाएं। यदि स्थान छोड़ने के लिए तैयार नहीं तो युद्ध करके हम यह स्थान छुड़वा लेंगे।'

इस पत्र के उत्तर में गुरूदेव जी ने संदेश भेजा - 'हम किसी की हथियाई जमीन पर नहीं रहते। पिता जी (श्री गुरू तेग बहादुर जी) ने इस स्थान को मूल्य देकर खरीदा है। हम किसी की प्रजा नहीं। युद्ध की धमकियाँ व्यर्थ है। यदि तुम्हें युद्ध करने का बहुत ही चाव है तो हम भी उस के लिए तैयार हैं।'

समस्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए गुरूदेव जी ने युद्ध के लिए तैयारियां आरम्भ कर दी और आक्रमण का मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए कटिबद्ध हुए। रणनीति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पाऊँटा नगर के उत्तर की दिशा में 6 कोस की दूरी पर भंगाणी नामक स्थान को

सामरिक दृष्टि से युद्ध के लिए उपयुक्त जानकर मोर्चे बनाने लगे। यही वह स्थान है, जहाँ से प्राचीनकाल में नाहन और देहरादून का सड़क से सम्बन्ध स्थापित होता था और जहाँ से किश्तियों द्वारा यमुना पार की जाती थी। यमुना के उस पार चूहड़पुर नामक गांव है

कालसी ऋषि का निधन

कालसी के ऋषि ने जब अपना अन्तिम समय निकट जाना तो आराधना की कि प्रभु ! मुझे साकार रूप में एक बार प्रत्यक्ष दर्शन दे कर कृतार्थ करें। उधर पाऊँटा नगर में गोबिन्द राय जी भी व्याकुल दिखाई देने लगे। उन्होंने तुरन्त नाहन से मेदनी प्रकाश को बुला भेजा और कहा हमारे साथ यमुना के उस पार शिकार करने चलो। नरेश फतेहशाह के क्षेत्र में जाने को अब कोई भय नहीं था क्योंकि उसके संग अब मैत्री की संधि हो चुकी थी। गुरूदेव जी शिकार खेलते खेलते कालसी के निकट पहुँच गये।

ऋषि ने अपना अन्तिम समय निकट जानकर अपने सेवक से कहा – जाओ, जल्दी से उस युवक को ढूँढ कर लाओ जो इन दिनों यहीं विचरण कर रहे हैं। सेवक चान्दो ने पूछा आप उनका परिचय दे अथवा कोई पहचान बता दें जिससे उनको मिलने में और पहचानने में सहजता हो जाए। इस पर ऋषि ने कहा – वह सुन्दर, शस्त्रधारी, लम्बे तथा तेजस्वी युवक है, जिनकी विशेष पहचान उनके बाजू सीधे करने पर इतने अधिक लम्बे हैं कि वह घुटनों से स्पर्श करते हैं। जैसे ही वह मिले मेरा उनको संदेश देना कि मैं मृत्यु शैय्या पर हूँ और अन्तिम दीदार की चाहत रखता हूँ।

सेवक उनका संदेश लेकर आस-पास के वनों में ऐसे युवक की खोज में जुट गया। जल्दी ही उस का परिश्रम रंग लाया, उसे घोड़ों की टापों के चिन्ह दिखाई दिये। वह इन टापों के पीछे चल पड़ा, कुछ ही दूर जाने पर उसे राजसी पोशाकों में कुछ शिकारी दिखाई दिये। वह तुरन्त वहीं पहुँचा परन्तु दुविधा में था कि वह युवक इन में से कौन है ? कैसे पहचाना जाए, जब तक कि वह अपने बाजू सीधे नहीं करते। कुछ समय प्रतीक्षा करने के पश्चात 'चान्दो' ऋषि जी द्वारा बताये परिचय के अनुमान अनुसार गोबिन्द राय (सिंघ) जी के पास पहुँचा और विनती करने लगा कि कृपया आप अपने बाजू सीधे कर के दिखाए ताकि मैं जान सकूँ कि आप वहीं है, जिसे मेरे गुरू जी ने खोजने भेजा है। गुरूदेव जी मुस्कुरा दिये और बाजू सीधे करके उसे दिखाए। वास्तव में वह घुटनों को स्पर्श कर रहे थे। वह यह देखते ही खुशी से चिल्ला उठा। आप वहीं है, जिसके लिए मेरे गुरू जी ने संदेश भेजा है। उत्तर में गुरूदेव जी कहने लगे – हाँ तुमने ठीक पहचाना है। हम उन्हें ही मिलने आये हैं। तभी नरेश मेदनी प्रकाश को स्मरण हो आया कि यहाँ पर तो एक दीर्घ आयु के ऋषि जी का आश्रम है जहाँ हम कुछ समय पहले उनके दर्शनों को आये थे। सेवक चान्दों ने गुरूदेव जी को ऋषि का सन्देश सुनाया और कहा वह केवल एक बार आप के दर्शन करना चाहते हैं और कहते हैं आप के दर्शनों के लिए ही उनके प्राण शरीर में अटके हुए हैं, जैसे ही आप उनको दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे तो वह शरीर त्याग देंगे।

गुरूदेव जी तथा उनके संगी सभी ऋषि के आश्रम पहुँचे। उस समय वह धूप में लेटे बेसुध पड़े थे, शीत ऋतु की संध्या होने को थी। गुरूदेव जी ने उनको अपनी गोदी में लिया और जल मंगवाकर पिलाया, जैसे ही ऋषि जी सुचेत हुए वह खुशी से खिल उठा और गुरूदेव जी के चरणों में लेट गया और कहने लगा – 'बस अब मेरी अन्तिम इच्छा पूर्ण हुई, अब मेरे श्वासों की पूंजी समाप्त है' और देखते ही देखते उस ने शरीर त्याग दिया। गुरूदेव जी ने वहीं उनकी अंत्येष्टि उनकी इच्छा अनुसार सम्पन्न कर दी और वापिस लौट आये।

बारात का प्रस्थान

इन्हीं दिनों भीमचन्द के लड़के अजमेर चन्द का विवाह निश्चित हो गया। भीमचन्द बारात लेकर श्रीनगर (गढ़वाल) की ओर चला। रास्ते में पाऊँटा नगर पड़ता था। इसलिए भीमचन्द के मन का चोर एक बार फिर खुराफात पर आमादा हुआ। बारात में उसके साथ दस बारह अन्य पहाड़ी राजाओं की सेनाएं भी थी। भीमचन्द की अपनी सेना तो थी ही, इस प्रकार कहिलूर नरेश इस समय अपने को अधिक सबल और शक्तिशाली समझ रहा था। अत: उसने इरादा बनाया कि मार्ग में बिना ललकारे वह सेनाओं की सहायता से पाऊँटा नगर व गुरूदेव जी का आश्रम लूट लेगा। यदि गुरूदेव जी की ओर से सैनिक विरोध हुआ भी तो उन्हें पराजित करना सहज होगा क्योंकि शक्ति सन्तुलन उसके पक्ष में है।

दुष्ट की दुष्टता को पहले से ही जानकर दमन कर देना महापुरूषों की विशिष्टता होती है। गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी ने भीमचन्द के मन का चोर जान लिया, अत: उसे सन्देश भिजवा दिया कि तुम्हे नाहन राज्य से गुजर कर श्रीनगर जाने की छूट नहीं दी जा सकती। यदि तुम जबरदस्ती ऐसा करोगे तो तुम्हें हमारी सेनाओं के साथ युद्ध करके ही आगे बढ़ना होगा। गुरूदेव जी के सुचेत होने की सूचना पाते ही भीमचन्द घबरा गया। यों भी विवाह से पूर्व ही बारात का किसी युद्ध में उलझना उसे अपशगुन प्रतीत हुआ। उसकी योजना के अनुसार लूटपाट का कार्यक्रम था किन्तु गुरूदेव जी की धमकी पाकर हताहत सा भीमचन्द बारात का मार्ग बदल लेने को विवश हुआ। यह दूसरा मार्ग यमुनानगर से हरिद्वार होता हुआ श्रीनगर को जाता था जो कि लगभग 50 कोस लम्बा था।

पाऊँटा नगर में साहित्य की उत्पत्ति

इस्लाम में संगीत को हराम माना गया है। अत: औरंगज़ेब ने अपने शासनकाल में आदेश जारी करके राग-गायन वर्जित कर दिया और

राज्य को सम्पूर्ण इस्लामी प्रशासन घोषित कर दिया। कला-संगीत पर प्रतिबन्ध लगते ही, बहुत से संगीतकार, कवि, साहित्यकार इत्यादि बेरोजगार हो गये। जब उन्हें मालूम हुआ कि गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) बहुत बड़े कलाप्रेमी हैं और कवियों तथा संगीतज्ञों का सम्मान करते हैं अथवा धन दौलत देकर निवाजते हैं तो बहुत से कवि, संगीतकार और साहित्यकार आपको खोजते खोजते आपकी शरण में पाऊँटा नगर में आ गये। इधर गुरू नानक के घर में कीर्तन (धार्मिक संगीत) को प्रमुखता प्राप्त थी। गुरूदेव जी कीर्तन को प्रभु से सुमेल का सर्वोतम साधन मानते थे और वह स्वयँ मृदंग, तबला व सिरंदा बहुत सुन्दर बजाते थे, जैसे ही देश में राग सुनने व गायन करने वालों को दण्डित किया जाने लगा तो कई रागी पाऊँटा नगर में आपके दरबार की शोभा बढ़ाने लगे।

गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी जहाँ शस्त्र विद्या में निपुण थे, वहीं कीर्तन के भी आशिक थे। आप जी सँस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी तथा पँजाबी भाषाओं के उच्च कोटि के विद्वान होने के कारण अन्य विद्वानों को बहुत प्रोत्साहित करते थे। इसलिए आप के दरबार में 52 कवि थे जो कि आप को समय समय पर वीर रस की कविताएं सुनाने का कार्य करते रहते थे। आप ने जन साधारण तथा अपने सैनिकों में वीरता के संचार के लिए नया साहित्य रचने के आदेश दिये और कुछ पुरातन लोक कथाओं को नये अन्दाज में रच कर योद्धाओं में 'नये साधन' एक नये प्रयोग के रूप में उपलब्ध कराये जिससे वीरता की प्रेरणा मिल सके।

आपको पाऊँटा की भूमि के रमणीक स्थल जो कि यमुना के तट पर एकान्तवास का अभ्यास करवाते थे, बहुत भाते, यहीं बैठकर आप स्वयँ एकागर होकर प्रभु चरणों में लीन होते तो आपके अन्त:करण में से काव्य फूट निकलता - यहीं आप जी ने अकाल स्तुति, जाप साहब इत्यादि बहुत सी रचनाएं रची।

गुरूदेव जी ने समस्त 52 कवियों की आजीविका की सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली हुई थी। आप जब किसी कवि की रचना पर प्रसन्न हो जाते तो उसको इनाम के तौर पर खुले दिल से दौलत देते। इन कवियों में आप के पास कुछ मुसलमान कवि भी कार्यरत थे। गुरूदेव जी की उदार मानसिकता तथा विद्या प्रेम को देखते हुए भारत के विभिन्न विद्या केन्द्रों से अनेक विद्वान और काव्य प्रवीण व्यक्तित्त्व गुरू दरबार में लगातार आने लगे। कुछ कवि तो गुरूदेव जी के आश्रम में स्थायी तौर पर रहने लगे। कुछ थोड़े समय के लिए आकर पाऊँटा नगर में रहे और गुरू इच्छा के अनुरूप ज्ञान संकलन किया। गुरूदेव जी का विद्या दरबार इतना विख्यात हो गया था कि कुछ कविगण केवल तीर्थ की तरह दरबार में आते, ज्ञान-चर्चे करते और लौट जाते। तात्पर्य यह कि गुरू दरबार के स्थायी रहने वाले कवियों के अतिरिक्त भी वहाँ कवियों का निरन्तर आवागमन बना रहता था। दरबार से कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। गुरू जी उन्हें अवश्य ही धन, वस्त्र, कोई बहुमूल्य वस्तु इत्यादि इनाम में देते और उन्हें सम्मानित करते। इन कवियों की संख्या 52 से 125 के बीच तक मानी गई है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि अनेक अन्य कवि अस्थायी तौर पर भी बुलाए जाते थे।

इन सबने मिलकर इतनी विशाल रचनाएं लिखी कि पांडुलिपियों का संयुक्त वजन नौ मन बोझ हो गया और ग्रंथ का नाम विद्याधर रखा गया। आनन्दपुर पर मुग़ल आक्रमण के उपरान्त जब गुरूदेव जी ने अपने परामर्शदाताओं के दबाव में आकर 'आनन्दगढ़' किला छोड़ा और बाद में शाही सेनाओं ने विश्वासघात किया तो विद्याधर ग्रंथ शत्रुओं के कब्जे में चला गया और उन्होंने उसे नष्ट कर दिया।

'भंगाणी' रणक्षेत्र बन गया

आखिर पर्वतीय नरेशों का टिड्डी दल भंगाणी के मैदान में आ पहुँचा। एक अनुमान के अनुसार लगभग दस हजार सेना लेकर यह पर्वतीय नरेशों का दल आगे बढ़ा। जिसमें भाग लेने वाले भीमचन्द, कृपाल चन्द कटोच, केसरी चन्द जैसवाल, सुखदयाल जसरेत, हरीचन्द नालागढ़, पृथीचन्द ढढवाल, भूपाल चन्द मुलेर इत्यादि थे। पन्द्रह अप्रैल 1687 को दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। गुरूदेव जी की ओर से सैनिक टुकड़ियों की अगुवाई गुरुदेव जी की बुआ 'वीरों जी' के पाँचों सुपुत्र भाई संगोशाह, जीतमल, मोहरीचन्द, गुलाब राय और गंगा राम कर रहे थे। गुरूदेव जी के मामा कृपाल चन्द जी ने भी युद्ध में भाग लिया। दीवानचन्द, पुरोहित दयाराम और अन्य अनेकों सिक्खों ने अपने अपने जत्थों की कमान सम्भाली। राजा मेदनी प्रकाश ने अपने चुनींदा सिपाही गुरूदेव जी की सेना में भेज दिये। इस प्रकार गुरूदेव जी के पास योद्धाओं की संख्या 2500 से ऊपर हो गई। इस अवसर पर एक काशी का बढ़ई सिक्ख गुरू दर्शनों को आया जो गुरू भेंट के रूप में एक विशेष कलाकृति द्वारा तैयार लकड़ी की तोप लाया। इसकी विशेषता यह थी कि इसका बाहरी खोल लकड़ी का तथा भीतरी हिस्सा एक विशेष धातु द्वारा तैयार किया गया था जो बार बार प्रयोग करने पर गर्म नहीं होता था।

ये सरदार पठान अपने सवारों सहित वेतन प्रारम्भ से लेते रहे और युद्ध के करतब करते रहे। आज जब दलों में तैयारी का हुकुम हुआ तब इन्होंने मिलकर सलाह की कि हम युद्ध में न भाग लें और खिसक चलें। अत: षड्यन्त्र करके अगले दिन गुरूदेव जी की सेवा में हाजिर हुए और छुट्टी माँगने लगे। इस समय यह खबर किसी तरह भी सुखदाई नहीं हो सकती थी, पर गुरूदेव जी की ओर से इन्हें समझाया गया और वेतन बढ़ाने का भरोसा दिया गया, यहाँ तक वेतन पांच गुणा बढ़ा देने को कहा गया पर उन्होंने एक न मानी। संगोशाह ने अन्त में यह भी कह दिया कि यदि जीतकर आ गये तो मोहरों की एक एक ढाल भरकर देंगे, तब भी न माने। तब संगोशाह ने आकर गुरूदेव जी से कहा कि अब इन्हें रखना ठीक नहीं, यदि आप की आज्ञा हो तो इन्हें लूट पीटकर निकाल दें। तब सतगुरू जी ने कहा, इन्हें लूटो पीटो नहीं और वैसे ही जाने दो। अंतत: यों वे चले गये। यहाँ से तो यह कह कर चले थे कि घरों को जा रहे हैं, पर थोड़ी दूर जाकर यमुना के पार चले गये और गढ़वाल

के मार्ग पर पड़ गये और राजाओं से जाकर मिले। इनमें से एक काले खां ही अपनी टुकड़ी सहित रह गया। यह अपने साथियों को भी नमक हराम बनने से रोकता रहा, जब वे न माने, तब यह उनके साथ न गया और स्वामी भक्ति के लिए गुरूदेव जी की शरण में ही रहा। जब गुरूदेव जी ने यह बात सुनी,तब उसे भी चले जाने का सन्देश भेजा, पर वह न गया, तब गुरूदेव जी ने सम्मुख बुलाकर उसे कुछ इनाम दिया और कहा कि तुझे प्रसन्नता से भेज रहे हैं, तुझ पर किसी तरह भी नाजागी नहीं है। सो वह गुरू जी की आज्ञा मानकर किसी दूसरे स्थान पर चला गया पर शत्रु की सेना के साथ जाकर वह नहीं मिला। जो पठान फतेहशाह की सेना में जाकर मिल गये थे, उनके साथ फतेहशाह ने वायदा कर लिया था कि वेतन तथा दूसरे इनाम के अलावा, यदि फतेह हो गई तो तुम्हें लूट का माल भी दे दिया जायेगा। इस तरह लूटमार का लालच प्रायः सँसार के इतिहास में जंगी जोरावरों ने बरता है, जिससे निम्न भावों से जोश में वृद्धि होती है। पठानों को अब तक गुरू घर का सारा पता चल चुका था और वे खुश थे कि जाते ही सारे खजाने को दबा लेंगे और आजीवन धनी बनकर घरों को लौटेंगे।

इधर तो ये विदा हुए, उधर गुरूदेव जी के पास उदासी महंत कृपाल जी तपी पुरूष था और पाँच सौ उदासी साधुओं के साथ गुरूदेव जी के पास रहता था उस समय ये उदासी साधु कभी कभी कसरत भी करते थे और लड़ाई के करतब भी जानते थे। साधुओं के ढेरों का नाम 'अखाड़ा' भी इन कसरत करने वाले अखाड़ों से ही पड़ा है। ये पाँच सौ जवान तगड़े लड़ने वाले थे। पर जब इन्होंने देखा कि पाँच सौ पठान चलकर दूसरी ओर जा मिले हैं और शेष जातियों के लोग जिन्हें युद्ध विद्या सिखाई गई है, नये हैं और निश्चय ही हार होगी क्योंकि उधर पहले ही बहुत ताकत है और अब इतने योद्धा और जाकर मिल गये हैं, तब वे भी रातोंरात खिसक गये। सवेरे जब आप जी के पास खबर पहुँची कि उदासी साधु भी रात को चले गये हैं तब आप जी ने पूछा, क्या सारे ही चले गये हैं कोई रह भी गया है ? तब किसी ने बताया कि मण्डली तो चली गई है, पर महंत जी बैठे हैं। तब सतगुरू जी मुस्कुराये और बोले - वाह वाह, यदि जड़ रह गई तो सब कुछ रह गया। यदि प्राण बच रहे हैं तो सब कुछ बच रहा है। यदि महंत भी चला जाता तो गुरू के घर से इनका सम्बन्ध टूट जाता, अब सम्बन्ध बना रहेगा। ऐसे चेलों का क्या है जो अपने महंत को छोड़कर चले गये हैं, चेले और बन जायेंगे। जाओ कृपाल को बुला लाओ। जब महंत जी आये और शीश झुका कर बैठ गये, तब गुरूदेव जी ने मुस्कुरा कर पूछा - महंत जी ! चेले कहाँ हैं ? तब आप बोले - हम अल्पज्ञ हैं आपकी महिमा नहीं जान सकते। अतः दुनियादारी की दृष्टि रखने वाले विचलित होकर भाग गये हैं। यदि आपकी कृपा दृष्टि हो तो क्या नहीं हो सकता। इस बात का मुझे पूर्ण भरोसा है।

सोचने की बात यह है कि जिस सेना में से प्रसिद्ध पाँच सौ योद्धा पीठ दिखाकर चले जायें और शत्रु की सेना से जाकर मिल जायें, उसका असर शेष सेना पर कितना दिल ढ़हाने वाला तथा निराशा वाला होता है। फिर जिसमें से पाँच सौ और चले जायें तो साहस और उत्साह को और आघात पहुँचता है। एक हजार की कमी और वह भी बिल्कुल युद्ध के समय कोई छोटी बात नहीं पर गुरूदेव जी का अपना न झुकने वाला मन उत्साह में है और अपने सेनानियों में ऐसा उत्साह भर रखा है कि उन्होंने दिल नहीं छोड़ा। सभी कमर कसकर तैयार हैं। हरी भरी भंगाणी को जा रहे हैं, मोरचे बांधकर ठिकानों को सम्भाल रहे हैं। सच की नींव की नीति पर टेक रखने वाले नीतिज्ञ और नेता गुरूदेव जी ने एक चिट्ठी बुधूशाह को लिखी। उसमें लिखा कि जो पठान औरंगज़ेब की ओर से हटाये जाने पर हमारे यहाँ नौकर हुए थे, वे अब पहाड़ी राजाओं से जा मिले हैं। इस तरह की चिट्ठी भेजकर आप भंगाणी को जाने की तैयारी पर विचार करने लगे। कुछ सेना और जत्थेदार किले में रखे और उन्हें वहां की भली भान्ति रक्षा करने की आज्ञा दी। उधर भंगाणी में जो प्रबन्ध पहले भेजी गई सेना की टुकड़ी ने करने थे, उनके मुकम्मल हो जाने की खबर आ गई। गुरूदेव जी की बुआ के पुत्र पाँच भाई बड़े शूरवीर थे और गुरू जी की सेना में सेनानी जत्थेदार बनकर रहते थे। पाँचों ही बड़े शूरवीर और युद्ध विद्या में निपुण थे। पाँचों का ही गुरूदेव जी से अत्यन्त प्यार था। सबसे बड़ा संगोशाह था, जो कि आयुद्ध विद्या का निपुण था, दूसरा जीतमल तीसरा गुलाबचन्द, चौथा गँगाराम और पाँचवा माहरी चन्द था, ये बड़े उत्साह में थे और इनकी सेना बड़े चाव में थी। अब ये सारे तैयार थे कि खबर मिली कि फतेहशाह की सेना निकट आ रही है। गुरू जी की आज्ञा पाकर पाँचों भाई अपनी अपनी सेना को लेकर भंगाणी की ओर चल दिये। इस तरह सारा सामान करके गुरूदेव जी आप भी घोड़े पर चढ़कर चल दिये और पीछे पीछे आपकी अपनी सेना भी चल पड़ी।

भंगाणी पहुँचकर गुरूदेव जी ने सारी तैयारी देखी और अपनी सेना की योजना बाँधी और टुकड़ियाँ बांटकर मोर्चों पर टिका दिया।

शत्रु के दलों में युद्ध का मूल आक्रमणकारी इस समय फतेहशाह था क्योंकि उसी के क्षेत्र से नरेश भीमचन्द की प्रेरणा पर युद्ध थोपा जा रहा था। फतेहशाह धनवान और नीतिज्ञ तथा खूब बलशाली राजा था और भीमचन्द युद्ध का प्रेरक था, जो कि तीरदांजी तथा अन्य शस्त्र विद्याओं में प्रवीन अपने समय का बली योद्धा था। राजा हरीचन्द भी उस समय तीरंदाजी का उस्ताद था। शत्रु की सेना में उस समय ऐसे ऐसे शूरवीर थे, जिनके साथ युद्ध करना कोई आसान खेल नहीं था। गुरू साहब इस समय चढ़ती हुई जवानी में लगभग बीस वर्ष की आयु के थे, पर आप में युद्ध का उत्साह असीम था। धनुष विद्या में कमाल की प्रवीणता थी और अपनी सेना में, जो शरीर के साथ साथ 'दिल का बल' भरा था, वह उनकी एक अनोखी सफलता थी

शत्रु की सेनाएं अब यमुना के पार पहुँच चुकी थी और इस पार आकर मोर्चे बांधे खड़ी थी। गुरूदेव जी ने दयाराम को साथ लेकर शत्रु की सेना की व्यूह रचना को जाँचा। बांई ओर पठानी सेना थी, दांई ओर राजाओं की सेना थी। फतेहशाह पीछे था जो सारा प्रबन्ध कर रहा था। हरीचन्द हंडूरिया सबसे आगे वाली टुकड़ी में खड़ा था। इस तरह की पड़ताल अभी समाप्त हुई थी कि दक्षिण दिशा की ओर कुछ दूरी पर धूल उड़ती हुई दिखाई दी। इसे देखकर नन्द चन्द ने आकर खबर दी कि एक सेना आ रही लगती है। पहले तो मैं सोच में पड़ गया था, पर एक दूत खबर लाया है कि बुधूशाह चार पुत्र और सात सौ जवान लेकर आया है। आप यह खबर सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और संगोशाह को हुक्म दिया गया कि अपनी बांट में नई सेना के प्रबन्ध का विचार करके बुधूशाह को इसका ब्यौरा बता दें। बुधूशाह की कुमक की खबर सारे सिख दल में

झटपट फैल गई, इससे सबके दिलों में दुगुनी उमंग भर गई। संगोशाह ने गुरूदेव जी की राय से अपने दाब घाब के प्रबन्ध कर रखे थे। रणस्तम्भ गाड़ दिया था। अब इस बात पर विचार हो रहा था कि पहले हम चढ़ाई करें अथवा शत्रु का पहला वार देखें। इतने में उधर से अचानक वार हो गया। अब संगोशाह की ओर से बन्दूकों की भरमार हुई, पर वे बड़े वेग से उमड़ें आ रहे थे और हवा उनकी ओर वेग से जा रही थी, इधर की बन्दूकों और जंबूरों के धूएं उन्हें अन्धेरा कर रहे थे। उनके तीर और गोलियां निशाने पर बहुत कम बैठते थे। इधर से बहुत निशाने बैठते थे, पर वे बढ़ते बढ़ते एक ऐसे ठिकाने पर आ गये जहाँ पर एक नीचे स्थान पर संगोशाह के बंदूकची छिपे बैठे थे। इनकी भरी हुई तोड़ेदार बन्दूकों ने एक बार झड़ी लगा दी। तीन चार सौ पहाड़िये उसी स्थान पर हताहत हो गये। इससे जो सैनिक बढ़े आ रहे थे वे ठिठक गये और इधर से फिर गोलियां चलने लगीं। इस तरह दो तीन सौ और पहाड़िये हताहत हो गये। तब हरीचन्द ने सेना को पीछे हटा लिया और बांई ओर को चला गया। फतेहशाह ने पूछा - हरीचन्द ! गुरू के पास ऐसी सीखी हुई सेना कहाँ से आ गई है ? पठान तो उन्हें छोड़कर इधर आ गये हैं। हरीचन्द ने कहा, इन पठानों को सारे भेद का पता है, इन्हें आगे किया जाये। सो फतेहशाह ने भीखनशाह को बुलाकर कहा कि तुम्हें सारी सिक्ख सेना का पता है, तुम आगे बढ़ो और उन्हें हाथों हाथ ले लो। गुरू के खजाने की सारी लूट तो तुम्हारी होगी, यह बात तो पहले ही कही जा चुकी है, हम उसमें से भाग नहीं मांगेगे। इस तरह का लोभ देकर वह पठानों को आगे बढ़ाकर ले आया और संगोशाह की टुकड़ी पर आ झपटा। पठानों की सेना अब संगोशाह की टुकड़ी पर बढ़े जोश और वेग के साथ झपटी। आगे संगोशाह भी एक महान शूरवीर था, पठानों के आते ही उसने गोलियों की बौछार से मुँह तोड़कर उनकी खातिर की। पठान जिस तेजी से आकर पैर हिला देने की सोच रहे थे, वे हिला न सके। अब दोनों ओर से घमासान का युद्ध मच गया। इसे देखकर गुरूदेव जी ने नन्द चन्द और दयाराम को कुछ सेना देकर संगोशाह की सहायता के लिए भेज दिया। इन्होंने ऐसे तीर चलाये कि जो तीर जिसे लगा, वह नहीं बचा। इस स्थान पर संग्राम का बहुत सख्त जोर हो गया। गुरूदेव जी के पास लाल चन्द माही खड़ा था, वह बड़ा पहलवान और बलवान व्यक्ति था, सतगुरू जी से आज्ञा लेकर वह भी संगोशाह वाले स्थान पर जा पहुँचा। इसने पहलवानी बल से तीर चलाकर बड़े जवानों को मारा। इसके तीरों की मार देखकर दोनों पक्ष के लोग वाह वाह करने लगे।

लाल चन्द का युद्ध देखकर एक लाल चन्द नामक हलवाई भी शस्त्र लेकर उसी ठिकाने पर जा पहुँचा। पठानों को यह पता था कि पहला तो मछुआ है और दूसरा हलवाई है, फिर यह शूरवीर कैसे हो गये हैं। अब माहरी चन्द आगे बढ़ा, इस तेजी से कि शत्रु की सेना में घिर गया। इसने अपने बल और क्रोध में कितने ही पठानों का वध कर दिया। अब घोड़ा घायल हो गया था और आप भी मारा जाने वाला ही था, पर संगोशाह ने देखा कि भाई घेरे में फँस गया है, वह एकदम सवारों का दस्ता लेकर जा पहुँचा और जिस तेजी से गया था, उसी तेजी से भाई को घेरे से निकालकर ले आया। इस तरह उसके बचकर निकल जाने पर पठान चकित हो रहे थे। इस बात को दोनों ओर से सिक्खों की विजय का पहला कदम समझा गया। इस समय के युद्ध के शूरवीरों के नाम और युद्ध का संक्षिप्त वर्णन भी गुरूदेव जी ने स्वयँ किया है।

युद्ध क्षेत्र के बीचों बीच जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है घमासान युद्ध हो रहा था। नीचे की ओर से बुधूशाह उन्हें रोक कर खड़ा था। नदी के किनारे किनारे इस मैदान की लम्बाई काफी दूर तक थी। कुछ पहाड़ी राजाओं, सेना और दूसरे लोगों का भारी जमघट इधर था, इसलिए इस नीचे की ओर को रोकना जरूरी था। अत: इस ओर से बुधूशाह ने रोक रखा था कि इधर से शत्रु बीच के युद्ध की ओर सहायता के लिए पहुँच न सके। अन्त में इन्होंने एक गोलाई में होकर इक्ट्ठा धावा बोल दिया, जिसे बुधूशाह ने अपने बल और वीरता से रोका। पीर के चारों पुत्र अपनी अपनी सेना को चतुराई से लड़वा रहे थे। इस धावे को इन्होंने इस वीरता से रोका कि बढ़ती आ रही सेना के सैंकड़ों जवानों को मार दिया। गुरू साहब स्वयँ सारे मोर्चो का पता रख रहे थे और आवश्यकता पड़ने पर जगह जगह पर चक्कर लगाकर सारी स्थिति को देख रहे थे। वे बुधूशह और उसके सुपुत्रों की वीरता को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। अब आप आगे बढ़े, तब पहाड़िये कट गये और जब भारी रोक पड़ी तब सारे पीछे हट गये। इस समय बुधूशाह ने दूसरी टुकड़ी से धावा बोल दिया। जिसे सहन न कर सकने पर आसपास के और आगे बढ़े हुए पहाड़िये घबराकर उठ भागे। इन्हें भागते हुए देखकर गुलेरिया 'गोपाल' घबराया कि इनके भागने से कहीं सब ओर भगदड़ न मच जाये। वह आप आगे बढ़ा, भागते हुए सैनिकों ने जो जगह खाली की थी, वहाँ पर पहुँच कर उसने बढ़े आ रहे बुधूशाह की सेना को रोका। इसकी तीरंदाजी और इसके सिपाहियों की वीरता ने बुधूशाह की बढ़ती हुई टुकड़ी के तीर और बन्दूकें रोक दीं और तलवारों से हाथों हाथ लड़ाई होने लगी। पीर के मुरीद बड़ी वीरता से लड़े और जूझे। घोर गुत्थमगुत्था हो गया। दोनों ओर से अत्यन्त वीरता दिखाई गई। किसी का भी पैर पीछे न पड़ा। घमासान युद्ध हो रहा था कि गुरू जी ने इस ओर रूख किया। मामा कृपाल जी को बुधूशाह की सहायता के लिए भेजा। यह अपने साथियों सहित राजा गोपाल की सेना पर तीरों की वर्षा करता हुआ कुमक पर जा पहुँचे। इन तीरों की भरमार और उनके निशाने पर बैठने के कारण गोपाल की सेना को पीछे हटने पर विवश कर दिया, पर वैसे इस तरह से पीछे हटना एक दांव था, पर मुरीदों को भी तीरंदाजी का समय मिल गया। तीरों की दोहरी मार ने गोपाल की कोई भी चाल न चलने दी। साथियों को निराश देकर गोपाल ने निशाना बाँधकर मामा जी पर तीर छोड़ा, जो निशाने पर तो बैठा मगर लगा उनके घोड़े को। गोपाल ने आगे बढ़कर तीर मारकर पीछे हटना चाहा, मगर मामा जी ने पुकार कर कहा - तूने वार किया है और बदला देकर जा और एक तीर सेधकर मारा। गोपाल काफी लड़ाका था, घोड़े को चपला रहा था, आप तो बच गया, पर मामा जी का तीर घोड़े के कानफूल पर जा लगा और वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। गोपाल शीघ्रता से अपने आपको सम्भालकर पीछे सेना में जा घुसा और वहाँ पर टिक्कर खड़ा हो गया। इस संग्राम में बुधूशाह का एक पुत्र शहीद हो गया था। इधर जहाँ पर संग्राम था, वह स्थान खाली थी। मामा जी आगे बढ़े और बुधूशाह के पुत्र के शव को खोजकर ले आये। यों गोपाल की सेना को हल्का करके पीछे हटाकर मामा जी फिर गुरूदेव जी के पास जा पहुँचे और सारी वार्ता जा सुनाई।

फतेहशाह ने, जो कि सारे संग्राम का प्रबन्धक था, स्थान स्थान पर जाकर अपनी सेना के जमे हुए पैर देखे कि आगे नहीं बढ़ रहे हैं,

बल्कि पीछे पड़ रहे हैं, तब उसने हयात खां आदि पठान सरदारों को संदेश भेजा कि तुम बहुत ढींगे हांक रहे थे और हमने लूट का माल माफ करने का वायदा किया है, फिर अब क्या हो गया है आगे क्यों नहीं बढ़ते।

यह सुनकर हैयातखवां और निजाबतखवां आदि ने अपनी टुकड़ियों को सँभालकर धावा बोल दिया और बड़ी तेजी से तीर बरसाने शुरू कर दिये। दोनों पक्षों की सेना आमने सामने हुई और एक दूसरे को ललकारने लगे, धड़ाधड़ योद्धा धरती पर गिरने लगे। उन्होंने सिक्ख सेनाओं की यह दशा की, मगर उधर से भी तीरों की ऐसी भरमार हुई कि अनेकों ख़ान धरती पर लेट गये। हैयातखवाँ बड़े जोर से ललकारता, दांव बचाता, तीर चलाता और सारा जोर लगाता। यह देखकर उदासी संत कृपाल जी गुस्से में आकर गुरूदेव जी से पूछने लगे - साहब जी! हैयातखवाँ बड़ा बल लगा रहा है, इसके तीर भय पैदा कर रहे हैं यदि आप की आज्ञा हो तो नमक हरामियों को दण्ड दिया जाये। साहब जी ने मुस्कुराकर पूछा, 'तुम्हारे पास तो कोई शस्त्र नहीं है, कैसे मारोगे'? तब संत ने विनती की। मेरे पास यह धान पीटने वाला सोटा (कुतका) है। यदि आप की मुझ पर कृपा हुई तो यही मेरे लिए शस्त्र का काम करेगा। इस पर गुरूदेव जी मुस्कुराएं और कंधा थपथपाया और स्वीकृति प्रदान की।

तभी साधु ने अपने घोड़े को एड़ लगाई और हवा की भांति उड़ता हुआ हैयातखवां के पास जा खड़ा हुआ और ललकार कर बोला - आ जा, यदि तुझ में वीरता है तो आ मुझसे लड़। पीठ न मोड़, सम्मुख होकर दो हाथ देख लें। महंत कृपाल जी की ललकार सुनकर हैयातखवां ने उनकी हँसी उड़ाई किन्तु तलवार लेकर सम्मुख हुआ।

यह नजारा देखकर हर ओर से तीर और तलवारें खड़ी हो गई और चकित होकर देखने लगे कि हैयातखवां जैसे शूरवीर के साथ लड़ने के लिए कुतके वाला कौन आया है। इतने में हैयातखवां एक दांव देखकर बाज की फुरती से घोड़े को नचाकर साधु पर जा झपटा और बिजली की भांति तलवार का वार किया, पर साधु ने कुतके को ढाल के स्थान पर इस तरह से तलवार के आगे किया कि उस पर वार झेल लिया गया। तलवार टूटकर गिर पड़ी और हैयातखवां अपने आपको संभालने की चिन्ता में पड़ गया। तब साधु ने बड़ी फुरती से काम किया। दोनों रकाबों में सन्तुलन बनाकर खड़ा हो गया और अपना कुतका घुमाकर बड़े वेग से हैयात के सिर पर दे मारा। वह इस जोर से जाकर लगा कि हैयातखवां का सिर फूट गया। इस समय का हाल गुरू साहब जी ने स्वयँ यों लिखा है। महंत कृपाल जी ने अपना सोटा हैयातखवां के सिर पर इस प्रकार बलपूर्वक मारा कि उसका सिर फट गया जैसे कान्हा गोपियों का घड़े फोड़ा करते थे। सिर टुकड़े हो जाने से हैयातखवां घोड़े से उलटकर जमीन पर गिर पड़ा और घोड़ा उठकर भागा तथा अन्य पठान दौड़कर साधु को घेरने लगे। इधर जीतमल ने सवारों सहित आगे बढ़कर साधु को अपने घेरे में लेकर बचा लिया।

इस समय ज़ोर की लड़ाई हो रही थी कि हैयातखवां मारा गया। इसकी मौत से पठानों के छक्के छूट जाते, पर भीखम खवाँ ने समय को संभाला और घबराहट के कारण हिली हुई सेना को जाकर चुनौती दी कि शूरवीर बनो, हार खाकर क्या यही कहोगे कि साधुओं और नीची जाति के लोगों से पठान हार गये ? आओ, आगे बढ़ो, मैं तो खड़ा हूँ, मुझे आज अवश्य ही विजय प्राप्त करनी है। इस प्रकार की चुनौती भरी बातें सुनकर हारे हुए पठान सावधान हो गये। भीखम खवाँ आगे बढ़ा और उसके साथ ही बढ़ा निजावत खवाँ। उधर से हैयातखवां की मृत्यु को देखकर फतेहशाह ने अपनी सेना को आगे बढ़ाया। अब फिर शत्रु की सेना का बहुत जोर हो गया। हरीचन्द्र हंडूरिया बड़े क्रोध में आया। यह अपने समय का प्रसिद्ध तीरंदाज था। उसके तीरों से गुरूदेव जी की सेना का काफी नुकसान हुआ, जिससे गुरू की सेना में हलचल मच गई। गुरू साहब ने जब यह देखा कि साहबचन्द जो कि एक ओर से बड़े हठ के साथ जम रहा है और बड़े बल के साथ युद्ध कर रहा है पर अब उसका वश नहीं चल रहा, तब उन्होंने नन्द चन्द को कुमक के लिए भेजा और साथ ही दयाराम अपना तुमुल 'बड़े चले आ रहे निजाबत' को रोकने के लिए ले गया। इन्होंने और इनके जत्थे ने ऐसे बाण मारे कि बढ़े चले आ रहे अनेकों सैनिक गिर गये।

नन्द चन्द और दयाराम के बढ़ते चले आने पर अपनी सेना में उत्साह बढ़ गया और फिर सारे जमकर लड़ने लगे। नन्द चन्द ने अब धावा बोलकर एक पठान पर बरछी चलाई और उसे उसमें पिरोकर गिरा लिया, फिर एक और बरछी चलाई, पर वह घोड़े को लगी और वह वहीं पर ही रही। नन्द चन्द ने अब तलवार सम्भाली, सम्मुख होकर लड़ा और पीछे न हटा।

इस कोप भरी लड़ाई को लड़ते समय दो पठानों को मारकर, तीसरे के साथ लड़ते हुए इसकी तलवार भी टूट गई। शीघ्रता से इसने छाती के साथ से जमधर निकाला और उसे मार लिया। इसके हठ ने एक तहलका मचा दिया। अब इसको घेरे में आ जाने अथवा तीर का निशाना बन जाने में कोई देर नहीं थी कि दयाराम आगे बढ़कर इसके पास जा पहुँचा। इधर से गुरूदेव जी ने अपने मामा कृपालचन्द जी को, जो कि शूरवीरों को शान से भर रहे थे, सहायता के लिए भेज दिया, जिसने आगे बढ़कर घमासान युद्ध मचाया। मामा जी को कई तीर लगे घाव आए पर प्रभु ने उनके प्राणों की रक्षा की। चोट खा खाकर भी मामा जी पीछे नहीं हटे आगे बढ़ बढ़कर लड़े। कितने ही खानों को घोड़ों से नीचे गिराया और कितने ही मार दिये। अत: साहब चन्द जो कि बड़े हठ से इस ठिकाने पर जमा हुआ था, इन कुमकों के पहुँच जाने पर जमा रहा। इस तरह इन्होंने बहुत से पठानों का वध किया, केवल वही सिपाही बच रहे जो पीछे हट गये थे। इस स्थान पर भी युद्ध में सिक्खों ने अपना पासा भारी कर लिया। अनेकों शत्रुओं को मारा। जो बढ़कर आये थे वे अब पीछे हट गये। हरीचन्द इस ओर से थोड़ा सा पीछे हटकर भीखन खवाँ को टिकाकर और हौसला देकर संगोशाह की ओर शीघ्रता से चला गया। गुरू साहब ने स्वयँ युद्ध के इस दृश्य का इस प्रकार वर्णन किया है।

मैदान बहुत लम्बा था। जगह जगह पर मारो-मार हो रही थी, फतेहशाह उस पार से इधर को आ गया था, पर लड़ रही टुकड़ियों के पीछे खड़ा था। हताश होकर भागने वालों को दोबारा आगे भेजता, कुमकें भेजता और युद्ध को

सभी ओर से संभालता था। जिस ठिकाने पर संगोशाह लड़ रहा था, अब उधर जोर बढ़ रहा था। जिस ओर बुधूशाह था, उस ओर भी युद्ध जारी था और पीर जी का एक और पुत्र भी शहीद हो चुका था। पर पीर ने साहस नहीं खोया था और उनकी टुकड़ी उस ओर मैदान में डटकर युद्ध कर रही थी।

इस युद्ध में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जो कि पठानों और राजाओं को चकित करने वाली थीं। वे लोग जो कभी जंग में नहीं गये थे, उन्होंने भी वीरता दिखाई। गुरू जी के वीरता भरे जोश का यह प्रभाव था कि दयाराम ब्राह्मण शूरवीर बन गया था। खैर, वह तो शस्त्र विद्या में निपुण हो चुका था। चरवाहे तक भी युद्ध करने में अगुआ बन गये थे। एक साधु ने उठकर मुख्य पठान सरदार को मार लिया था। लालचन्द नामक एक हलवाई का जिक्र आया है जो युद्ध का रंग देखकर मैदान में कूद पड़ा था। इसने अमीर खाँ नामक एक पठान को जाकर चुनौती दी और हाथों हाथ लड़ाई करके उसे मार लिया था।

हरीचन्द, नजाबत आदि पठानों को एक ठिकाने पर खड़ा करके संगोशाह की ओर जा झपटा। इसे यह दिख रहा था कि यदि इस ओर जोर पड़ गया तो निश्चय ही हमारी हार हो जायेगी। संगोशाह यहाँ पर बड़े जोर का युद्ध कर रहा था और शत्रुओं को मार रहा था। राजा गोपाल अभी तक शूरवीरता से जमा खड़ा था। यह हाल देखकर ही हरीचन्द इस ओर लपका था। उधर से मधुकरशाह चन्देल भी इधर को ही आ लपका था। हरीचन्द ने आकर बड़ी वीरता से तीर चलाए, जिसे वे तीर लगे, वहीं मर गया। इसने गुरूदेव जी की सेना के अनेकों वीर हताहत किये। तब इधर से जीतमल जी हरीचन्द को बढ़ते हुए देखकर उससे जूझ पड़े और आमने सामने दांव-घाव और वार होने लगे। अब फतेहशाह का संकेत पाकर नजाबत खाँ भी इधर आ गया और आते ही संगोशाह के साथ टक्कर लेने लगा।

जीतमल ने हरीचन्द को तीर मारा, पर वह तत्काल ही घोड़े का पैंतरा बदलकर बच गया। फिर दांव-घाव लगाते हुए, चलते टालते हुए दोनों के तीर चले, दोनों के घोड़ों को लगे और दोनों गिर पड़े, फिर सँभले। फिर तीर चले, दोनों घायल हुए, पर थोड़े, फिर दोनों के तीर चले, हरीचन्द का तीर ऐसा सख्त लगा कि जीतमल जी का अन्त हो गया, पर हरीचन्द को ऐसे स्थान पर लगा कि वह मूर्च्छित होकर गिरा और उसके साथी उसे उठाकर ले गये। इधर गुरूदेव जी के योद्धा जीतमल जी के शव को उठाकर गुरूदेव जी के पास ले आये, जिसकी शूरवीरता को गुरूदेव जी ने बहुत ही सराहा और आशीर्वाद दिया।

उधर जब हरीचन्द को मूर्च्छित दशा में उठाकर ले गये तो उसे देखकर फतेहशाह बहुत दुखी हुआ। बहुत से शस्त्रधारी लोगों ने इसे चारों ओर से घेर लिया। भीमचन्द भी यहीं कहीं था कि गुरूदेव जी के एक गोल अंदाज रामसिंह ने एक तोप चलाई, जो कि उसने एक विशेष कलाकृति द्वारा तैयार की थी जिसका बाहरी खोल लकड़ी का था और भीतरी भाग एक विशेष धातु का द्वारा बनाया गया था जो बार बार प्रयोग करने पर गर्म नहीं होती थी। उसके गोले से कुछ लोग हताहत हुए और बाकी के भय के कारण भाग गये। तोप के प्रयोग से युद्ध का जल्दी ही पासा पलट गया। फतेहशाह भी पीछे हट गया और नदी से पार होकर घोड़े पर चढ़कर भाग गया। इसे युद्ध भूमि से भागते हुए देखकर मध ुकर शाह डढ़वालिया और जसवालिया भी अपनी सेना लेकर भाग गये। इस समय का हाल गुरूदेव जी ने अपनी काव्य रचना विचित्र नाटक में लिखा है।

ये तो कायर बनकर भाग गये, पर हरीचन्द जिस को अब होश आ गया था। वह और ग़ाजीचन्द चन्देल ये नहीं भागे थे बल्कि शूरवीरता से मरना ही सफल समझ कर अड़ गये। उधर पठान भी न भागे, वे भी रणभूमि में अड़कर खड़े रहे। अब इन्होंने इक्ट्ठे मिलकर एक आक्रमण किया। इधर से दयाराम, नन्द चन्द, गुलाबराय, गंगाराम आदि योद्धा अब बढ़े हुए हौसले के साथ खूब लड़े और घमासान युद्ध हुआ। ग़ाजीचन्द चन्देल इतने क्रोध में था कि आगे आगे बढ़ता गया। इसके हाथ में सेला था, जिससे इसने अनेकों शूरवीरों को पिरोया और उन्हें घायल करके पछाड़ दिया। इस तरह बढ़ते बढ़ते यह संगोशाह पर आ झपटा, पर उस शूरवीर के आगे इसका कोई वश न चला, टुकड़े होकर धरा पर आ गिरा और अपने स्वामी धर्म को पूरा कर गया। ग़ाजीचन्द की मृत्यु ने नजाबतखां के मन में अत्यन्त क्रोध भर दिया। यह थोड़े से पठानों को लेकर तेजी से आगे बढ़ा और सीधा संगोशाह पर, जो गुरू जी की आज्ञानुसार आज के युद्ध का सेनापति था, जाकर झपटा। नजाबतखां और संगोशाह गुरूदेव जी के पास किसी समय इक्ट्ठे रहते थे, एक दूसरे को पहचानते थे, इक्ट्ठे ही कसरतें किया करते थे। दोनों खूब लड़े। इतनी वीरता से युद्ध हुआ कि दोनों के लिए वाह वाह हो गई। अन्त में नजाबतखाँ का शस्त्र ठिकाने पर जा लगा, संगो जी के सख्त चोट आई, पर वे इतने जोश में थे कि बदले का वार किया और नजाबतखाँ मारा गया और उधर संगोशाह भी गिरा और वीरगति को प्राप्त हुआ। संगोशाह आज जिस वीरता से लड़ा था, फतेह का काफी भाग उसकी दूरदर्शिता और फिर अचूक वीरता का फल था। उस पर प्रसन्न होकर गुरू साहब ने उसे 'शाह संग्राम' का नाम प्रदान किया था।

शाह संग्राम की मृत्यु के पश्चात् अब युद्ध का नेतृत्त्व सारा गुरू साहब ने स्वयँ सँभाल लिया और तीर कमान लेकर आगे बढ़े। उधर से संगोशाह के मारे जाने के कारण पठानों का हौसला बढ़ा और नजाबत की मौत के कारण गुस्सा भी बढ़ा। वे आगे बढ़े आ रहे थे। घाट से अभी दूरी पर ही थे कि ऊपर के मैदान की, इस युद्ध भूमि की बढ़ी हुई एक नुक्कड़ पर जाकर गुरूदेव जी ने तीर चलाया, जो आगे बढ़े हुए एक पठान सेनापति को जाकर लगा और वह मर गया। फिर दूसरा तीर सम्भालकर आपने सीध बाँधी और भीखन खाँ के मुँह को ताक कर मारा। यह तीर खाँ को घायल करके उसके घोड़े को जा लगा। घोड़ा गिर पड़ा और खाँ पीछे को भाग गया। तीसरा तीर फिर चला, इससे भी एक और गिर पड़ा और घोड़ा भी गिर पड़ा, इतने में हरीचन्द की बेहोशी टूट गई थी। उसे कोई सख्त घाव नहीं लगा था, सिर में धमक के कारण बेहोश हो

गया था, पर वैसे घायल था। जब उसे होश आया तो उसने देखा कि इस ओर हार हो रही है, फतेहशाह चला गया है, कलह का मूल भीमचन्द बिल्कुल ही आगे नहीं आता, दूसरे राजा पीछे पैर रख रहे हैं, दो तीन पठान सरदार मारे गये हैं और भीखम खाँ घायल होकर भाग कर आ गया है, तब इसे शूरवीरता वाला क्रोध आया और अपने सवारों को लेकर आगे बढ़ा। इसने तीरों की इतनी वर्षा की कि जिसे भी इसका तीर लगा वह नहीं बच सका। इसने एक बार दो दो बाण कस-कस कर मारे। शूरवीर को लगते अथवा घोड़े को, जिसे भी लगते, उसके शरीर से पार हो जाते। इस लड़ाई में दोनों ओर से फिर जमकर युद्ध हो रहा था। यों मारता हुआ और बढ़ता हुआ हरीचन्द अब उस स्थान पर आ गया जहाँ पर से उसका तीर गुरूदेव जी को लग सकता, अत: उसने निशाना बाँधकर तीर मारा, यह गुरूदेव जी के घोड़े को जाकर लगा। उसका दूसरा तीर आया, पर प्रभु की दया से गुरूदेव जी के कान को छूकर निकल गया, उन्हें लगा नहीं। अब फुर्तीले हरीचन्द ने तीसरा बाण तनकर और निशाना बाँधकर मारा। यह पेटी में जा चुभा, उसके अन्दर से शरीर को जा छुआ, पर उसकी नोक ही थोड़ी सी चुभी, बड़ा घाव नहीं लगा। हरीचन्द को जीवन में आज पहली बार अपनी तीरंदाजी पर गुस्सा अया कि उसने तीन अचूक तीर मारे, पर गुरूदेव जी के दांव बचाने की चपलता किस कमाल की है कि बाल बाल बच गए हैं। गुरूदेव जी लिखते हैं कि जब उन्हें तीसरा बाण आकर लगा तब उनका गुस्सा भी जगा। शत्रु के तीन वार झेलना बड़ी विशाल हृदयता की वीरता है। अब आपने भी कस कस कर तीर मारे। इस समय शूरवीर आगे बढ़े और इक्ट्ठे होकर बाणों की वर्षा की। फिर सीध कर आपने एक तीर मारा, जो हरीचन्द को जा कर लगा और वह जवान मारा गया। हरीचन्द की मृत्यु को देखकर उसके साथी और शेष ख़ान आदि सभी उठकर भागे। कोट लेहर का राजा भी मारा गया और गुरूदेव जी की फतेह हो गई।

अब भगदड़ मच गई, सारे राजपूत, पठान, गाँवों के अहीर, गूजर और प्रजा के लोग जो लूट के विचार से काफी सँख्या में आये हुए थे, सभी भागे जा रहे हैं। किश्तियों पर सवार होकर, नदी को पार करके, लकड़ियाँ नदी के बीच डाल डाल कर उसका आश्रय ले लेकर, मटकों पर तैर कर, तुलहों के आश्रय ले लेकर, नदी के पार जा रहे हैं। सिक्ख सेना अब खुशी से उमड़ कर उनका पीछा करने के लिए उठी कि उनकी राजधानी तक मार की जाए, पर गुरूदेव जी ने पीछा करने वालों को वापिस बुलवा लिया।

अब सबसे पहला काम संगोशाह, जीतमल तथा दूसरे शहीद हुए योद्धाओं की अन्त्येष्टि करने का था। बुधूशाह के पुत्रों को दफनाना था और शेष सभी शहीदों की अन्त्येष्टि करनी थी। अत: गुरू की आज्ञा के अन्तर्गत आपके कृपालु नैनों के सामने और आपके आशीर्वाद से यह सारा कार्य किया गया। ये सारे कार्य करवाकर गुरूदेव जी अपनी विजयी सेना और पीर बुधूशाह तथा अपने शूरवीरों सहित पाऊँटा आ गये, सभी घायलों को भी लाया गया और उनके इलाज शुरू किये गये।

पाऊँटा में एक दिन विश्राम करके फिर दीवान सजा। इसमें गुरूदेव जी ने अपने उच्च आदर्श का, शत्रु की सेना का, अकारण टूटकर आक्रमण करने का और आगे से शरण न लेने की वीरता का ब्यौरा आदि बताकर वीर रस और शान्त रस का सम्मेलन समझाया। अन्तरात्मा में ज्योति के साथ एक ज्योति होकर उच्च रहकर स्वच्छ आचरण में वीर रस का व्यवहार बताया। फिर उनके लिए आशीर्वाद दिये गये, जो शहीद हुए थे। पहले आसा की वार का कीर्तन हुआ, फिर गुरू वाणी के पाठ की समाप्ति हुई और प्रसाद बाँटा गया।

अब जो शूरवीर वीरता दिखाकर जीवित बचकर आ गये थे उन पर अनुकम्पा हुई, सिरोपाव दिये गये। सेना के सभी शूरवीरों को धन का दान दिया गया। बुआ जी के तीन पुत्रों पर, जो जीवित बच रहे थे और बहुत वीरता से लड़े थे, अनुकम्पा हुई। दो भाई जो कि शहीद हो गये थे उन्हें वरदान और 'शाह संग्राम' आदि नाम प्रदान किये गये।

पाऊँटा में ही बड़े साहबजादे का जन्म हुआ था। उसकी उम्र इस समय चार-पाँच महीने की थी। आज के दीवान में उनका नाम युद्ध की फतेह पर अजीत सिंह रखा गया।

तीसरे पहर गुरूदेव जी स्नान करके तैयार हो रहे थे कि बुधूशह ने आकर विदा माँगी। बुधूशाह पर बहुत आध्यात्मिक कृपा हुई थी, उनके साथियों, मुरीदों को मिठाई के लिए पाँच हजार रूपये दिये गये। इस समय आप कंघा कर रहे थे कि बुधूशाह ने यह दान माँग लिया। तब सतगुरू जी ने यह दान ककरेज़ी दस्तार सहित दे दिया। एक पोशाक, एक हुक्मनामा भी प्रदान किया गया। फिर गुरू साहब सारे वीर बहादुरों की सम्भाल करके महंत कृपाल पर प्रसन्न हुए। आपने केसरी रँग की दूसरी दस्तार सिर पर बाँधने के लिए मंगवाई और उसमें से आधी महंत कृपाल जी को दे दी। महंत जी ने उसे अपनी पगड़ी के ऊपर सजा लिया। इस प्रकार दयाराम को एक ढाल प्रदान की।

शूरवीरों में अब चाव भर गया था। विजय प्राप्त होने के कारण साहस बढ़ गया था। अत: वे फतेहशाह के क्षेत्र पर कब्जा करना चाहते थे, किन्तु गुरूदेव जी ने उनका मार्गदर्शन किया और कहा कि हमारा लक्ष्य कोई राज्य स्थापित करना नहीं है, केवल मानव अधिकारों की रक्षा करना है और दुष्टों का नाश करना हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। तब भी हम किसी पर आक्रमणकारी नहीं होते।

पाऊँटा साहब से आनन्दपुर प्रस्थान

भंगाणी के युद्ध में विजयी होने के पश्चात् गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी ने वापिस आनन्दपुर के लिए प्रवास की तैयारियां करने लगे। नाहन नरेश ने गुरूदेव जी को रोकना चाहा किन्तु वे नहीं रूके। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि वे और अधिक समय पाऊंटा में रहेंगे, तो आनन्दपुर

का नगर उजड़ जायेगा। यह सच भी था। अत: शीघ्र ही गुरूदेव जी सपरिवार पाऊँटा से चल दिये। वास्तव में गुरूदेव जी के आनन्दपुर से पाऊँटा आ जाने पर वहाँ की रौनक पूरी जाती रही थी।

रायपुर की रानी

आनन्दपुर जाते हुए आप रास्ते में कई रमणीक स्थानों पर पड़ाव करते हुए आगे बढ़ रहे थे। जब आप रायपुर की जगीर में पहुँचे तो वहाँ का जगीरदार भय के कारण भाग गया। उसे भय था कि भीमचन्द की सहायता की अवज्ञा में कहीं गुरूदेव जी प्रतिशोध न ले। परन्तु उसकी रानी बहुत विवेकशील थी। उसने गुरूदेव जी की बहुत महिमा सुन रखी थी कि वह बहुत उदारचित हैं। अत: उसने गुरूदेव जी की कृपा के पात्र बनने के लिए एक योजना बनाई। जैसे ही गुरूदेव जी के अन्य योद्धा वहाँ से गुजरने लगे। वह फूलमालाएं लेकर स्वागत के लिए उपस्थित हुई और विनती करने लगी कि आज आप हमारे यहाँ विश्राम करें और उसने अपने बाग में गुरूदेव जी को ठहराया और सभी सैनिकों के लिए भोजन की व्यवस्था की। गुरूदेव जी को एक विशेष कक्ष में भोजन कराया गया। भोजन के उपरान्त अपने बेटे को जो अभी लगभग दस वर्ष की आयु का था, गुरू चरणों में नतमस्तक होकर प्रणाम करने को कहा और साथ में रूपयों की एक थैली भी भेंट की। गुरूदेव जी प्रसन्न हुए और बेटे को आशीष दी और गुरू घर की कृपा के पात्र तुम तभी बन सकती हो जब हमारे आदेशों का पालन करोगे। इस पर रानी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि आप हुक्म तो कीजिए। गुरूदेव जी ने कहा – लड़के को केशधारी बनाओ, शस्त्र विद्या सिखाओ और तम्बाकू का प्रयोग नहीं करना होगा। रानी दुविधा में पड़ गई। वह कहने लगी कि केश धारण करने कठिन हैं क्योंकि मुगलों का साम्राज्य है, कहीं वह हमारे शत्रु ही न बन जाएं। गुरूदेव जी ने उसे सांत्वना दी और कहा – आप किसी बात की चिन्ता न करें। यह अत्याचारी शासक नहीं रहेंगे। यही प्रकृति का नियम है और जल्दी ही हमारे खालसे का इस क्षेत्र पर बोलबाला होगा। वैसा ही हुआ, गुरूदेव जी के देहान्त के पश्चात बन्दा बहादुर ने इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था। गुरूदेव जी ने रानी को शस्त्र दिये जो रानी ने गुरू प्रसाद के रूप में स्वीकार कर लिए और उनकी प्रतिदिन सेवा करने लगी। जब कभी उसे कोई कठिनाई होती तो शस्त्रों को प्रणाम कर गुरू चरणों में आराधना कर लेती, जिससे उस की समस्याओं का समाधान हो जाता।

नाडू शाह

गुरूदेव जी पड़ाव करते हुए अपनी मंजिल की ओर बढ़ रहे थे कि रास्ते में घग्घर नदी पार करनी थी। आपने घग्घर नदी के इस पार अपना शिविर लगा दिया और अगली प्रात:काल आगे जाने का कार्यक्रम बनाया। वहीं नाडू शाह के खेत थे, वह श्रद्धावश गुरूदेव जी से प्रार्थना करने लगा कि मेरे धन्य भाग्य हैं जो आप सहज में ही मेरे गरीब के यहाँ पधारे हैं। उसने अपने गृह से गुरूदेव जी की भोजन व्यवस्था की और बहुत प्रेम से टहल-सेवा की। गुरूदेव जी उसकी सेवा से प्रसन्न हुए और वरदान दिया कि समय आयेगा जब तेरे नाम से यह स्थान प्रसिद्धि प्राप्त करेगा और यहाँ दिन रात भण्डारे चलते रहेंगे।

तृतीय अध्याय

आनन्दपुर में प्रवेश

पाऊँटा साहब से प्रस्थान करने के पश्चात् गुरूदेव जी धीरे धीरे अपने काफिले के साथ अक्तूबर, 1687 को आनन्दपुर प्रवेश कर गये। वहाँ आनन्दगढ़ के सैनिकों ने तथा वहाँ की स्थानीय संगत ने आपकी अगवाई की और भव्य स्वागत के लिए समारोह का आयोजन किया। गुरूदेव जी लगभग तीन वर्ष पश्चात् अपनी नगरी आनन्दपुर पुन: पधारे थे। इस अन्तराल में यहाँ की रौनक समाप्त सी हो गई थी। सत्ताधारियों के भय से कई परिवार आनन्दपुर त्यागकर चले गये थे। ऐसा प्रतीत होता था कि पर्वतीय नरेशों ने जनसाधारण को डराया धमकाया हो।

गुरूदेव जी के वापिस आ जाने पर आनन्दपुर में एक बार फिर चहल-पहल हो गई। नये नये भवनों का निर्माण प्रारम्भ हो गया। गुरूदेव जी को आभास हो गया था कि आगामी युद्धों के लिए रणक्षेत्र आनन्दपुर का स्थान ही बनेगा। अत: आपने दीर्घगामी योजनाएं बनाई जिस के अन्तर्गत आनन्दपुर नगर को सुरक्षित रखने के लिए आक्रमणकारियों की रोकथाम रास्ते में ही हो, वे आनन्दपुर नगर में न पहुँच पायें, कुछ नये दुर्ग बनाने का कार्यक्रम बनाया।

पाऊँटा साहब की विजय से गुरूदेव जी के सेवकों में नया उत्साह भर गया। वे प्रत्येक क्षण युद्ध अभ्यास में गुजारने लगे। विजय के समाचार ने चारों ओर हर्ष उल्लास का वातावरण उत्पन्न कर दिया। अब दूर दूर से सिख संगत अपने युवा बेटों को गुरू की सेना में भर्ती होने के लिए भेजने लगी। इस प्रकार गुरूदेव जी के पास बहुत बड़ी संख्या शूरवीरों की हो गई। संख्या की दृष्टि से जैसे ही सैनिक अधिक हुए गुरूदेव जी ने उनके लिए अच्छे शस्त्र, भोजन, कपड़ा और निवास पर ध्यान केन्द्रित किया। आपने अपनी नई सेना का पुनर्गठन किया जिसके अन्तर्गत छ: दल बनाये और उनके लिए अलग अलग छावनियां तैयार करवाई। बाद में इन्हीं छावनियों को दुर्ग का रूप दे दिया जिससे सेना और शस्त्र-अस्त्र सदैव सुरक्षित रखे जा सके। छ: दुर्गो के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं – निरमोह गढ़, हौलगढ़, लोहगढ़, फतेहगढ़, केसगढ़ और आनन्द गढ़। आप

स्वयँ आनन्दगढ़ में निवास रखने लगे क्योंकि आनन्दगढ़ सबसे अधिक सुरक्षित और केन्द्र में था। आनन्दपुर में शस्त्र निर्माण का कार्य पहले से ही चल रहा था, जिसे गुरूदेव जी ने तीव्र गति से करने का आदेश दिया। इस कार्य के लिए दूर दूर से कारीगर बुलाये गये, जिससे आवश्यकतानुसार आधुनिक शस्त्रों का निर्माण किया जा सके और आत्मनिर्भर हो सके।

भीमचन्द ने मैत्री का प्रस्ताव भेजा

कहिलूर नरेश भीमचन्द अब गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी की शक्ति से भलीभान्ति परिचित हो गया था। वह अब समझने लगा कि गुरूदेव जी से मित्रता करने में ही उसके राज्य का कल्याण है, क्योंकि गुरूदेव जी किसी भी बाहरी आक्रमण के समय उसकी सहायता कर सकते हैं। यही विचार कर भीमचन्द ने गुरूदेव जी को मैत्री का संदेश अपने मंत्री देवीचन्द द्वारा आनन्दपुर भेजा। गुरूदेव जी के दरबार में मंत्री का स्वागत हुआ। गुरूदेव जी तो प्रकृति से ही उदार थे। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वे कोई राज्य की स्थापना नहीं करना चाहते। यह तो राजा भीमचन्द के मन का लोभ, भय और ईर्ष्या ही थी, जो शत्रुता का रूप धारण कर गई। अन्यथा गुरूदेव जी की ओर से तो कभी भी किसी को प्रथम आघात नहीं पहुँचाया गया। अब भी यदि भीमचन्द शान्तिपूर्वक व मित्रतापूर्वक रहने का वचन दें तो गुरूदेव जी उसके विरूद्ध सभी अपराध क्षमा कर देंगे। गुरूदेव जी ने मंत्री द्वारा नरेश भीमचन्द को संदेश भेजा कि सब पर्वतीय नरेश विधर्मी औरंगज़ेब से क्यों डरते है? उसको हज़ारों रूपया कर देते हो और उसी को प्रसन्न करने के लिए आपस में लड़ते रहते हो? हमने उसी विधर्मी के अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध तलवार उठाने का कार्यक्रम बनाया है। अत: पर्वतीय नरेशों को पारस्परिक वैर-विरोध भुलाकर संगठित होना चाहिए और जो कर के रूप में राशि औरंगज़ेब के राज्यपालों को देते हैं, उसी से अपने राज्य की प्रगति करनी चाहिए। गुरूदेव जी की इस सद्प्रेरणा का बड़ा अनुकूल प्रभाव भीमचन्द पर पड़ा। उसने वचन दिया कि वह अब से मुगलों को कर नहीं देगा। अपने प्रभाव में रहने वाले अन्य नरेशों से भी वह कर न देने को कहेगा। इस प्रकार राजा भीमचन्द और गुरूदेव जी में मतभेद समाप्त हुए और दोनों पक्षों में मित्रता स्थापित हो गई।

होला-महला

पौराणिक कथा पर आधारित उत्सव होली समस्त भारतवर्ष का त्योहार है। गुरूदेव जी के समय में इस त्योहार को मनाने में बहुत सी विकृतियाँ आ गई थी, जिस कारण गुरूदेव जी बहुत खिन्न हुए। उन्होंने उस समय निर्णय लिया कि इस त्योहार को मर्यादित करके नया स्वरूप दिया जाये और इसकी मलीनता समाप्त करके नवयुवकों को शौर्य, वीरता दर्शाने का एक शुभ अवसर उपलब्ध कराया जाए। आपने अपने जवानों को दो दलों में विभाजित किया और उनको एक लक्ष्य दिया और कहा विजयी पक्ष को पुरस्कृत किया जायेगा। इस कृत्रिम युद्ध के लिए नगारे बजाकर योद्धाओं को एक विशेष (पर्वत की चोटी) पर आक्रमण करना था और प्रतिस्पर्धा में प्रतिद्वन्द्वी पक्ष को परास्त कर विजय की घोषणा करनी थी। ऐसा ही किया गया। गुरूदेव जी ने स्वयँ समस्त युद्ध का निरीक्षण किया और विजयी दल को पुरस्कारों से सम्मानित किया। इस समस्त खेल को आपने होला-मोहल्ला का नाम दिया। जिसमें होला का अर्थ है हमला करना और महला का अर्थ है लक्ष्य पर विजय प्राप्त करनी।

गुरूदेव जी ने यह नई रीति अपने योद्धाओं में वीर रस भरने और उनको अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण करने हेतु चलाई जिससे जवान समय आने पर रणनीति में सदैव सफल हों। यह परम्परा उस समय से आज तक ज्यों की त्यों आनन्दपुर में चली आ रही है।

ठाकुर का प्रकोप

अम्बाला नगर के निकट रायपुर क्षेत्र में एक समृद्व दाम्पति सोहन और मोहिनी रहते थे लम्बे समय के पश्चात भी इन को सन्तान सुख प्राप्त नहीं हुआ। अत: यह अपने को व्यस्त रखने के लिए अधिकांश समय ठाकुर जी की उपासना में लगाते और साधु संन्यासियों के चक्कर में पड़े रहते। एक बार इन को एक वैरागी साधु मिला जिसने इनको एक विशेष क्रमकाण्ड द्वारा ठाकुर जी को प्रसन्न करने की विधि बताई। ये भोला दाम्पति उसी विशेष विधि द्वारा ठाकुर को प्रसन्न करने की चेष्टा करके रहता। जिसके अर्न्तगत किसी विशेष सरोवर से जल लाकर ठाकुर को स्नान करा कर भोग लगवाते और उस प्रतिमा के समक्ष नृत्य करते। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए परन्तु मन को शान्ति नहीं मिली अपितु सदैव मन में भटकन बनी रहती कि फल की प्राप्ति कब होगी।

एक दिन भोर के समय वे दम्पति पवित्र जल की गागर लेकर घर लौट रहे थे तो रास्ते में एक घायल व्यक्ति उनके पास आया और वह विनम्रता से विनती करने लगा कि कृप्या मुझे थोड़ा सा पानी पिला दें अन्यथा मेरे प्राण निकल जाएगें। किन्तु पवित्र जल तो ठाकुर जी को स्नान कराने के लिए था। अत: यह किसी अन्य व्यक्ति को कैसे दिया जा सकता था? इसलिए सोहना मोहिना ने उस घायल की प्रार्थना अस्वीकार कर दी और घर की ओर चल पड़े तभी घायल व्यक्ति ने कहा यदि तुम पीड़ित, जरूरतमंद की सहायता नहीं कर सकते तो यह जल किसी काम नहीं आएगा।

जब दम्पति घर पहुंचा और ठाकुरो को स्नान करवाने लगा तो उनके कानों मे घायल के कहारने की अवाज़ आती और वह वाक्य बार-बार याद आता कि तुम्हारा यह जल अथवा परीश्रम व्यर्थ है यदि तुम किसी के कठिन समय काम नहीं आ सकते।

सोहना-मोहिना को अपनी भूल का एहसास होने लगा वह तुरन्त घर से लौट पड़े और वहीं पहुंचे जहां उन को घायल मिला था। परन्तु इस अंतराल में घायल व्यक्ति ने प्राण त्याग दिये थे। घायल को मृत देखकर अब सोहन और मोहिनी का हृदय को बहुत ठेस लगी किन्तु अब तो समय हाथ से निकल चुका था मृत को चारों ओर से भीड़ ने घेर रखा था। इस भीड़ में से एक व्यक्ति ने शव की पहचान, एक सिक्ख व्यक्ति के रूप में कर दी जो कुछ ही समय पहले एक डाकुओं के गिरोह से लोहा लेता हुआ घायल हुआ था। सोहना और मोहिना के हृदय में पश्चाताप की ज्वाला भड़क उठी। वे क्षमा याचना करना चाहते थे। किन्तु कैसे दोष से मुक्ति प्राप्त की जाए वे समझ नहीं पा रहें थे। तभी उन को एक सुझाव मिला कि इस सिख के गुरूदेव जी बहुत ही उदार हृदय के स्वामी हैं। यदि उन से आप भूल को स्वीकारते हुए क्षमा मांगे तो वह आप को कृतार्थ करेंगे। किन्तु सोहना-मोहिना को गुरूदेव जी के समक्ष जाने से आत्म ग्लानि अनुभव होने लगी अत: वह विचारने लगे कि कोई ऐसी युक्ति हो जिस से सहज ही गुरूदेव जी का सामना हो जाए और वे क्षमा के लिए प्रार्थना करें तभी उनको मालूम हुआ कि श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी पाँवटा (साहब) से आनंदपुर (साहब) के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। अत: वह रायपुर क्षेत्र से होकर गुजरेंगे। यह ज्ञात होते ही दम्पति ने प्रतीक्षा प्रारम्भ कर दी। जिस रास्ते से सैन्य बल तथा परिवार जा रहा था। मुख्य मार्ग पर सोहना और मोहिना घण्टों प्रतिक्षा करते रहे किन्तु गुरूदेव जी मार्ग बदल कर दूसरे क्षेत्र से गुजर गये क्योकि वह सोहना-मोहिनी से रूष्ट थे और वह नहीं चाहते थे जिनको उनके सिख (शिष्य) ने शाप दिया हो उन पर कृपा दृष्टि की जाए।

जब इस दम्पति को यह ज्ञात हुआ कि गुरूदेव जी उनको दर्शन देना नहीं चाहते तो वे कांप उठे और क्षमा याचना की युक्ति ढूंढने लगे। अन्ततः उन्होंने निर्णय लिया कि उन्हें आनंदपुर चलना चाहिए वहीं कोई विधि बन जाएगी और गुरूदेव जी से आवश्य ही क्षमा प्राप्त हो जाएगी। यह दृढ़ निश्चय करके दम्पति गुरू नगरी आनंदपुर पहुंचा। वे अपनी व्यथा प्रमुख सेवकों को बताने लगे और निवेदन करने लगे कि हमें क्षमा दिलवाएं। जब सिख-सेवकों को ज्ञात हुआ कि गुरुदेव इस दम्पति से रुष्ट है तो किसी को साहस नहीं हुआ कि वह उनकी गुरूदेव जी के सम्मुख सिफारिश करें। सभी ने उन्हें सुझाव दिया कि आप गुरू घर की निष्काम सेवा में अपने को समर्पित कर दें कभी न कभी गुरूदेव जी दयाल होंगे और वह स्वयं आप को क्षमा कर देगें। यह सुझाव उचित था। अत: वे सेवा में व्यस्त रहने लगे। सोहना-मोहिना बागवानी का कार्य बहुत कुशलता से कर लेते थे इन्होंने अपने घर पर एक सुन्दर वाटिका बना रखी थी जिसमें भान्ति भान्ति के फूल उगाए हुए थे और उन्हें ठाकुरों को अर्पित करते रहते थे। अत: इन्होंने मेल-जोल बढ़ाकर माता सुन्दरी जी से उनकी फुल-वाड़ी की देख-भाल की जिम्मेवारी ले ली। इन्हें आशा थी कि कभी न कभी गुरूदेव जी अपनी वाटिका में अवश्य ही आएंगे। सोहना-मोहिना वनस्पति विशेषज्ञ होने के नाते नये-नये फूल उगाने लगे और नये ढंग से बागवानी करने लगे उनकी लगन से माता सुन्दरी जी अति प्रसन्न हुई। इस दांम्पति ने एक विशेष प्रकार के फूल उगाये जिन की छटा नुपम थी वे चाहते थे कि कभी गुरूदेव जी वाटिका में आयें और वह उनको एक विशेष गुलदस्ता भेंट करें और उनसे प्रायश्चित की प्रार्थना की जाए। किन्तु गुरूदेव जी वहां कभी भी नहीं गये। एक दिन आनंदपुर में एक वैरागी साधु गुरूदेव जी की स्तुति सुनकर उनके दर्शनों के लिए बहुत दूर से आया। जब वह वहां पहुंचा तो विचारने लगा कि गुरूदेव जी को क्या वस्तु भेंट की आये जिससे वह उनकी अनुकम्पा का पात्र बन सके। इस तलाश में उस की दृष्टि गुरूदेव जी की वाटिका पर पड़ी जहां सोहना-मोहिना नित्य वाटिका की देख-रेख किया करते थें। यहां साधु उनके पास पहुचां और अनुरोध करने लगा कि आपने जो वह विशेष प्रकार के फूल उगाये हैं। मुझे देनी की कृपा करें मैं उनके आप को उचित धाम दूगां। किन्तु इस दाम्पति ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और उसे बताया कि यह वाटिका उन की नहीं हैं वे तो केवल सेवादार हैं और जो फूल वह मांग रहा हैं वह तो सुरक्षित रखे गये हैं क्योंकि यह किसी विशिष्ट व्यक्ति को समर्पित किये जाएंगे। वैरागी साधु जिसे जन-साधारण रोडा-जजाली के नाम से जानता था निराश वापस लौट आया। किन्तु वह उन फूलों को प्राप्त करने ली लालसा को त्याग नहीं सका। वह आधी रात को उठा और उस वाटिका में पहुंच कर चुपके से वही फूल तोड़ लाया और प्रात: काल की सभा में गुरूदेव जी को समर्पित कर दिये। इन विशेष प्रकार के फूलों को देख कर गुरूदेव जी प्रसन्न नहीं हुए उन्होंने रोडे जलाली को उसकी आशा के विपरीत प्रश्न किया कि आप तो वैरागी संत है स्वाभविक है आप का हृदय भी कोमल होगा फिर आप ने ये कोमल फूल-कलियां किस प्रकार तोड़ने का सहास किया? यह प्रश्न सुनते ही रोड़ा जलाली साधु कांप उठा उसे एहसास हुआ कि गुरूदेव जी ने उसकी चोरी पकड़ ली हैं। परन्तु वह सतर्क होकर अपनी गलती पर परदा डालने के विचार से कहने लगा कि गुरूदेव जी फूल तो उत्पन ही इसी लिए किये जाते हैं कि उनको डाली से तोड़कर दूसरों का श्रृंगाार बनाया जाएं। इस पर गुरूदेव जी ने कहा - किन्तु यह अधिकार तुम्हारा नहीं था। जिनका अधिकार क्षेत्र था क्या तुमने उनका हृदय नहीं तोड़ा है? यह भूल उस से भी अधिक भूल नहीं। अब रोड़े-जलाली के पास कोई उत्तर नहीं था। वह सिर झुकाकर अपराधी बनकर खड़ा हो गया। गुरूदेव जी ने कहा-यहां तो श्रद्धा-भक्ति से भेंट की गई हर प्रकार की वस्तु स्वीकारीय हैं, कोई अवश्यक तो था नहीं कि आप फूल ही लाएं। इस पर रोडा जलाली बोला- गुरूदेव जी इस संन्यासी के पास कंगाली के अतिरिक्त है ही क्या जो आप को भेंट करता। गुरूदेव जी उसकी यह चतुराई देखकर मुस्कुरा दिये और एक सिख को संकेत किया कि उस साधु की टोपी उतारो। टोपी उतारी गई। जिसमें से स्वर्ण मुद्राएं गिरने लगी। यह मुद्राएँ बहुत चतुराई से विधि पूर्वक टोपी में सिली गई थी। किन्तु सिख द्वारा टोपी को खन-खनाने से एक-एक करके बाहर गिरने लगी। तभी समस्त सभा में हास्य का वातावरण बन गया। गुरूदेव जी ने कथनी-करनी में अन्तर स्पष्ट कर दिया। जिस से साधु रोड़ा जलाली बहुत शर्मिदा हुआ और क्षमा याचना करने लगा। गुरुदेव ने कहा- अब तो आप को उन भक्तों से क्षमा मांगनी होगी जिन्होंने इन फूलों को बहुत स्नेह से सींचा और पाला हैं। आइये उनके पास चलें।

गुरूदेव, साधु रोड़े-जलाली के साथ वाटिका में पहुंचे जहां सोहना-मोहिना माली के रूप में कार्यरत रहते थे। वहां का दृश्य ही हृदय

वेदक पाया गया। भोर समय जब सोहना-मोहिना ने उस विशेष फूलों की क्या को उजड़ा हुआ पाया तो उनके हृदय को गहरा अघात पहुंचा। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया वे चाहते थे कि उन फूलों के माध्यम से गुरूदेव जी तक पहुंचा जाए और क्षमा याचना की जाएं किन्तु उनकी बगिया तो लुट चुकी थी। अतः वे बेसुध हो गये। वाटिका में पहुंच कर गुरूदेव जी ने उनके मुख में जला डाला और बहुत स्नेह से कहा-आँखे खोलो मैं आ गया हूं और वह फूल मुझे प्राप्त हो गये हैं जिन्हें तुमने कड़े परिश्रम से उत्पन्न किया था हमने आप दोनों को उस भूल के लिए क्षमा कर दिया हैं। इस प्रकार उनकी मूर्छा टूटी और वे दोनों सुचेत अवस्था में आए। गुरूदेव जी ने उन्हे अति स्नेह दिया और उनकी मंशा पूर्ण की।

भाई नन्दलाल जी 'गोया'

भाई नन्दलाल जी फारसी भाषा के बहुत बड़े विद्वान थे। आप मुल्तान के नवाब के पास मीर मुन्शी का कार्यभार सम्भाले हुए थे। आपकी पत्नी व ससुराल के सभी सदस्य श्री गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी के अनुयायी थे। अतः आप उनके साथ एक बार गुरुदेव जी के दर्शनों को आये थे और गुरूदेव जी की बहुमुखी प्रतिभा तथा उनके अध्यात्मवाद से इतने प्रभावित हुए कि आप सदैव के लिए गुरू के शिष्य बनकर जीवन व्यतीत करने लगे।

औरंगजेब ने सन् 1676 में शहजादा मुअज़म (बहादुरशाह) को अफ्गानिस्तान का गवर्नर बनाकर काबुल भेजा तो उसने मुल्तान के सूबे (गवर्नर) को कहकर भाई नन्द लाल जी को अपने साथ ले लिया और अपना मीर मुंशी नियुक्त किया। वापसी पर 1678 में वह मुअज़म के ही साथ दिल्ली आ गए। एक बार औरंगजेब ने शाह इरान द्वारा भेजे गये पत्र का उत्तर तैयार करने को अपने विशेष दरबारियों को कहा - किन्तु सम्राट को उनके उत्तरों से सन्तुष्टि नहीं हुई। उसने फिर अपने चारों बेटों को पुनः उत्तर लिखने को कहा - जब कुंवर मुअज़म का मसौदा सम्राट ने देखा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु वह विचारने लगा कि इतनी योग्यता मुअज़म में कहाँ से आ गई, न हो इसके पीछे किसी आलम का हाथ है। वह इस रहस्य को जानने को इच्छुक हुआ। जब उसे मालूम हुआ कि मुअज़म का मीर मुन्शी जो कि एक हिन्दू है, यह उत्तर उस द्वारा तैयार किया गया है तो उसने तुरन्त आदेश दिया कि ऐसे आलम-फाज़ल को दीन में लाया जाना चाहिए। जब भाई नन्द लाल जी को औरंगजेब की इच्छा का पता चला तो आप समय रहते वहाँ से तुरन्त आनन्दपुर साहब के लिए प्रस्थान कर गये और गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी की शरण में पहुँचे। गुरूदेव जी ने उनका भव्य स्वागत किया। यहाँ आप गुरूदेव जी की संगत में रहने लगे। प्रतिदिन सत्संग करने के कारण वह गुरूदेव जी के शौदाई हो गये। स्नेह-भक्ति चर्म सीमा तक पहुँच गई। आप दोनों वक्त गुरूदेव जी के प्रवचन सुनते जिससे आप का हृदय अति निर्मल हो गया। आप स्वयँ फारसी भाषा के महान कवि थे। अतः आपने गुरमति सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाली कई पुस्तकों की रचना भी की। इसके अतिरिक्त आप गुरूदेव जी के प्यार में ऐसे रम गए कि उनकी स्तुति में उच्च स्तर की कविताएं लिखीं जो आज भी गुरूद्वारों में कीर्तन के रूप में गाई जाती हैं। ठीक वैसे ही जैसे भाई गुरदास जी की धार्मिक रचनाएं। वैसे गुरू घर में विशेष निर्देश हैं कि गुरूवाणी के अतिरिक्त अथवा इन दोनों विद्वानों के अतिरिक्त किसी अन्य की रचना कीर्तन रूप में नहीं गाई जा सकती।

भाई नन्द लाल 'गोया' जी की रचित दस पुस्तकें उपलब्ध हैं। इनमें से सात फारसी और तीन पंजाबी भाषा में हैं। आप अपनी रचनाओं में गोया तथा लाल उपनामों का प्रयोग करते थे।

फारसी की पुस्तकें - जिंदगी नामा, दीवानी गोया, तौसीफे-उ-सना, गंजनामा, जोत विगास, दस्तूरूल-इनासा, अरजुल-अलफाज और पंजाबी भाषा में - जोग विगास, रहितनामा, तनखाहनामा

गुरूदेव जी का विद्या दरबार

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी सन्त-सिपाही होने के साथ साथ विद्या प्रेमी भी थे। वह स्वयँ तीन भाषाओं में कविता लिखते थे। पँजाबी उनकी मातृभाषा थी, हिन्दी उस समय साहित्य रचना में प्रयोग होने वाली सर्वाधिक विकसित भाषा थी। फारसी उस समय सरकारी भाषा होने के कारण मान्यता प्राप्त थी। अतः आपने इन तीनों भाषाओं को अपने काव्य में खुलकर प्रयोग किया। आप कवियों, गुणियों, पण्डितों को अपने दरबार में आमन्त्रित करते और उनकी श्रेष्ठ रचनाओं पर पुरस्कृत करते रहते थे, जिस कारण दूर दूर से आपके दरबार में विद्वान आने लगे। कुछ कवि तो गुरूदेव जी के आश्रय में स्थायी तौर पर रहने लगे थे। कुछ थोड़े समय के लिए आकर आनन्दपुर में रहते और गुरू इच्छा के अनुरूप ज्ञान का आदान-प्रदान करते। गुरूदेव जी का विद्या दरबार इतना विख्यात हो गया कि कुछ कविगण केवल तीर्थ की तरह आनन्दपुर आकर दरबार में उपस्थित होते, ज्ञान-चर्चा करते और लौट जाते। तात्पर्य यह कि गुरू दरबार में स्थायी रहने वाले कवियों के अतिरिक्त भी वहाँ कवियों का निरन्तर आवागमन बना रहता। गुरूदेव जी किसी को भी खाली हाथ नहीं लौटाते, उन्हें धन, वस्त्र, घोड़े-हाथी इत्यादि इनाम में देते और उन्हें श्रेष्ठता का प्रमाण पत्र भी देते। इतिहास 52 कवियों का गुरूदरबार में स्थाई रूप में रहना बताता है किन्तु 125 कवियों के नामों का विवरण उपलब्ध होता है, शायद यह बाकी कवि कुछ समय के लिए गुरू घर में आये हों। उन सब कवियों ने इतनी अधिक रचनाएं रची कि जिससे एक विशाल ग्रंथ तैयार हो गया। गुरूदेव जी ने इस संयुक्त रचनाओं का नाम दिया विद्याधर और इस का बोझ था नौ मन। आनन्दपुर के किले पर मुग़ल आक्रमण के उपरान्त किला खाली करते समय यह ग्रंथ सम्भाला नहीं जा सका और नष्ट हो गया। जिस कारण बहुमूल्य साहित्य से हिन्दी जगत वंचित रह गया। किन्तु गुरूदेव जी की रचनाएं जो कि सिक्खों द्वारा नकल करके कंठ कर ली गई थी अथवा दूसरे नगरों में उनका जाप अथवा पठन

होता था, शेष रह गई।

गुरूदेव जी के दरबार में काव्य गोष्ठियों का आयोजन प्राय: होता रहता था। उन गोष्ठियों में अनेकों नोंक-झोंक के उदाहरण उपलब्ध हैं। एक बार गुरूदेव जी के दरबार में चन्दन नामक कवि उपस्थित हुआ। उसे अपनी रचनाओं पर अभिमान था। उसका विचार था कि उसकी रचना को कोई भी ठीक से व्याख्या नहीं कर सकेगा। उसने सवैया पढ़ा और चुनौती दी कि इस के अर्थ करने वाले से मैं पराजय मान लूंगा।

इस सवैये को सुनकर गुरूदेव जी ने कहा यह तो कुछ भी नहीं है। इससे तो अच्छे सवैये हमारे घासिये लिख लेते हैं। चन्दन कवि ने प्रस्ताव रखा, ठीक है - आप मेरे इस सवैये के किसी घासिये से अर्थ करवाकर दिखा दें। तभी गुरूदेव जी ने धन्ना सिंघ को बुला भेजा जो उस समय घास खोद कर ला रहा था। धन्ना सिंघ ने घास की गाँठ सिर से उतारी और सीधा दरबार में उपस्थित हुआ। तब चन्दन कवि ने आदेश पाकर वही सवैया पुन: उच्चारण किया -

नवसात तिये, नवसात किये, नवसात पिये नवसात पियाए।
नवसात रचे नवसात बचे, नवसात पया पहि रूपक पाए।
जीत कला नवसातन की, नवसातन के भुरवर अंचर छाय।
मानुंह मेघ के मंडल में, कवि चंदन चंद कलेवर छाए।

धन्ना सिंघ ने दो बार सवैये को ध्यान से सुना और कहा इसमें कोई आध्यात्मिक ज्ञान अथवा किसी आदर्श की बात तो है ही नहीं केवल नो और सात की गिनती है, जिसका कुल जोड़ सोलह है। जिसकी बार बार पुर्नावृति की जा रही है। इसके अर्थ भी साधारण से ही हैं।

नव, सात तिये भाव नौ और सात वर्ष की स्त्री, सोलह वर्ष की पत्नी, सोलह श्रृंगार करके पति की प्रतिक्षा में है, जो सोलह माह के पश्चात् प्रदेश से घर लौट रहा है। सोलह खाने वाली शतरंज (चौपड़) की बाज़ी लगाई गई। सोलह दांव लगाने की शर्त लगाई गई। सोलवें दांव में पति विजयी हो गया। इस प्रकार सोलह कला वाली स्त्री पराजित होकर अपना मुख चुनरी में छिपा लिया। ऐसा एहसास हुआ जैसे बादलों में चन्द्रमा लुका-छिपी कर रहा हो।

इतने सहजता में अर्थ एक गुरू के घासिये से सुनकर चन्दन कवि का अभिमान जाता रहा। अब धन्ना सिंघ की बारी थी। उसने सवैया पढ़ा : -

मीन भरै जल के परसे कबहू न मरै पर पावक पाए।
हाथी मरै मद के परसे कबहूँ न मरै तन ताप के आए।
तीय मरै पीय के परसे कबहूं न मरै परदेश सिधाए।
गूढ़ मैं बात कही दिजराज विचार सकै न बिना चित लाए।
काउल मरै रवि के परसे कबहूं न मरै ससि की छवि पाए।
मित्र मरै मित के मिलिके कबहूं न मरै जबि दूर सियाए।
सिंह मरै जबि मास मिलै कबहूं न मरै जब हाथ न आए।
गूढ़ मैं बात कही दिगराज विचार सकै न बिना चित लाए।

धन्ना सिंघ के इस सवैये का अर्थ चन्दन को नहीं सूझा। लज्जित होकर पराजय स्वीकार कर ली। गुरूदेव जी के सम्मुख हाथ बाँध कर विनती करने लगा, क्षमा करें। मैं मिथ्या अभिमान में आ गया था। तब गुरूदेव जी ने धन्ना सिंघ को आदेश दिया अब लगे हाथों - चन्दन को अर्थ भी बता डालो। तब धन्ना सिंघ जी ने कहा - इस में अर्थ बिल्कुल स्पष्ट ही है, केवल बात अर्ध विराम के प्रयोग को समझने मात्र का है। सवैये में 'न शब्द को अर्ध विराम से पहले पढ़ना है, बात बन जाएगी।

मीन मरै जल के परसे कबहू न, मरै पर पावक पाए।

चन्दन कवि ने ऐसा ही किया अर्थ बिल्कुल सीधे-साधे और स्पष्ट थे केवल अर्ध विराम के कारण मामला उलझा हुआ था। जिस से अर्थ के अनर्थ हो रहे थे।

कवियों तथा गुरू गोबिन्द सिंघ के संवाद

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी एक बार कवि मण्डली के साथ सतलुज नदी के किनारे रेतीले मैदान में विचरण कर रहे थे। प्राय: उन के हाथ में एक बैंत की छड़ी रहती थी, जिस पर पीतल का दस्ता और अन्त में एक सुनहरी टोपी लगी हुई थी। जो उस समय कवि शारदा जी को बांसुरी समान प्रतीत हुई। उस प्रेम दृष्टि में भ्रम हो गया। वह गुरूदेव जी की तुलना श्री कृष्ण जी से करने लगा। उसने भावुकता में कुछ पद्यों की रचना कर डाली जो कि निम्नलिखित है।

कंज कंज गलिनि बजाई बन बाँसरी सी, उन ही के संग सई सरदा सहित है।
जमना के तट, बंसी बट के निकट सोई, तट सतद्रव आन साहिबी करत है।

देखे भूप भूपन के भूमि के भगत लोगो ! भाग सा छटी के मोसो कहिवे ही बनत है।
कान्ह हैव अवतरणों तो मुख ही रहित लागी, गोबिंद हैव अवतरयो तो हाथ ही रहित है।

शारदा कवि के मुख से गुरू स्तुति सुनकर सभी कवि और श्रोता वाह-वाह कह उठे क्योंकि इस पद्य में अलंकार युक्त विशेषण था जो कि सभी के मन को भा गया। इस पर एक अन्य कवि हंसराम ने कुछ और बढ़कर रचना रच डाली। उन्होंने लिखा -

चारों चक्क सेवैं गुरू गोबिंद तिहारे पाए, मेरे जाने आज तूं ही दूजो करतार है।

जब गुरूदेव जी ने यह रचनाएं सुनी तो वह बहुत नाराजा हुए। उन्होंने कहा - आपने गुरमति सिद्धान्त को अथवा मेरी विचारधारा को समझा ही नहीं है। नहीं तो ऐसी भूल अथवा चापलूसी कभी न करते। जब कि मैं पहले स्पष्ट कर चुका हूँ कि -

जो हम को परमेश्वर उच्चर हैं ते सभ नरक कुंड महि पर है।

गुरूदेव जी का कड़ा रूख देखकर कविजन बहुत शांत भाव से बोले - हमारा अभिप्राय कदाचित चापलूसी करना नहीं है और न ही हम बात को बढ़ा-चढ़ा कर करना चाहते हैं। हमने जो अनुभव किया वही लिखा है। हमारा ऐसा लिखने में गुरूवाणी की कुछ पंक्तियां हमारी बात की पुष्टि करती हैं। उदाहरण के लिए -

सतिगुर विच आपु रखिओन करि परगटु अपि सुणइआ।
यथा
गुरू परमेसर एको जाण जो तिस भावै सो प्रवाण।

गुरुदेव जी कवियों की हाज़िर जवाबी पर मुस्कुरा दिये और उन्होंने कहा 'सब कुछ उचित होते हुए भी किसी व्यक्ति विशेष की स्तुति करना उचित नहीं इससे अभिमान अथवा अहं भाव उत्पन्न होता है। सभी को केवल निराकार उपासना में ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इसमें लाभ ही लाभ है और जन्म सफल होने की शत-प्रतिशत सम्भावना बन जाएगी।

लंगर की परीक्षा

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में सदैव संगतों का तांता लगा रहता था। दूर से दर्शनार्थ आई संगत के लिए कई स्थानों पर लंगर तथा अन्य सुख सुविधाएं जुटाई जाती थी। इस कार्य के लिए कई धनाढय श्रद्धालू सिक्खों ने अपनी व्यक्तिगत लंगर की सेवायें प्रस्तुत कर रखी थी। कुछ धनाढय अपना नाम कमाने के लिए भोजन बहुत ही उत्तम और स्वादिष्ट तैयार करते थे और संगतों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सेवा में कोई चूक नहीं रहने देते थे। इस प्रकार गुरू संगत बहुत प्रसन्न थी और वह कुछ विशेष धनाढयों की स्तुति भी करती थी। गुरूदेव जी के दरबार में प्राय: इस बात की चर्चा भी बहुत होने लगी थी कि अमुक लंगर ले अति प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

एक दिन गुरूदेव जी के हृदय में विचार आया कि क्यों न इन लंगरों की परीक्षा ली जाए कि वह वास्तव में निष्काम सेवा-भाव रखते हैं अथवा केवल कीर्ति अथवा यश अर्जित करने के विचार से संगत को लुभा रहे हैं। अत: आपने एक दिन लगभग अर्धरात्रि के समय वेश-भूषा किसानों वाली धारण करके बारी बारी सभी धनाढय व्यक्तियों के लंगरों में गये और बहुत विनम्र भाव से आग्रह किया कि मैं दूर प्रदेश से आया हूँ। मुझे देर हो गई है, भूखा हूँ कृपया भोजन करा दे। सभी ने क्रमश: एक ही उत्तर दिया - खाद्य सामग्री समाप्त हो गई है, कृपया सुबह पधारें, अवश्य ही सेवा की जाएगी। अन्त में गुरुदेव जी भाई नन्दलाल गोवा जी के लंगर में गये। वह भी सोने जा रहे थे किन्तु किसान की विनती सुनते ही सतर्क हुए और उसे बहुत स्नेहपूर्वक बैठाया और कहा - आप थोड़ी सी प्रतीक्षा करें, मैं अभी आप के लिए भोजन तैयार किये देता हूँ और वह बचा-खुचा भोजन गर्म करने लगे और जो प्रात:काल के लिए रसद रखी हुई थी उसमें से रोटियां तैयार करने लगे। कुछ ही देर में भोजन तैयार हो गया। किसान को बहुत आदरभाव से भरपेट भोजन कराया और उसको सन्तुष्ट करके विदा किया।

अगले दिन गुरुदेव जी ने रात की घटना अपने दरबार में समस्त संगत को सुनाई कि कौन किस मन से सेवा कर रहा है। समस्त लंगरों में भाई नन्दलाल जी के लंगर को उत्तम घोषित किया गया।

कड़ाह प्रसाद को लूटने का आदेश

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि आज समस्त संगत को भोजन के रूप में पेट भर कर कड़ाह प्रसाद (हलुआ) ही सेवन करवाया जाये। उन्होंने लांगरी को आदेश दिया कि लंगर में केवल एक मात्र कड़ाह ही तैयार किया जाए। अन्य खाद्यान्न न बनाये जायें। बस फिर क्या था, लंगर से बड़ी पराते भर भर कड़ाह-प्रसाद की मुख्य पंडाल में पहुँचा दी गई। जब वितरण का समय हुआ तो गुरूदेव जी ने विनोद के विचार से आदेश दिया। आज संगत में प्रसाद वितरण नहीं करना है, समस्त संगत प्रसाद को लूट ले और कोई लूट में पीछे नहीं रहे।

सभी ने आदेश का पालन किया और भर पेट कड़ाह प्रसाद लूट कर खाया। गुरूदेव जी स्वयँ लूट का दृश्य देखते रहे। अकस्मात् उनकी

दृष्टि भाई रामकुंवर जी पर गई, वह शान्त बैठे थे। प्रसाद लूट में भाग नहीं ले रहे थे। तभी गुरूदेव जी ने उनको बुलाकर पूछा कि आपने इस लूट में क्यों नहीं भाग लिया ? तो वह शान्त भाव से बोले, आपका आदेश था लूटो। मैंने भी आदेश का पालन किया है, अपनी आवश्यकता अनुसार एक कण मात्र प्राप्त कर लिया और अपने स्वभाव के अनुसार सन्तोष करके बैठ गया हूँ। वास्तव में प्रसाद लूटा मैंने भी है। उनके उत्तर से गुरूदेव जी बहुत प्रसन्न हुए और उनको ब्रह्मज्ञान प्रदान किया।

ज्ञान की रहस्यमय कुंजी

एक दिन श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में एक जिज्ञासू उपस्थित हुआ। उसने गुरूदेव जी को बताया कि वह इस मानव जीवन को सफल करना चाहता है और साँसारिक झमेलों को कष्टों के कारण अनुभव करता है। अत: उसे अध्यात्मिक ज्ञान दें। गुरूदेव जी उसकी अभिलाषा देखकर प्रसन्न हुए और उस से पूछा शिक्षा कहाँ तक प्राप्त की है ? उसने बताया कि मैं साँसारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाया, किन्तु मन में अभिलाषा है। गुरूदेव जी ने उसे कहा – अध्यात्मिक ज्ञान के लिए भी अक्षर ज्ञान का होना अति आवश्यक है। यदि तुम भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लो तो धीरे धीरे हम तुम्हें आध्यात्मिक ज्ञान भी दृढ़ करवाते चले जाएंगे। बात इस प्रकार समझ लो कि विद्या के बिना सँसार में अंध कार है, ठीक उस तरह जैसे अंधे को दिन में भी दिखाई नहीं देता, वैसे ही बिना विद्या के ज्ञान की दुनिया में जिज्ञास अंधा है।

यह जिज्ञास सिक्ख विद्या प्राप्ति के लिए तैयार हो गया। गुरूदेव जी ने उसे पढ़ाने के लिए एक शिक्षित सेवक की नियुक्ति कर दी और वह उसे नित्यप्रति वर्ण माला और सामान्य ज्ञान पढ़ाने लगा। जब इस सिक्ख को अक्षर बोध हो गया तो वह गुरूवाणी का अध्ययन करने लगा। एक दिन अध्यापक ने उसे आनन्द साहब की वाणी की पोथी दी और पहली पंक्ति पढ़ाई और कहा – मेरे पीछे पढ़ो।

"आनंदु भइआ मेरी माए, सतिगुरू मैं पाइआ।"

उस जिज्ञासू सिक्ख ने यह पंक्ति बहुत ध्यान से पढ़ी और बार बार उसे दोहराया और अध्यापक से कहने लगा बाकी कल पढ़ेंगे, कह कर छुट्टी कर गया और फिर कभी लौट कर पढ़ने नहीं आया।

एक दिन उस जिज्ञासू पर गुरूदेव जी की दृष्टि पड़ी तो उन्होंने उस से पूछा कि तुमने अपने अध्यापक से कहाँ तक शिक्षा प्राप्त कर ली है। इस पर वह कहने लगा – गुरूदेव जी ! मुझे अध्यापक जी ने समस्त ज्ञान की कुंजी ही दे दी है। अब बाकी कुछ पढ़ने को रह ही नहीं गया। गुरूदेव जी ने आश्चर्य से पूछा कि वह रहस्यमय कुंजी क्या है ? हमें भी बताओ। जिज्ञासू ने कहा – मुझे अध्यापक ने पढ़ाया है कि 'आनन्द भइआ मेरी माइऐ, सतिगुरू मैं पाइआ। जब सतगुरू की प्राप्ति हो गई और उनके द्वारा आनन्दमय अवस्था में पहुँच गये तो अब बाकी क्या पढ़ना है। जो मुख्य लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात् भी रह गया है। अत: मैंने पढ़ना त्याग दिया और उसी आनन्दमय जीवन में व्यस्त रहता हूँ। यह व्याख्या सुनकर गुरूदेव जी अति प्रसन्न हुए और उस जिज्ञासू सिक्ख को गले से लगाया और कहा – तुमने वास्तविक सिक्खी कमाई है और उसके दर्शन किये हैं।

समृद्ध युवक को सेवा करने की प्रेरणा

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी युवकों के करतब देख रहे थे। सभी जवान बारी बारी गुरूदेव जी को अपनी शस्त्र विद्या के जौहर दिखा रहे थे। तभी गुरूदेव जी ने प्यास अनुभव की, किन्तु उनका निजी सेवक वहाँ उस समय उपस्थित नहीं था। आप ने ऊँचे स्वर में आदेश दिया – कोई है जो हमें पानी पिलाये। उस समय दर्शकों में एक समृद्ध परिवार का युवक आपके निकट खड़ा था, वह आदेश सुनकर भागकर पानी का गिलास भर लाया और गुरूदेव जी के समक्ष प्रस्तुत किया। गुरूदेव जी ने उस के हाथ देखे जो कि बहुत ही कोमल तथा सुन्दर थे, पूछने लगे कि बेटा क्या बात है तुम्हारे हाथ बहुत ही नाजुक हैं ? उत्तर में युवक ने बताया – हे गुरूदेव जी ! यह पहली बार है जो मैंने आप को पानी दिया है। मुझे कभी काम करने का अवसर मिलता ही नहीं क्योंकि घर पर बहुत से सेवक हैं जो मेरी आज्ञा पाते ही सभी मेरे कार्य तुरन्त कर देते हैं। मुझे कुछ भी नहीं करना होता क्योंकि समृद्धी के कारण किसी वस्तु का अभाव मेरे जीवन में नहीं हैं। यह सुनते ही गुरूदेव जी ने वह पानी गिरा दिया और कहा – मैं ऐसे व्यक्ति के हाथों से पानी नहीं पी सकता जो दूसरों की सेवा नहीं करता अथवा दूसरों से अपने कार्य करवाता है अर्थात आत्मनिर्भर नहीं। इस फटकार से युवक ने गुरूदेव जी के सम्मुख शपथ ली कि वह सदैव शरीर से भी परोपकार के कार्यो में संलग्न रहेगा।

विनोदी गुरूदेव जी का उचित निर्णय

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी एक बार अपने सैनिक अधिकारियों सहित किला 'आनन्दगढ़' की दीवारों का निरीक्षण कर रहे थे। जब वह दीवारों के निकट से गुजरने लगे तो वहाँ एक काहन सिंघ नामक युवक जो कि राजमिस्त्री था, दीवार की मुरम्मत करने में व्यस्त था। वह अपने कार्य में इतना एकागर होकर तल्लीन था कि उसे मालूम ही नहीं हुआ कि कब वहाँ गुरूदेव जी उसके निकट आ पहुँचे। उसने दीवारों की दरारों में बहुत वेग से मसाला व रेता फैंका, जिसके छींटे गुरूदेव जी के स्वच्छ वस्त्रों पर पड़े। वस्त्र पर धब्बे पड़ गये। इस पर विनोदी गुरूदेव जी ने साथ में चलने वाले अधिकारियों से कहा – इसे एक एक चांटा लगाये। बस फिर क्या था, कोई भी पीछे न रहा। सभी ने जोर-जोर से, उसे एक

एक चांटा लगाया। जिससे युवक काहन सिंघ की पगड़ी खुलकर गिर पड़ी। यह देखकर 'गुरूदेव' को बहुत रोष हुआ। उन्होंने तुरन्त उन्हीं सेवक रूपी अधिकारियों से पूछा, आप सभी ने किस के आदेश से युवक को चांटा मारा, सभी ने उत्तर दिया कि आप के आदेश पर, गुरूदेव जी ने तुरन्त कहा, ठीक है अब मेरा दूसरा आदेश है, तुम में ऐसा कोई व्यक्ति है जो इस युवक को अपनी बेटी का रिश्ता दे सकता हो ? सभी शान्त होकर इस अनोखे प्रस्ताव पर विचार करने लगे। किन्तु कुछ समय पश्चात् एक काबुल के निवासी सिक्ख ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और अपनी लड़की का रिश्ता उस युवक से कर दिया।

लाहौरा सिंघ की शुद्धि

एक ओर वीर रसी युद्ध हो रहे थे, दूसरी ओर धर्म प्रचार हो रहा था। दोनों रंगों की नींव इखलाक तथा सदाचार पर रखी हुई थी। झूठ, असत्य, फरेब, कुसंग, ज्यादती, आचरण हीनता वाली सारी बात से ऊँचा रखते हुए स्वच्छ सदाचार में खालसे की नींव रखी जा रही थी। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है -

भादों का महीना था। रात को ठण्डी हवा चल पड़ी। साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी छत पर विराज रहे थे कि साथ वाले मकान की छत से झगड़े की कुछ आवाज आई। यह एक सिंघ का घर था, जिसका नाम लाहौरा सिंघ था। यह गुरू साहब के साहबज़ादों की देखभाल करता था। उसके पास ही माला सिंघ का घर था। माला सिंघ व्यापारी था और साहूकार था। जरूरत पड़ने पर लाहौरा सिंघ ने माला सिंघ से ऋण ले लिया। माला सिंघ सहनशील तथा नेक स्वभाव वाला व्यक्ति था। उसने सख्ती नहीं की। कुछ समय के बाद माला सिंघ को व्यापार में कुछ टोटा आ गया। धीरे धीरे खाने पीने की भी तंगी हो गई। तब उसने लाहौरा सिंघ से अपने रूपये मांगे, पर उसने मज़ाक में टाल दिया। आज रात माला सिंघ उसके घर गया और अपने रूपये माँगे। पर लाहौरा सिंघ ने न देने के लिए मुँह चिढ़ाकर कहा, 'सिख सिख का खाइ कर चिंता करीअहि दूर। फिर ठहरकर बोला, ''खाणा पीणा हसणा गुरूदीआ भुगताए''। जब माला सिंघ ने अपनी गरीब दशा बताई, तो लाहौरा सिंघ कहने लगा, ''जैसा जिसका लेख है तैसी विधि बनि आए''। माला सिंघ ने कहा, 'भाई, दरगहि होन सजाइया झूठे अमल जिनाह। जम मारा गहि मारीऐ रोए रोए पछुताइ''। यह सुनकर लाहौर सिंघ बोला, ''लेखा कोई न पुछई जा हरि बखसंदा।''

गुरू जी यह सब कुछ सुन रहे थे। जब अपनी बदइखलाकी तथा पाप कर्म की प्रौढ़ता के लिए लाहौरा सिंघ ने गुरूवाणी की पंक्ति पढ़ी तो सदाचार के सरदार जी ने ऊँचे स्वर में यह पंक्ति पढ़ी -

हक पराइआ नानका उसु सुअर उसु गाइ।
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न 'खाइ'।

पहली पंक्ति जो लाहौरा सिंघ ने कही थी सिख सिख दा खाइ कर चिंता करीऐ दूर - उसे रद्द करने के लिए गुरू जी ने दूसरी पंक्ति ऊँचे स्वर में कही,

''खावै खुआइ न द्रोह करि रहीऐ बंद हजूर''।

फिर जो उसने दूसरी पंक्ति कही थी -

''खाणा पीणा हंसणा गुरू दीआ भुगताए'' इस पर गुरू जी ने झिड़की भरे स्वर में यह पंक्ति कही; ''जैसा करम करता करे तैसा गुर भुगताए।'' गुरू जी के वाक्यों को सुनकर लाहौर सिंघ कांप गया और नम्रता धारण करके माला सिंघ से कहने लगा - सिंघ जी ! क्षमा करना, मैं कल आपका धन लौटा दूंगा, मैं तो आपसे मज़ाक कर रहा था। सुबह होते ही लाहौरा सिंघ रूपये लेकर माला सिंघ के घर चला गया और हाथ जोड़कर कर्जा उतार दिया। फिर तैयार होकर गुरू के दरबार में गया।

इस प्रकार उपदेश दृढ़ करवा कर गुरू जी ने सर्व खालसे को उच्च जीवन का उपदेश दिया। जब संगतों को पता चला कि माला सिंघ का धन लाहौरा सिंघ ने दबा रखा था और फिर अपने पाप कर्म के लिए गुरवाणी की पंक्ति का प्रयोग किया था और जब सतगुरू जी ने लाहौरा सिंघ में सदाचार की यह कमजोरी तथा भूल करके गुरूवाणी के वाक्य बोलने का साहस किया तो उस समय छत पर से ही आप बोले। सब ने गुरू जी के गरीबों को सम्मानित करने के गुण तथा सदाचार के प्यार को देखकर प्रसन्नता दिखाई। सभी कहने लगे कि गुरू जी धन्य हैं जो इतने भारी कामों में व्यस्त होते हुए भी अपने सिखों के निजी मामलों में आ रही इखलाकी कमजोरियों को दूर करने की चिन्ता भी करते हैं।

बजरूड़ का उद्धार

सतलुज से पार बजरूड़ नामक एक गाँव था। इस गाँव के अन्दर एक छोटी सी गढ़ी थी। गूजर तथा रंगघड़ जाति के लोग इस गाँव में रहते थे और लूटमार किया करते थे। यह गढ़ी इन्हें इस काम के लिए काफी सहायता देती थी। जब कभी कोई एकाध गाँव मिलकर इनसे कोई बदला लेने के लिए चढ़कर आ जाता, तब ये गढ़ी में बागी होकर युद्ध करते और गढ़ी के ऊपर से दूर दूर तक तोपों की मार किया करते। इन्होंने एक बार सिखों की एक संगत को भी लूटा। लुट जाने के बाद जब सिख आनन्दपुर पहुंचे और वहाँ पर गुरू जी को पता चला तो आपने दो-तीन दिन तक कुछ नहीं कहा। फिर अचानक चढ़ाई कर दी और अब के पैदल खालसा साथ ले लिया। नोह गाँव पर तो घुड़सवार सेना चढ़कर

गई, परन्तु बजरूड़ पर पैदल। मानों यहाँ पर पैदल खालसा की शूरवीरता की परीक्षा थी। जब नदी पार जाकर डेरा डाला तो पंक्ति बनाकर बजरूड़ की ओर झुके। लुटेरों ने देखा कि खालसा आ गया है और उन्हें दण्ड देने के लिए आया है। शीघ्रता से तोपें लेकर घरों के ऊपर चढ़ गए और ऊपर से ही लगे मार करने। इनका उद्देश्य यह था कि सिंघ गाँव के नजदीक न आ सकें। कुछ जवान गढ़ी पर जा चढ़े और उसकी ऊँचाई से गोलियाँ चलाने लगे। इनकी गोली दूर दूर तक पहुँचती थी। इसी तरह कुछ मनचले रंघड़ आगे से रूकावट डालने के लिए गाँव के द्वार के बाहर आ खड़े हुए और तोपें दागने लगे। रंघड़ों के युद्ध का यह ढंग बड़ी चतुराई वाला था, पर खालसा भी कोई कम नहीं था, गढ़ी की ओर से आ रही गोली का, जहाँ तक संभव होता, बचाव करते और यदि गोली लग भी जाती तो डरने के स्थान पर गुस्से में आकर और गोलियाँ चलाते, जिनके निशाने आगे से रोकने वाले रंघड़ों पर ठीक बैठते, पर वे भी तो डटे खड़े थे। इस बराबर के युद्ध में अपने सेनापति का संकेत पाकर खालसा ने अचानक धावा बोल दिया और गढ़ी की ओर से आ रही गोली की तनिक भी परवाह न की। जिसे गोली लगी वह गिर गया, शेष आगे बढ़ते चले गए और इस तरह शत्रु के सिर पर पहुंचकर हाथों हाथ घमासान युद्ध मचा दिया। इसे सहन न करते हुए रंघड़ गूजरों के घरों में जा घुसे और कुछ गढ़ी में जा घुसे। अब सिक्खों ने उनके निशाने बांधे और इस तरह गढ़ी के पास पहुँच गए। इस तरह चार घड़ी घमासान युद्ध हुआ। जब सिंघ गढ़ी के द्वार पर जा पहुंचे और लगे दरवाजे को उड़ाने लगे, तो गढ़ी के भीतर शत्रु ने समझ लिया कि सिक्ख गढ़ी के भीतर घुस आयेंगे और सबको कत्ल कर देंगे। तब उन्होंने ऊपर से ही सन्धि का झण्डा फहरा दिया और गोली चलाना बंद कर दिया। खालस ने भी अब गोलीबारी बंद कर दी। फिर गढ़ी में से सबको निकाल कर गुरूदेव जी के आगे प्रस्तुत किया। आपने आज्ञा की कि सारे शस्त्र एक जगह इक्ट्ठे कर दो और अपने हाथों से गढ़ी को गिरा दो और लूट-मार का माल वापिस कर दो और आगे के लिए कान पकड़ो। यदि फिर कभी ऐसा काम किया तो इससे भी अधिक दण्ड दिया जाएगा। रंघड़ों ने सब कुछ मान लिया। इस प्रकार जालिम लुटेरों के गाँव पर विजय प्राप्त करके खालसा का पैदल दल आनन्दपुर वापिस आ गया।

इस तरह की खालसा की विजयों से उसका रोब सब ओर छा गया। संगत अब बिना किसी कष्ट के आने जाने लगी थीं। आसपास की कमजोर प्रजा भी सुख से रहने लगी थी। इस तरह के जो युद्ध थे, वे कर्म के लिए थे। खालसा प्रजा के लिए न्याय तथा सुख के लिए कार्य कर रहा था।

भाई जय सिंघ

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में अनेक विद्वान तथा कवि सुशोभित होते थे। कवियों में से 52 के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई दिमागी चमत्कारों के प्रवीण विद्वान ग्रंथों की टीका तथा कविता लिखते थे। कई विद्वान या तो वहाँ ही स्थाई रूप में रहते या सेवा में लग कर आज्ञा पाकर बाहर सेवा करने के लिए चले जाते अथवा प्रेम की बाढ़ में विह्वल होकर उच्च आत्मिक रंगों में जीवन-मुक्ति का रस लेते। इन प्रेमियों में एक भाई जय सिंघ जी थे। आप बृजभाषा के प्रवीण कवि थे और वहाँ अपनी प्रवीणता का मूल्याकंन करवाने गए थे। सच्चे गुरू की अनन्त द्युति को देखकर मोहित हो गए। इतने मोहित हुए कि कविता का मूल्यांकन तो भूल गया, कविता के उच्चादर्श की प्राप्ति हुई और लौध री बन गए। एक दिन एक सिक्ख ने कहा, हे गुरूदेव जी ! जयसिंह जी हमेशा मग्न रहते हैं, इन्हें युद्धों में साथ चलने की आज्ञा दी जाए। सच्चे वैद्य जी ने कहा, “इस गोट को प्रेम की चौसर में विरह के घर में परिपक्व होना है”। दूसरी प्रातः सतगुरू जी ने आज्ञा की “जयसिंह ! अपने देश में परिवार में जाकर रहो और वहाँ ध्यान मग्न रहो।”

प्रियतम की आज्ञा पर हाय ! कठोर आज्ञा ! प्राण से बिछुड़ने वाली आज्ञा आपने से दूर होने की आज्ञा को सिर माथे पर रखा और घर पहुंचे। दो तीन वर्ष जिस विरह को झेला वह था तो भाई जी जानते हैं, या गुरू प्रियतम। अब फिर बुलावा आया तो प्रियतम जी के दर्शन प्राप्त करके तृप्त हुए वियोग में जो काफियां तथा दूसरे छंद पंजाबी भाषा में रचे थे, बहुत ही विरह भरे थे, पर अब वे समय की धूल में खो चुके हैं।

भालू को मोक्ष प्रदान

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में सदैव चहल-पहल बनी रहती। एक दिन आनन्दपुर नगर में एक कलंदर एक भालू लेकर आया। वह स्थान स्थान पर भालू के करतब और उदरपूर्ति के लिए दर्शकों से भिक्षा मांग लेता। उसे ज्ञात हुआ कि इस नगरी के स्वामी बहुत उदारचित हैं, वह उन सभी लोगों को सम्मानित करते हैं जो वीरता के करतब दिखता है। अतः गुरू दरबार में उपस्थित हुआ और विनती करने लगा कि आप अवकाश के समय मेरा करतब देखें। मैं विशालकाय भालू से मल-युद्ध करता हूँ। गुरूदेव जी ने आज्ञा प्रदान कर दी। एक विशेष स्थान पर भालू के खेलों का आयोजन किया गया। भालू ने भान्ति भान्ति के नृत्य दिखाये और अन्त में कलंदर के साथ हुआ मल-युद्ध। मल-युद्ध को देखकर सभी सिक्ख सेवक हँसने लगे। गुरूदेव जी का चंवर बरदार भाई कीरतिया बहुत जोर जोर से खिलखिला कर हँसा। उसकी असामान्य हँसी देखकर गुरूदेव जी ने उस पर प्रश्न किया। कीरतिया जी आपने पहचाना है यह भालू कौन है ? इस पर कीरतिया शान्त होकर कहने लगा, नहीं गुरूदेव जी ! मैं इसे कैसे पहचान सकता हूँ, मैं कोई अर्न्तयामी तो हूँ नहीं। गुरूदेव जी ने उसे बताया कि यह भालू तुम्हारा पिता है। यह उत्तर सुनकर भाई कीरतिया बहुत परेशान हुआ और गुरूदेव जी से कहने लगा कि मेरे पिता तो गुरू घर से सेवक थे। वह गुरू तेग बहादुर जी के समय में भी सेवा में समर्पित रहते थे, जैसा कि आप भी जानते हैं। हमारे पूर्वज कई पीढ़ियों से सिक्खी जीवन जी रहे हैं। यदि पूर्ण समर्पित सेवकों को मरणोपरान्त भालू की योनि ही मिलती है तो फिर गुरू घर की सेवा करने का क्या लाभ ?

भाई कीरतियां की जिज्ञासा और दुविधा शान्त करने के लिए गुरूदेव जी ने उन्हें बताया, 'कि आप के पिता सेवा में तो संलग्न रहते थे किन्तु उन के हृदय में अभिमान आ गया था कि मैं श्रेष्ठ सिक्ख हूँ इसलिए वह जन–साधारण को अपने कड़वे वचनों से अपमानित कर देते थे। एक दिन कुछ बैलगाड़ियाँ जिसमें गुड़ लदा हुआ था, अपने गंतव्य की ओर जा रही थी। इनके चालकों को जब मालूम हुआ कि यहाँ गुरू तेग बहादुर जी प्रचार दौरे पर आये हुए हैं तो वह तुरन्त अपनी बैलगाड़ियाँ चलती हुई छोड़कर दर्शनों अथवा प्रसाद प्राप्ति के विचार से आये। उस समय आप के पिता जी से उन्होंने अनुरोध किया कि हमें भी प्रसाद देने की कृपा करें। वह उस समय संगत में प्रसाद वितरण कर रहे थे। उन्होंने इन मैले कुचैले कपड़े वाले गुरू के सिक्खों को कठोर शब्दों में कहा – पीछे हट कर खड़े रहो बारी आने पर प्रसाद मिलेगा। किन्तु वे सिक्ख जल्दी में थे क्योंकि उनकी बैल गाड़ियाँ चलते हुए आगे बढ़ती जा रही थी। अत: उन्होंने पुन: आगे बढ़कर प्रसाद प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस बार आपके पिता गुरूदास जी ने उन्हें बहुत बुरी तरह फटकार लगाई और कहा – क्यों रीछ की तरह आगे बढ़ते चले आ रहे हो, सब्र करो, प्रसाद मिल जायेगा। इस पर उन सिक्खों ने वहीं पर गिरे हुए प्रसाद का एक कण उठाकर बहुत श्रद्धा से सेवन कर लिया और जाते हुए कहा – हम रीछ नहीं तुम रीछ हो। जो भक्तजनों से अभद्र व्यवहार करते हो। बस वही अभिशाप तुम्हारे पिता को रीछ (भालू) योनि में मरणोपरान्त ले आया। किन्तु गुरू के सिक्ख थे, इसलिए अब अच्छे कर्मफल के कारण गुरू दरबार में उपस्थित हुए हैं।

यह वृत्तान्त सुनकर भाई कीरतियां जी गुरूदेव जी के चरणों में लेट गये और प्रार्थना करने लगे कि हे गुरूदेव जी ! कैसे भी हो मेरे पिता को क्षमा दान करके मोक्ष प्रदान करें। गुरूदेव जी ने भक्त के अनुरोध के कारण उस कलंदर से वह भालू खरीद लिया और कड़ाह प्रसाद तैयार करवाकर समस्त संगत को उसके कल्याण के लिए प्रार्थना करने को कहा – प्रार्थना समाप्त होने पर भालू को प्रसाद सेवन करवाया गया। जैसे ही भालू ने प्रसाद सेवन किया वह कुछ ही देर में शरीर त्याग गया और बैकुण्ठ धाम को चला गया। गुरूदेव जी ने उस भालू का मनुष्यों की तरह अन्तिम सँस्कार कर दिया।

काज़ी सलारदीन की आशंका निवृत्त

आनन्दपुर नगर के निकट एक सलारदीन नामक काज़ी रहता था। वह श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी से भेंटवार्ता करने प्राय: आता रहता था। उसे गुरूदेव जी के साथ आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करने पर बहुत सन्तुष्टि प्राप्त होती थी। अत: न चाहते हुए भी गुरूदेव जी की प्रतिभा से प्रभावित खींचा चला आता था। एक बार उसकी उपस्थिति में पोठहार क्षेत्र की संगत बहुत बड़े काफिले में अपनी श्रद्धा सुमन लेकर उपस्थित हई। सभी स्त्री पुरूषों ने गुरूदेव जी को दण्डवत् प्रणाम किया और अपनी अमूलय वस्तुएं जो उपहार में लाये थे, भेंट की तथा अपनी अपनी मनोकामनाएं अथवा जिज्ञासाएं गुरूदेव जी के समक्ष रखी। गुरूदेव जी ने सभी की समस्याओं का समाधान करते गये। कईयों को आशीष दी कि आपकी मनोकामनाएं गुरू नानक के दरबार में अवश्य ही पूर्ण होंगी। यह देखकर निकट बैठे हुए काज़ी सलारदीन के मन में शंका उत्पन्न हुई कि सभी दर्शनार्थी की मनोकामनाएं किस प्रकार पूर्ण होगी जबकि गुरूदेव जी स्वयँ ही बताते हैं कि विधाता ने जो भाग्य में लिखा है, कोई मिटा नहीं सकता? फिर यह आशीष कैसे फलीभूत होगा?

उसने अपनी आशंका का उत्तर पाने के लिए गुरूदेव जी से किसी अन्य दिन एकान्त के समय यही प्रश्न रखा और पूछा कि गुरूदेव जी क्या आप संगत का मान रखने के लिए उनको आशीष देते हैं और कहते हैं कि तेरी मनोकामनाएं पूर्ण होंगी अथवा विधाता के नियमों के विरूद्ध हो भी जाती है। इस उल्झे हुए प्रश्न को सुनकर गुरूदेव जी ने एक मोहर मँगवाई और काज़ी के हाथों में दे कर कहा – इसके अक्षरों को ध्यान से देखों। यह सब उल्टे हैं किन्तु स्याई लगाकर कागज़ पर प्रयोग करने से इसकी छपाई सीधी हो जाती है, ठीक इसी प्रकार साध–संगत अथवा गुरूजनों के पास आने पर मस्तिष्क के लेख सीधे हो जाते हैं। यदि व्यक्ति गुरू पर श्रद्धा रखता है और गुरू की कृपा के पात्र बनने का प्रयास करता है।

खालसे की माता

पश्चिम पँजाब के जिला रूहतास से एक सिक्खों का काफिला गुरू दर्शनों को आनन्दपुर आया। इस काफिले में रामू नामक एक भक्तजन अपनी युवा पुत्री साहब देवी को लेकर गुरू दरबार में उपस्थित हुए। उन्होंने गुरूदेव जी के चरणों में प्रार्थना की कि हे गुरूदेव जी ! मेरी इस कन्या ने आपको हृदय से स्वामी मान लिया है। अत: वह चाहती है कि आप उसे वरण करे अन्यथा वह समस्त जीवन कुंवारी रहेगी। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – अब हमने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है। अत: हम विवाह नहीं कर सकते। इस पर भक्त रामू बोला यदि आप मेरी कन्या का वरण नहीं करेंगे तो भी इससे कोई अन्य व्यक्ति विवाह नहीं करेगा क्योंकि स्थानीय लोग इसे आपकी अमानत जानकर माता जी, माता जी कहकर सम्बोधन करते हैं। गुरूदेव जी गम्भीर हो गये और उन्होंने समस्या का समाधान करते हुए कहा – यदि तुम्हारी कन्या कुंवारे डोले (सम्बन्ध रहित पत्नी) के रूप में हमारे पास रह सकती है तो उसे हम अपने महलों में निवास की आज्ञा देते हैं। साहब देवी ने तुरन्त सहमति प्रदान कर दी। इस प्रकार गुरूदेव जी का एक और विवाह हो गया। कुछ समय के अन्तराल में एक दिन गुरूदेव जी के समक्ष साहब देवी ने अपने हृदय में छिपी वेदना बताई कि वह भी सुन्दरी की तरह माँ कहलाना चाहती है। उसकी भी इच्छा है कि उसकी गोदी में सन्तान हो। गुरूदेव जी ने कहा – यह इच्छा नारी में स्वाभाविक होती ही है। अत: समय आने पर हम तुम को एक ऐसा पुत्र प्रदान करेंगे जो कभी भी मरेगा नहीं और रहती दुनियां तक तेरा नाम अमर रखेगा। यह आश्वासन प्राप्त कर साहब देवी जी सन्तुष्ट हो गई। जब गुरूदेव जी ने खालसा पंथ की सृजना की तो उन्होंने

खालसा पंथ को माता साहब देवां (कौर) की गोदी में डाल दिया और आशीष प्रदान की कि खालसा तुम्हारा पुत्र अमर रहेगा और मानवता के हितों की रक्षा निष्काम भाव से सदैव करता रहेगा।

मसंद श्रेणी पर प्रतिबन्ध

सिक्ख पंथ का दल बन्धन ढांचा जो गुरू नानक देव जी के समय 'धर्मशाला' तथा संगत के रूप में शुरू हुआ और गुरू अमरदास जी के समय 'मसंद' श्रेणी के नेतृत्त्व में विस्तार करने में सफल हो गया। मसंद (मिशनरी) श्रेणी के स्थापित होने से सिक्ख पंथ तथा सिक्ख धर्म एक व्यवस्थित संगठित ढांचे में बंध कर उभरा। जिससे सिक्ख धर्म का प्रचार तथा आर्थिक प्रबन्ध एक साथ सफलता से कार्यरत रहने लगे। इस प्रकार संगतों का दसवंध (दशमांश) उचित विधि से गुरू दरबार में पहुंचने लगा और इस संयुक्त कोष से जनकल्याण के कार्य तथा दीन-दुखियों की पूरी तरह सहायता होने लगी। चौथे नानक से नौवें नानक तक इस मसंद श्रेणी ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया। दसवें नानक के समय भी इस श्रेणी का कार्य किसी हद तक ठीक ही था परन्तु जैसे जैसे चयन किये हुए मसंदों के स्थान पर उनके उत्तराधिकारी अर्थात उनकी संताने आनी शुरू हो गई तो इस श्रेणी में गिरावट आ गई और यह पतन की ओर अग्रसर हो गये। दान के माल के कारण वे कुछ हद तक बेईमान और अपराध ी बनते चले गये।

एक बार एक शुभ अवसर पर मनोरंजन के कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। जिसमें भांड लोगों ने (नौटंकी वाले) मसंदों की नकल कर दिखाई। यह कार्यक्रम स्वयँ गुरूदेव जी गणमान्य अतिथियों के संग देख रहे थे। उन्होंने मसंदों को लुटेरे, ठग, घमण्डी, बेईमान, बदचलन तथा एय्याश जैसा दर्शाया। उस समय गुरूदेव जी के निकट भाई नानूंराम, दिलवाली (दीवान दरबारा सिंह जत्थेदार के पिता) बैठे हुए थे। उन्होंने भी मसंदों के नीच आचरण की भांडो के खेल के साथ सहमति प्रकट की तथा कुछ अन्य जानकारियां गुरूदेव जी को दी। यह सब सुनकर गुरूदेव जी के रौंगटे खड़े हो गये। इस पर उन्होंने तुरन्त आदेश दिया कि सभी मसंदों को हमारे दरबार में बांध कर लाया जाए। इस कार्य के लिए विभिन्न क्षेत्रों में जवानों को भेजा गया। कुछ ही दिनों में सभी मसंद आनन्दपुर पहुंच गये। गुरूदेव जी ने बारी बारी सभी मसंदों की परीक्षा ली और उनके क्षेत्र की संगत से पूछताछ की। जो मसंद बेईमान निकले, उनको कठोर दण्ड दिये गये किन्तु जो मसंद परीक्षा में सफल हुए उनको सिरोपा (पुरस्कार) दिया गया। जिनको गुरू घर की तरफ से सम्मानित किया गया। उनमें भाई बखत मल्ल सूरी (जलालपुर जट्टां), भाई राओ कम्बो (दीपालपुर), भाई जोध (कमालीया), भाई दुर्गादास हजाबत (दुबुरजी स्यालकोट), भाई तुलसीदास छीबा (दिल्ली) और भाई फेरू जी (मीआं की मौड़ लाहौर) थे।

भाई फेरू जी को गुरू दरबार में बांध कर लाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। वह स्वयं ही अपनी दाड़ी अपने हाथों से पकड़ कर दरबार में उपस्थित हो गये। तब लेखाकार ने बताया कि भाई फेरू की तरफ से दसवंध नियमित रूप से नहीं पहुंचता। यह सुनकर गुरूदेव जी ने कहा इस गुरूमुख की ओर कोई बकाया नहीं है। इस ने कभी अमानत में ख्यानत नहीं की। इसके ऊँचे व निर्मल आचरण की तो पूरे क्षेत्र में लोग साक्षी हैं। हमें पता चला है कि यह नंगों को कपड़ा व भूखों को अनाज देता रहा है। गरीबों को दिया अन्न व धन हमें सीधे ही पहुँच जाता है। 'आज से सभी जान लोकि गरीब का मुँह गुरू की गोलक ही है'। यदि आप ने किसी जरूरतमंद की सहायता की तो वह सीधा हमारे खजाने में पहुंच जाता है।

इस घटना के पश्चात् गुरूदेव जी ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके मसंद श्रेणी समाप्त करने की घोषणा कर दी और कहा - आगामी समय में कोई भी सिक्ख अपना दसवंध भेंटा मसंदों को न देकर सीधे गुरू दरबार में भेजे क्योंकि मसंदों द्वारा भेंट स्वीकार नहीं की जायेगी। उस दिन से मध्यस्थ को बाहर निकाल दिया और गुरू शिष्य का सीधा सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया।

नादौन का युद्ध

सब पहाड़ी राजा मुगल बादशाह को कर देते थे। प्रतिवर्ष यह कर एकत्र करने का कार्य लाहौर का सूबेदार करता था। पहाड़ी राजा अपना अपना अंशदान लाहौर पहुंचा देते थे, वहां का नवाब वह समूचा धन दिल्ली औरंगजेब के खजाने में पहुंचा देता था। तीन चार वर्ष तक यह ध न बादशाह को नहीं पहुंचा, क्योंकि राजाओं ने धन लाहौर तक पहुंचाया ही न था। बादशाह ने लाहौर के सूबेदार को संदेश भेजा तथा कर की राशि मांगी। सूबेदार विवश था, उसके पास धन पहुंचा ही नहीं था। औरंगजेब बड़ा संदेहशील बादशाह था। उसने सोचा कि जरूर लाहौर का सूबेदार धन का अनुचित प्रयोग कर रहा है, इसलिए उसका दमन अनिवार्य है। अत: बादशाह ने शाही सेना के दो सेनापतियों मीयां खां तथा जुल्फिकारअली खां को बड़ी सेना देकर लाहौर भेज दिया। लाहौर का सूबेदार स्थिति से घबरा गया, किन्तु बादशाह तक पहुंचाने के लिए धन तो उसके पास नहीं था।

सूबेदार ने सारी बात सेनापतियों को बता दी। परिणामत: मीयांखां तो जम्मू की ओर कर उगाहने के लिए चल पड़ा और इधर कांगड़ा की ओर के पहाड़ी राजाओं से उगाही करने के लिए सूबेदार ने अपने भतीजे अलिफखां को बड़ी सेना देकर भेज दिया। अलिफखां सीधा कांगड़ा पहुँचा। कांगड़ा का राजा कृपाल चन्द स्थिति को समझ गया और लड़ने में अपने को असमर्थ मानकर उसने कर की बकाया राशि अलिफखां को देकर क्षमा मांग ली। साथ ही अपनी पुरानी शत्रुता का बदला लेने के लिए उसने उसे भीमचन्द के विरूद्ध भड़का दिया। इस दुष्कर्म में उसका साथ

पड़ोसी राज्य बिझड़वाल के राजा दयाल चन्द ने दिया। इन दोनों ने भीमचन्द के विरूद्ध लड़ने के लिए अलिफखां के साथ युद्ध भूमि पर चलने का भी प्रस्ताव स्वीकार किया।

अलिफखां कृपाल चन्द व दयाल चन्द की संयुक्त सेनाओं ने कहिलूर की सीमा पर नदी तट के पास ऊँची जगह पर नादौन में अपने मोर्चे बना लिए। साथ ही उन्होंने लकड़ी के तख्तों की एक लम्बी बाड़ बना ली और उसके पीछे से गोलियों और बाणों को शत्रु सेना पर बरसाने का आयोजन कर लिया। युद्ध की पूरी तैयारी कर लेने के पश्चात् अलिफखां ने भीमचन्द के पास संदेश भेजा। तुमने कई वर्षो के कर की राशि का भुगतान नहीं किया। अत: एकदम सारी रकम का भुगतान करो अन्यथा हमारी सेनाएं कहिलूर की सीमा पर पहुँच चुकी है। हम तुम्हारे राज्य पर आक्रमण करके तुम्हें बंदी बना लेंगे और चौगुणी राशि लेकर ही तुम्हें छोड़ा जाएगा। लाहौर के सूबेदार तथा बादशाह औरंगज़ेब की तरफ से आपको सावधान किया जाता है, उचित उत्तर न मिलने की सूरत में राज्य पर आक्रमण कर दिया जाएगा।

भीमचन्द को यह भी पता चल गया था कि उसके पड़ोसी राजा कृपालचन्द और दयालचन्द भी अलिफखां की सहायता के लिए साथ आये हैं। वह स्थिति से आतंकित हो उठा। उसके पास देय राशि भी उपलब्ध नहीं थी, अन्यथा कर का भुगतान करके इस मुसीबत से छुटकारा पा लेता। युद्ध के बादल सामने घिरते हुए दिखाई देने लगे, अत: इसका कोई विकल्प न पाकर उसने भी लड़ने की तैयारी शुरू कर दी। अपने मित्र राजाओं की सहायता के लिए बुलाने को संदेशवाहक दौड़ा दिए। तभी उसके मन्त्री ने उसे गुरूदेव जी की याद दिलाई। आप आनन्दपुर के गुरू गोबिन्द सिंह को अपनी सहायता के लिए क्यों नहीं बुलाते। उन्होंने तो आपको मुगलों के विरूद्ध कुछ भी सहायता का वचन दिया था।

कहिलूर नरेश को गुरूदेव जी की सहायता से युद्ध जीतना स्वाभिमान के विरूद्ध प्रतीत हुआ, किन्तु मरता क्या न करता, गुरूदेव जी को निमन्त्रण भिजवा दिया गया। गुरूदेव जी ने संदेशवाहक को यह कहकर लौटा दिया कि वे एकदम उसके पीछे पीछे ही युद्ध भूमि में पहुँच रहे हैं। भीमचन्द निर्भय होकर लोहा ले। उधर भीमचन्द के मन में यह था कि गुरूदेव जी के पहुँचने से पहले ही यदि वह अलिफखां पर विजय पा जाये, तो इससे गुरूदेव जी पर एक बार तो उसकी धाक बैठ सकेगी। यही सोच कर वह गुरूदेव जी के पहुँचने से पहले ही अलिफखां की सेनाओं से जा टकराया। अलिफ-कृपाल-दयाल की संयुक्त सेना ने लकड़ी की बाढ़ के उस पार से गोलियों और तीरों की इतनी बौछार की कि भीमचन्द की सेना के असंख्य सैनिक काम आ गये।

गुरू गोबिन्द सिंघ अपने शूरवीरों के साथ जब युद्ध भूमि पर पहुँचे तो उन्होंने भीमचन्द की दुर्गति होते देखी। साथ ही उन्होंने यह भी महसूस किया कि अभिमान होने के कारण ही वह पिट रहा था, इसलिए पहले तो गुरूदेव जी चुपचाप तमाशा देखते रहे, किन्तु भीमचन्द की प्रार्थना पर फिर आगे बढ़ना स्वीकार कर लिया। गुरूदेव जी अपने चुने हुए वीरों को साथ लेकर गोलियों और तीरों की बौछारों की परवाह न करते हुए तेजी से आगे बढ़े। लकड़ी की बाढ़ के पीछे छिपे शत्रु सैनिकों को निकालने के लिए भीतर अग्नि-शस्त्र चलाये गये। भयानक युद्ध हुआ। राजा दयालचन्द गुरूदेव जी की गोली से मारा गया। उसके सैनिकों का साहस भी दम तोड़ने लगा। भीमचन्द गुरूदेव जी की युद्ध कला देख देख दांतो तले अंगुली दबा रहा था। गजब की फुर्ती से वे अपने घोड़े को चलाते, मोड़ते और शत्रु पक्ष पर चोट कर रहे थे। शत्रु पक्ष पर धीरे धीरे सिक्ख सेना हावी हो रही थी। तभी संध्या हो गई, रात्रि का अन्धेरा चारों ओर बिखरने लगा। अलिफखां की संयुक्त सेनाएं काठबाड़ी के पीछे छिप गई। गुरूदेव जी तथा भीमचन्द की सेनाएं भी पीछे हट गई और अगले दिन प्रात: जोरदार आक्रमण की योजना बनाने लगीं। उधर संयुक्त सेनाओं ने आज की करारी चोट का मजा पा लिया था, इसलिए अगले दिन पुन: लड़ने का उनका साहस ही नहीं रहा। धीरे धीरे रात में ही वे सेनाएं भाग खड़ी हुई। प्रात:काल जब गुरूदेव जी की सेनाओं ने 'सतश्रीअकाल' का जयकारा बुलंद कर आक्रमण की तैयारी की तो वहां शत्रु की अनुपस्थिति का पता चला। राजा भीमचन्द ने अपनी विजय की घोषणा कर दी। भीतर से वह डर भी रहा था कि अलिफखां अधिक कुमुक लेकर आएगा और उसके राज्य की नीवें हिला देगा। अत: उसने गुरूदेव जी से परामर्श किये बिना ही कृपाल चन्द को संधि का संदेश भिजवा दिया। गुरूदेव जी को जब भीमचन्द की इस कायरता का पता चला तो उन्हें दुख हुआ और वे भी चुपचाप वापिस आनन्दपुर को चले आये।

गुलेर के युद्ध में गुरूदेव जी का सहयोग

अलिफखां नादौन की लड़ाई में बुरी तरह पराजित हुआ था। भीमचन्द विजयी होकर भी कायरतावश कृपालचन्द से संधि करने भागा था। संधि की चर्चा में उसने अपना सारा दोष गुरूदेव जी के माथे मढ़ कर कृपाल को प्रसन्न कर लिया था और दोनों अन्तरंग मित्र हो गये थे। उनकी मित्रता के पीछे उनकी कपटपूर्ण प्रवृति थी, अत: परिणाम भी छलकपटमय होना अवश्यम्भावी ही था। अलिफखां पराजित होकर जब लाहौर पहुँचा तो सूबेदार ने उसे खूब बुरा भला कहा। इस पराजय से एक प्रकार से बादशाह की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचा था, इसलिए लाहौर का सूबेदार दोबारा अधिक शक्ति से धावा करना चाहता था।

नादौन का युद्ध सन् 1689 में हुआ था, अगले ही वर्ष लाहौर के सूबेदार का क्रोध गुलेर राज्य के राजा गोपाल पर उतरा। आक्रमण की योजना जब बन रही थी, तभी सूबेदार के एक पुराने सैनिक हुसैनी ने अपने आप को इस कार्य के लिए प्रस्तुत किया और सूबेदार को पहाड़ी राजाओं को दण्डित करने का पूरा विश्वास दिलाया। सूबेदार मान गया। हुसैनी एक बड़ी सेना लेकर पर्वत प्रदेश की ओर बढ़ा। उसका निशाना राजा भीमचन्द और गुरू गोबिन्द सिंह थे, क्योंकि इन्हीं दोनों के कारण अलिफखां नादौन का युद्ध हारा था। हुसैनी अपनी फौज़ लेकर काँगड़ा के रास्ते से ही आनन्दपुर की ओर बढ़ा। काँगड़ा में जब हुसैनी का पड़ाव पड़ा तो कपटी कृपाल चन्द ने पुन: पुराना हथकंडा अपनाया। उसने हुसैनी को भी कुछ

धन देकर उससे मित्रता कर ली। कहिलूर का राजा भीमचन्द कृपाल से पहले ही संधि कर चुका था। वह भी वहीं पहुंच गया और दोनों ने मिलकर हुसैनी को पक्का विश्वास दिला दिया कि उक्त क्षेत्र में झगड़े की जड़ केवल आनन्दपुर वाले गुरूदेव जी हैं। उनका दमन समस्त पहाड़ी राजाओं द्वारा बादशाह की अधीनता के समान है। हुसैनी को यह बात मान लेने में कोई बाधा नहीं थी, क्योंकि नादौन में गुरूदेव जी के ही कारण अधिक पराजय का मुँह देखना पड़ा था। अत: निर्णय लिया गया कि हुसैनी काँगड़ा से सीधे आनन्दपुर पर आक्रमण करेगा और कृपाल तथा भीमचन्द इस कार्य में उसके सहयोगी होंगे।

सेनाओं ने आनन्दपुर की ओर कूच कर दिया। गुरूदेव जी को सूचना पहुँचाई गई। गुरू गोबिन्द सिंघ अन्तर्यामी थे, अत: भावी को देख सकते थे। मुस्कुराकर बोले, 'देखें, वाहिगुरू को क्या मंजूर है'।

हुसैनी की सेनाएं आनन्दपुर पहुँचने से पूर्व गुलेर राज्य के निकट पहुँची, तो भीमचन्द को गुलेर के राजा गोपाल से अपना कोई पुराना वैर याद आ गया। उसने तिकड़म से हुसैनी को गुलेर राज्य को लूट लेने के लिये तैयार कर लिया। गोपाल ने भावी दुर्भाग्य से बचने के लिए हुसैनी के शिविर में उपस्थित होकर पांच हजार रूपये देकर अपना पीछा छुड़वाना चाहा। हुसैनी तो शायद पाँच हजार में ही मान जाता, किन्तु कृपाल और भीमचन्द अधिक कपटी थे। उन्होंने हुसैनी को दस हजार की मांग करने को प्रेरित किया। गोपाल के पास इतनी राशि नहीं थी, किन्तु शिविर से बच निकलने की खातिर उसने अधिक राशि का प्रबन्ध करने के बहाने वहां से छुटकारा पाया और भागकर अपने दुर्ग में सुरक्षित हो गया। साथ ही उसने गुरूदेव जी के पास सहायता की प्रार्थना भिजवा दी।

गुरू गोबिन्द सिंघ जानते थे कि हुसैनी की सेनाएं यदि गुलेर को न घेरती, तो सीधे आनन्दपुर पर ही चढ़ आतीं। तब लड़ना तो पड़ता ही, ऐसे में क्यों न गुलेर की सहायता करके युद्ध को आनन्दपुर से दूर ही निपट लिया जाये। इसी विचार से गुरूदेव जी ने अपने एक सेनापति भाई संगतिया को बहुत बड़ी संख्या में शूरवीर सैनिक देकर गोपाल की मदद को भेजा। अचानक सिक्ख कुमुक पहुँचने से कृपालचन्द भीमचन्द आतंकित हो उठे। वे पाऊँटा में और बाद में नौदान में गुरूदेव जी की शक्ति देख चुके थे। उन्होंने हुसैनी को आनन्दपुर से पहले ही अपनी ताकत बिखेरने से रोका और उसे सिखा दिया कि लड़ने की अपेक्षा गोपाल से पाँच हजार रूपये ही ले लो। हुसैनी ने भाई संगतिया के पास संदेश भिजवाया कि यदि गोपाल पाँच हजार रूपया उसे दे दे तो युद्ध की मारकाट से बचा जा सकता है। गुलेर-नरेश गोपाल तो पहले ही इस शर्त के लिए तैयार था, अत: उसने धन देना स्वीकार कर लिया। गोपाल के साथ भाई संगतिया तथा उनके सात शूरवीर हुसैनी के शिविर में धन देने के लिए गए। भाई संगतिया कृपाल और भीम के कपट से परिचित थे। अत: किसी भी स्थिति के लिए तत्पर रहना जरूरी समझते थे। उन्होंने अपने सिक्ख शूरवीरों तथा गोपाल की सेना को शिविर से कुछ दूर बिल्कुल तैयार रहने को कह दिया था, युद्ध कभी भी छिड़ सकता था। उधर कपटी कृपाल और भीम की योजना ऐसी थी कि वे शिविर में ही गोपाल और संगतिया को गिरफ्तार कर लेना चाहते थे - पाँच हजार की राशि लेकर गुलेर को अभयदान देने की बात तो बहाना मात्र थी। गुलेर-नरेश तथा भाई संगतिया जब हुसैनी शिविर में पहुँचे तो बदले हुए तेवर देखकर सारी शरारत भांप गए। उन्होंने जल्दी से अपनी समूची राशि सम्भाली और शत्रु के शिविर से तेजी से बाहर निकले। हुसैनी की सेनाओं ने जब तक इन्हें घेरने का प्रयास किया, सिक्ख सैनिकों तथा गोपाल की सेनाओं ने उन पर धावा बोल दिया। बात ही बात में घमासान युद्ध छिड़ गया। भाई संगतिया में गुरुदेव जी का उत्साह और अमित प्रेरणा कूट कूट कर भरी थी, अत: वह भूखे सिंह की तरह शत्रु पक्ष पर टूटता और जिधर से निकलता, कटे मुंडों और तड़पते कबंधों के ढेर लग जाते। डेढ़ दो घंटे के ही निर्णायक युद्ध से शत्रु की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। स्वयँ हुसैनी और कृपाल चन्द युद्ध में खेत रहे। गुलेर पक्ष से भाई संगतिया और अनेक सिंह सूरमा काम आए। राज्य की सेना के भी सैंकड़ों सैनिक मारे गये। शत्रु पक्ष को भारी जनहानि उठानी पड़ी। युद्ध के मुख्य नेताओं की मृत्यु देखकर अन्य लोग धीरे धीरे खिसकने लगे। भीमचन्द और अन्य सहयोगी राजा हुसैनी की मृत्यु पर पीछे हटने लगे और दो ही घंटे के बाद युद्ध भूमि से शत्रु पक्ष भाग चुका था। गुलेरियां गोपाल को अपूर्व विजय प्राप्त हुई। युद्ध का सामान भी भारी मात्रा में उसके हाथ लगा।

गोपाल ने गुरूदेव जी के शूरवीरों का दाह-संस्कार बड़े सम्मान के साथ वहीं कर दिया और स्वयँ आभार प्रकट करने के लिए वहाँ से सीधे आनन्दपुर पहुँचा। गुरूदेव जी ने उसके आगमन पर बड़े सत्कारपूर्ण ढंग से स्वागत किया और उसे शाहाना सम्मान प्रदान किया। गुलेर के युद्ध में हुसैनी और कृपाल की मृत्यु तथा पहाड़ी राजाओं के युद्धभूमि से पराजित होकर भाग जाने से एक ओर तो गुलेर राज्य का महत्त्व बढ़ गया और दूसरी ओर गुरू गोबिन्द सिंह मुगलों की आँख में काँटे की तरह चुमने लगे। जहाँ आनन्दपुर की शक्ति से पहाड़ी राजा कांपने लगे, वहीं आनन्दपुर हमेशा के लिए मुगलों का निशाना बन गया।

हुसैनी की मृत्यु की सूचना पाकर लाहौर के सूबेदार ने अपने पुत्र को पाँच हजार सैनिक देकर गुरूदेव जी के विरूद्ध भेजा, किन्तु वह आनन्दपुर के निकट आकर ही लौट गया। गुरूदेव जी पर आक्रमण करने का उसका साहस नहीं हुआ। सूबेदार ने उसे बुरा भला कहा और अपने एक अन्य सेनापति को भारी सेना देकर भेजा। उसने सीधे आनन्दपुर पर हमला बोल दिया। आनन्दपुर के कुछ क्षेत्रों को लूटने में भी वह सफल हुआ, किन्तु रात्रि घिर आने पर दो मील पीछे हटकर उसने छावनी डाली। वह आनन्दपुर को थोड़ा लूट सकने की सफलता पाकर, अति प्रसन्न था। उसे विश्वास हो गया था कि प्रात:काल होते ही वह आनन्दपुर को जीतकर गुरूदेव जी को बन्दी बना लेगा। रात्रि में प्रसन्नता के कारण सेना खा-पी कर विश्राम करने लगी थी। स्वयँ सेनापति भी शराब पी कर मस्ती में था। एक पहर रात बीते गुरूदेव जी ने युद्ध की पूरी योजना तैयार की और बिना प्रतीक्षा किए उसी समय मुगल सेना पर हमला बोल दिया। इससे पूर्व कि मुगल सेना सम्भले, सिक्खों ने उनके सैकड़ों सैनिक काट डाले। सेनापति बड़ी कठिनाई से भाग कर बचा। अन्य सैनिकों ने भी जिधर देखा, उधर अपने प्राण बचाने का प्रयास किया। प्रात:काल का

प्रकाश होने से पहले मुगलों का शिविर खाली हो चुका था। युद्ध का बहुत अधिक सामान, गोला-बारूद तथा हथियार गुरूदेव जी के हाथ लगे, भोजन सामग्री भी मिली।

सेनापति पराजित होकर जब लाहौर पहुँचा तो सूबेदार ने अपनी बेइज्जती महसूस की। गुरूदेव जी की शक्ति के सम्मुख सूबेदार ने मन से अपनी पराजय स्वीकार कर ली। उसने बादशाह औरंगज़ेब को संदेश भिजवा दिया कि पहाड़ी राजा गुरूदेव जी की प्रेरणा और शह पर कर नहीं देते। बल प्रयोग करके भी हम उससे कर प्राप्त नहीं कर सके। इसलिए यदि सम्राट को कर की राशि उगाहनी है तो शाही सेना भेज कर पहले गुरू गोबिन्द सिंघ को रास्ते से हटाएं। गुरू के होते और आनन्दपुर की बढ़ती शक्ति के रहते पहाड़ियों से मालिया वसूल नहीं किया जा सकता। औरंगज़ेब को संदेश मिला, तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और गुरूदेव जी को दण्डित करने की योजना बनाने लगा।

मुअज़्म (बहादुरशाह) का पर्वतीय नरेशों पर आक्रमण

लाहौर के सूबेदार (गवर्नर) की रपट पाकर औरंगजेब ने अपने बेटे बहादुरशाह को सेना देकर गुरूदेव जी तथा पर्वतीय नरेशों के विरूद्ध लड़ने के लिए भेजा। सूचना प्राप्त होते ही नन्द लाल गोया जो कि कभी बहादुरशाह के पास मीर मुन्शी की पदवी पर कार्य कर चुके थे, आनन्दपुर से चलकर उसे लाहौर में मिले और उन्होंने बहादुरशाह को गुरू गोबिन्द राय (सिंघ) जी के व्यक्तित्त्व एवं कार्यो, प्रवृतियों से परिचित कराया तथा समझाया कि वह गुरूदेव जी के विरूद्ध बेकार झंझट न मोल ले। उनके विरूद्ध संग्राम करना मानवता का गला घोटने के समान है क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम सबके निरपक्ष सहयोगी हैं। उन्हें किसी जाति धर्म या सम्प्रदाय से घृणा नहीं। वे केवल अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध हैं। अत: वर्तमान स्थिति में लाहौर के सूबेदार के व्यवहार में कहीं न कहीं खोट अवश्य होगा। पर्वतीय नरेशों तथा सूबेदार के साथ गुरूदेव जी की टकराहट इसी कारण हुई होगी। बहादुरशाह सूझवान तथा उदार था, उसमें अपने पिता औरंगजेब की भान्ति कट्टरता नहीं थी। अत: वह 'गोया' की बातों को समझ गया और उसने गोया को वचन दिया कि मेरा अभियान केवल पर्वतीय नरेशों तक ही सीमित रहेगा। इसलिए गुरूदेव जी अभय होकर निश्चिन्त रह सकते हैं। यह आश्वासन प्राप्त कर दीवान नन्दलाल गोया गुरूदेव जी के दरबार में आनन्दपुर पहुँचा और स्थिति से अवगत कराया और गुरूदेव जी को तटस्थ रहने को कहा - वैसे भी गुरूदेव जी किसी पर्वतीय नरेश की सहायता करने के विचार में नहीं थे क्योंकि भीमचन्द इत्यादि नरेश समय असमय विचलित होकर केवल स्वार्थ सिद्धि का मार्ग ही अपनाते थे। उनकी कोई मर्यादा अथवा सिद्धान्त तो होता ही नहीं था। इस बार पर्वतीय नरेशों की आपसी फूट और गुरूदेव जी से अनबन के कारण मुगल सेना विजयी रही। जब बहादुरशाह कर वसूल करके पर्वतीय प्रदशों से दिल्ली लौटा तो औरंगजेब अपने पुत्र से अधिक प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि उसने गुरूदेव जी पर आक्रमण नहीं किया था। कुछ समय पश्चात जब औरंगजेब को गुरूदेव जी पर आक्रमण न करने के कारण का पता चला तो उसने तुरन्त गुरू-प्रेमी नन्द लाल की हत्या कर देने का आदेश दिया और अपने गुण्डे आनन्दपुर भेजे। किसी प्रकार यह रहस्य बहादुरशाह को पता चल गया। वह नन्दलाल गोया से बहुत स्नेह करता था। अत: उसने इस घटना की सूचना उन्हें तुरन्त भेजी और सतर्क रहने को कहा।

राजा भीम चन्द का देहान्त और देवीचन्द

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को एक दिन अकस्मात् सूचना मिली कि राजा भीमचन्द का देहान्त हो गया है। वह कुछ दिन पूर्व से हृदय रोग से पीड़ित रहने लगा था। गुरूदेव जी ने अपने प्रतिनिधि के रूप में दादी माँ नानकी जी तथा दीवान नन्द चन्द को शोक व्यक्त करने के लिए कहलूर भेजा। प्रतिनिधि मण्डल ने अंत्येष्टि क्रिया में भाग लिया और गुरूदेव जी की ओर से उस के पुत्र अज़मेर चन्द को पगड़ी भेंट की। भीमचन्द की मृत्यु के पश्चात अजमेर चन्द को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया। अजमेर चन्द गुरूदेव जी के साथ सामान्य सम्बन्ध चिरस्थाई न रख सका और वह ईर्ष्या द्वेष में पड़ गया। वास्तविक कारण यह हुआ कि गुरूदेव जी ने बहुत विशाल आयोजन से खालसा पंथ की सृजना कर डाली और पर्वतीय नरेशों को भी सुझाव दिया कि वे भी अमृत धारण करके खालसा पंथ में सम्मिलित हो जाएं और कर्मकाण्ड त्याग कर निराकार उपासना में जुट जाएं किन्तु कोई भी पर्वतीय नरेश जाति अभिमान का त्याग करने को तैयार न हुआ। इस प्रकार फिर से आपसी दूरियां बढ़ती चली गई। राजा अजमेर चन्द गुरूदेव जी की बढ़ती हुई शक्ति को सहन नहीं कर सका। वह बिना कारण भयभीत रहने लगा और गुरूदेव जी को अपना शत्रु मानने लगा। कुछ समय के अंतराल में उसने हिमाचल प्रदेश के सभी पर्वतीय नरेशों की एक विशाल सभा बुलाई जिसमें मुख्य प्रश्न यही रखा गया कि श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को परास्त करके उनसे आनन्दपुर का क्षेत्र किस प्रकार खाली करवाया जाए।

सभी ने पिछले कड़वे अनुभवों को याद करके कहा कि ऐसा करना सम्भव नहीं। जब तक बादशाह औरंगजेब की सहायता प्राप्त नहीं कर ली जाती। किन्तु राजा अजमेर चन्द अभी सम्राट से इस कार्य के लिए सहायता प्राप्त करने का इच्छुक नहीं था क्योंकि एक बार ली गई सहायता के बदले में बहुत बड़ी धनराशि लगान के रूप में देनी पड़ती और युद्ध का समस्त व्यय भी उठाना पड़ता था। अत: कई अन्य विकल्पों पर विचार होता रहा।

सभी विभिन्न रियासतों के नरेशों तथा उनके अधिकारियों ने विभिन्न परामर्श दिये किन्तु कोई भी परामर्श कसौटी पर खरा उतरता दिखाई नहीं दे रहा था क्योंकि बहुत सी चालें अथवा युद्ध कौशल पहले अजमाई जा चुके थे जो बुरी तरह विफल हुए थे। इस गम्भीर वातावरण में राजा अजमेर चन्द की दृष्टि अपने पुराने बुद्धिमान मंत्री देवी चन्द पर पड़ी। अजमेर चन्द ने देवीचन्द से कहा - आप भी कोई अच्छा सा परामर्श

दीजिए। उत्तर में देवी चन्द ने बहुत शान्त भाव से कहा – मेरा विचार आपको भाएगा नहीं, हो सकता है कि आप मेरी उचित सलाह सुनकर रूष्ट हो जाएं। इस बात पर राजा अजमेर चन्द को उत्सुकता हुई कि आखिर देवी चन्द के मन में क्या है ? उसने देवीचन्द पर बहुत दबाव डाला कि वह जो भी कहना चाहता है कह डाले। देवी चन्द ने बहुत विनम्र भाव से क्षमा माँगते हुए कहा – हमें श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी से तुरन्त मैत्री स्थापित करनी चाहिए क्योंकि उनके पूर्वजों के हमारे पूर्वजों पर बहुत बड़ा ऋण है और वह जगद् गुरू, गुरू नानक देव जी के दसवें उत्तराधिकारी हैं। उनसे शत्रुता से कोई लाभ होने वाला नहीं, केवल विनाश होने की सम्भावना बढ़ जाएगी क्योंकि वह समर्थ है आत्म शक्ति के स्वामी हैं। मैं इस विषय में और कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि पहले के युद्ध मेरी बात की पुष्टि करते हैं।

अपने मंत्री देवी चन्द के मुख से गुरूदेव जी की स्तुति सुनकर राजा अजमेर चन्द बौखला गया। उसने देवी चन्द के विपरीत परामर्श को अपना अपमान समझा और आक्रोश में आदेश कि इस नमक हराम को अंधा कर डालो। जल्लाद उसे नगर से दूर एक पहाड़ी पर ले गये। वहाँ उन्होंने दो लोहे की पतली सलाखें (बड़े कील) गर्म किये और देवी चन्द की आँखों में डाल दिये। उस समय देवीचन्द श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के चरणों का ध्यान लगाये भजन में व्यस्त था। जल्लाद अपना कार्य पूर्ण करके लौट गये और देवी चन्द को वहीं छोड़ गये। देवीचन्द समाधिस्थ थे जब वह उत्थान अवस्था में आये तो उन्होंने पाया कि उनके नेत्र बिल्कुल ठीक ठाक हैं और जल्लाद कहीं दिखाई नहीं दिये किन्तु आग और गर्म सलाखें वहीं पड़ी थी। यह आश्चर्यजनक कौतुक देखकर वह विचारने लगे – मुझे अब क्या करना चाहिए ? सर्वप्रथम उन्होंने प्रभु का धन्यवाद किया कि उनकी दृष्टि ज्यों की त्यों बनी हुई थी। फिर निर्णय लिया कि मुझे श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में माना चाहिए और वह आनन्दपुर नगर के लिए चल दिये। लम्बी पैदल यात्रा के पश्चात् जब वह गुरू दरबार में पहुँचे तो वहाँ गुरुदेव जी नहीं थे। संगत भी गुरूदेव जी की प्रतीक्षा कर रही थी किन्तु गुरूदेव जी अपने महलों में विश्राम कर रहे थे। किसी को आज्ञा नहीं थी उनसे मिलने की। केवल इतना ही बताया गया था कि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इस पर देवीचन्द जी साहस बटोर कर गुरूदेव जी के महलों में पहुँचे। संतरी ने उनको बाहर ही रोक दिया किन्तु गुरुदेव जी ने उन्हें बुला लिया। अन्दर जाकर देवीचन्द ने गुरूदेव जी के चरणों में दण्ड्वत प्रणाम किया और कुशलक्षेम पूछने लगा ज्यों ही उन का ध्यान गुरूदेव जी के दोनों चरणों पर गया जिन पर पट्टियाँ बंधी हुई थी। वह आश्चर्य से पूछने लगा – गुरूदेव जी ! आपके चरणों को क्या हो गया है जो पट्टियाँ बंधी हुई हैं ? गुरूदेव जी प्रश्न सुनकर मुस्कुरा दिये और कहने लगे स्वयँ ही घाव देते हो और स्वयँ ही प्रश्न करते हो कि क्या हो गया है! इस पर देवीचन्द ने विस्मय भरी दृष्टि से गुरूदेव जी को देखने लगा और कहने लगा कैसे घाव? मैं ऐसा कभी कर सकता हूँ ? गुरूदेव जी ने रहस्य का समाधान करते हुए बताया। जब आप हमारे चरणों का ध्यान करके चिन्तन मनन में खोए हुए थे तो उस समय जल्लादों ने गर्म सलाखें तुम्हारी आँखों में डाल दी थी जो आपको नहीं हमें चुभी क्योंकि आपने अपने नेत्रों में हमारे चरणों को बसा रखा था। हमें तो अपने बिरद की लाज रखनी थी। अत: वह घाव हमारे चरणों में हो गये। प्रत्यक्ष सलाखों द्वारा जले हुए घाव देखकर समस्त संगत भी चकित हुई। देवीचन्द तो विराग में रूधन करने लगा। गुरूदेव जी ने उसे सांत्वना दी और कहा – यह सब तुम्हारी श्रद्धाभक्ति का ही प्रताप है कि प्रभु ने स्वयँ तुम्हारे नेत्रों की रक्षा की है और उसे उठाकर गले से लगा लिया।

दादी मां नानकी जी का निधन

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के गृह में नाहन के पांवटा क्षेत्र से आनंदपुर लौटने के लगभग चार वर्ष पश्चात् एक और सपुत्र ने जन्म लिया जिस का नाम उन्होंने जूजाहर सिंघ रखा। फिर इसी प्रकार समय के अंतकाल में आप के यहां क्रमश: दो अन्य पुत्रों ने जन्म लिया जिन का नाम जोरावर सिंघ तथा फतेह सिंघ रखा। आप की दादी मां नानकी जी इन पड़पोतों को लोरियां देकर खूब खिलाते रहे। इस प्रकार उन्होंने अपने मन की मंशा पूर्ण की। अब आप बहुत वृद्धा अवस्था में पहुंच गई थी। अत: आपने उचित समय देखकर एक दिन शरीर त्याग दिया। गुरुदेव जी ने अपनी दादी मां नानकी जी की अंत्येष्टि बहुत सम्मानपूर्वक विधि से सम्पन कर दी।

देवी प्रकट करने की विडम्बना

इस घटना के कुछ वर्षो पश्चात् गुरू गोबिन्द सिंह जी ने एक विशाल जनसभा का आयोजन किया, इसमें पर्वतीय नरेशों, विद्वानों तथा पण्डितों को आमन्त्रित किया तथा घोषणा की कि गुरू पिता जी की आहुति के उपरान्त भी औरंगज़ेब की नीतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। वह अब भी उसी प्रकार जनता पर अत्याचार कर रहा है। अत: उस अत्याचारी के साथ बातचीत का कोई लाभ नहीं। वह शान्ति की बातों से मानने वाला नहीं। इसलिए उस से लोहा लेना जरूरी है। अब आप लोग कोई नया उपाय सोचें। सभी विद्वानों ने तब एक मत होकर कहा कि सम्राट से लोहा लेना कोई सरल कार्य नहीं है। इस के लिए दैवीय शक्ति की आवश्यकता है। उसे उत्पन्न किया जाए, यह कार्य तभी सम्भव होगा। इस विचार को सुनकर गुरू गोबिन्द सिंघ जी कहने लगे मैं तो आत्मबल को ही वास्तविक शक्ति मानता हूँ। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल एकता की अति आवश्यकता है। जिसके लिए आप लोगों को यहाँ बुलाया गया है। किन्तु आत्मविश्वास विहीन पण्डित इस तर्क को मानने को तैयार नहीं हुए। उन की मान्यता थी कि दैवीय शक्ति के बिना युद्ध को कभी भी जीता नहीं जा सकता। अत: दैवीय शक्ति की प्राप्ति के लिए हवन तथा यज्ञ करना चाहिए। जिस की कृपा से युद्ध में विजय निश्चित ही होगी। इस बात की प्रतिक्रिया में गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने कहा कि कर्म–काण्डों में विश्वास नहीं करना चाहिए। इस चक्रव्यूह में समय, धन इत्यादि व्यर्थ में नष्ट करने होंगे, जब कि प्राप्ति की सम्भावना में शंका के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। किन्तु पण्डित लोग अपनी हठधर्मी पर अड़े रहे। इस पर गुरू गोबिन्द राय जी ने कहा कि अब तो लक्ष्य सभी को विश्वास में लेकर

कार्य करने का है। अत: हवन करने की अनुमति एक शर्त पर है कि आप दैवीय शक्ति प्रकट कर दिखाइए। फिर क्या था, आनन्दपुर सहाब के निकट एक छोटी सी पहाड़ी पर हवन कुण्ड का निर्माण किया गया और वहाँ पर लगभग छ: महीने हवन होता रहा परन्तु कोई दैवीय शक्ति प्रकट न हुई। गुरूदेव जी गोबिन्द राय जी के बार बार पूछने पर भी मुख्य पण्डित केशव दास जी कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सके और उसने कहा दैवीय शक्ति बली माँगती है। जो आप का परम स्नेही हो, उस की बली दें। पण्डितों का संकेत गुरूदेव जी के बेटों की ओर था। वे सोच रहे थे गुरूदेव जी अपने बेटों का तो बलिदान देंगे नहीं, अत: इसी बहाने दैवीय शक्ति प्रकट करने के चक्कर से छुटकारा पा लेंगे। किन्तु गुरूदेव जी ने उस समय पण्डित केशवदास जी को अपना परम स्नेही बताते हुए शक्ति प्रकट करने हेतु बली पर चढ़ जाने की बात कह दी। ऐसा सुनते ही पण्डित जी लघु शंका का बहाना बनाकर वहाँ से भाग खड़े हुए और दूसरे पण्डित भी धीरे धीरे वहाँ से खिसक गये। हवनकुण्ड के पास जब कोई न रहा तो गुरूदेव जी ने जोश में आकर हवन सामग्री को हवनकुण्ड में एक साथ ही फैंक दिया जिससे दूर दूर तक आग की लपटें दिखाई देने लगी। गुरूदेव जी भी हाथ से नंगी तलवार लिए उस पहाड़ी से नीचे उतर आये, तब नीचे खड़े सिक्खों ने गुरूदेव जी से प्रश्न किया कि क्या दैवीय शक्ति प्रकट हुई। इस पर गुरूदेव जी ने कहा - यह देखो मेरे हाथ में ही दैवीय शक्ति है। इस तलवार को ही मैं रण चण्डी का नाम देता हूँ। यह वह महाशक्ति है जो दुष्टों का नाश करती है। गुरूदेव जी ने उसी दिन से अपने सिक्ख (शिष्यों) को युद्ध के लिए तत्पर रहने का आदेश दे दिया।

गुरूदेव जी का मुख्य लक्ष्य

गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने अनुभव किया कि सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरू नानक देव जी ने समस्त मानव समाज के उत्थान के लिए जो प्रयास किये उनमें सबसे पहले यह नारा बुलंद किया, 'न कोई हिन्दु न कोई मुसलमान' जिसका तात्पर्य था कि समस्त मानव जाति एक पिता परमेश्वर की सन्तान है अर्थात 'एक पिता एकस के हम बारिक' गुरूदेव जी ने तब यह अनुभव किया था कि जन साधारण के दुखों का मूल कारण अज्ञानता, प्राधीनता, आर्थिक विषमता तथा जाति पाति पर आधारित वर्गीकरण इत्यादि है। अत: उन्होंने इन सामाजिक बुराईयों से जूझने तथा एक आदर्श समाज की स्थापना करने के लिए जीवन पद्धति में मूलभूत परिवर्तन अनिवार्य समझते हुए एक सबल, स्वतन्त्र अथवा स्वावलम्बी व्यक्तित्त्व के मानव की परिकल्पना की थी, जो कि सदैव निस्वार्थ भाव से परहित में कार्यरत रहें। ऐसे सम्पूर्ण समर्पित एवँ निष्ठावान व्यक्तियों के योगदान से जटिल एवं जोखिम भरी समस्याओं के समाधान हेतु, उन्होंने उस समय के क्रूर शासकों, समाज के संकीर्ण विचारधारा वाले स्वार्थी तथा कुटिल प्रवृत्ति के लोगों से लोहा लेने की ठान ली थी। गुरूदेव जी ने विचार किया था कि सत्ताधारी को धर्मी पुरूष होना चाहिए अथवा सत्ता को धर्मी पुरूषों के हाथों में सौंपा जाना चाहिए अन्यथा आदर्श समाज की कल्पना व्यर्थ है। उन्होंने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संत-सिपाही अथवा राज योग (मीरी -पीरी) की नई आदर्श प्रणाली का सूत्रपात किया। जिस से शोषित वर्ग को उनके 'मूल मानव' अधिकार दिलवाएं जा सके तथा समाज में किसी व्यक्ति के साथ भी रंग-नस्ल, धर्म, जाति, भाषा, लिंग अमीरी-गरीबी और मालिक - नौकर के आधार पर कोई भेदभाव न किया जा सके। समाज के सभी वर्गो को प्रत्येक दृष्टि से समानता दिलवाना तथा मानव समाज को एक सूत्र में बाँधना गुरूदेव जी का मुख्य लक्ष्य था, जिस से एक नये वर्ग विहीन समाज की उत्पत्ति हो सके अर्थात समस्त प्राणी मात्र का कल्याण हो सके। गुरूदेव जी के शब्दों में, 'सरबत दा भला' तात्पर्य यह है कि उज्जवल आचरण वाले (विकार रहित) मनुष्य जो सदैव समाज कल्याण के लिए कार्यरत रहें ताकि समाज को नई दिशा दी जा सके। इस को साकार रूप देने के लिए उन्होंने क्रान्तिकारी आदेश जारी किये थे -

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिरू धरि तली गली मेरी आउ।
इतु मारगि पैरु धरीजै।
सिरु दीजै काणि ना कीजै। *(गुरू नानक देव जी, राग प्रभाती, पृष्ठ 1412)*

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपना त्रि-सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया अर्थात किरत करो, वंड छको(बांट कर खाओ), नाम जपो। ऐसे न्यारे मनुष्य की रूप देखा स्वयँ गुरू नानक देव जी ने तैयार की थी और अपने उत्तराधिकारियों को दिशा निर्देश भी दिये थे कि वे इस कार्य को आगे बढ़ाने का अभियान जारी रखें, जिस को उनके आठ उत्तराधिकारी आगे बढ़ाते चले आ रहे हैं और मुझे भी इस आदेश को साकार रूप देकर खालसा पंथ का सृजन करनी चाहिए। जिसका प्रारूप तैयार करने में हम समस्त गुरू साहिबान को लगभग 200 वर्ष लग चुके हैं।

अन्त में गुरूदेव जी ने प्रथम गुरूदेव जी की इस परिकल्पना को सम्पूर्ण करने के लिए लम्बी तैयारी के पश्चात् एक योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाया और उसको क्रियान्वित करने के लिए पहली बैशाखी सन् 1699 का दिन निश्चित किया।

खालसा पंथ का सृजना

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को अन्याय का सामना करने के लिए शक्ति की आवश्यकता थी। वे भक्ति और अध्यात्मवाद की यह गुरू-परम्परा को शक्ति और शौर्य का बाना पहन कर, उसे विश्व के समक्ष लाने की रूपरेखा तैयार कर रहे थे। वैसे तो गुरू अमरदास जी के समय से ही सिक्ख वैसाखी के दिन जोड़-मेले (समारोह) करते थे परन्तु सन् 1699 की बैसाखी के समय गुरूदेव जी ने एक विशेष समरोह का आयोजन किया। सिक्खों को भारी संख्या में आनन्दपुर साहब पहुँचने के लिए निमन्त्रण पहले से ही भेज दिये गये थे और साथ ही उन्हें शस्त्रबद्ध होकर

आने को कहा गया। संदेश पाते ही देश के विभिन्न भागों से सिक्ख गुरूदेव जी के दर्शनों के लिए काफिले बनाकर बड़ी संख्या में उपस्थित हुए।

पहली बैशाखी को गुरूदेव जी ने एक विशेष स्थल में मुख्य समारोह का प्रारम्भ प्रात:काल आसा की वार कीर्तन से किया। गुरू शब्द, गुरू उपदेशों पर विचार हुआ। दीवान की समाप्ति के समय गुरूदेव जी मंच पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए पधारे और उन्होंने वीर रस में प्रवचन करते हुए कहा – मुगलों के अत्याचार निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। हमारी बहू-बेटियों की इज्जत भी सुरक्षित नहीं रही। अत: हमें अकाल पुरूष की आज्ञा हुई है कि अत्याचार-पीड़ित धर्म की रक्षा हेतु ऐसे वीर योद्धाओं की आवश्यकता है जो अपने प्राणों की आहुति देकर दुष्टों का दमन करना चाहते हैं वह अपना शीश मेरी इस रणचण्डी (तलवार) को भेंट में दे। तभी उन्होंने अपनी म्यान में से कृपाण (श्री साहब) निकाली और ललकारते हुए सिंह गर्जना में कहा – है कोई मेरा प्यारा शिष्य जो आज मेरी इस रणचण्डी (भवानी) की प्यास अपने रक्त से बुझा सके? इस प्रश्न को सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। परन्तु गुरूदेव जी के दोबारा चुनौती देने पर एक निष्ठावान व्यक्ति हाथ जोड़कर उठा और बोला – मैं हाजिर हूँ, गुरूदेव जी ! यह लाहौर निवासी दयाराम था। कहने लगा – मेरी अवज्ञा क्षमा कर दें, मैंने देर कर दी। मेरा सिर आप की अमानत ही है, मैं आपको यह सिर भेंट में देकर अपना जन्म सफल करना चाहता हूँ, कृपया इस को स्वीकार करें। गुरूदेव जी ने उस को बाजू से पकड़ा तथा खींचकर एक विशेष तम्बू में ले गये। कुछ क्षणों में ही वहाँ से वही खून से सनी हुई तलवार लिए हुए गुरूदेव जी लौट आए तथा पुन: अपने शिष्यों को ललकारा – यह एक नये प्रकार का दृश्य था, जो सिक्ख संगत को प्रथम बार दृष्टिगोचर हुआ। अत: समस्त सभा में भय की लहर दौड़ गई। वे लोग जो गुरूदेव जी की कला से परिचित नहीं थे। विश्वास-अविश्वास की मन ही मन लड़ाई लड़ने लगे। इस प्रकार वे दुविधा में श्रद्धा भक्ति खो बैठे। इन में से कई तो केवल मसंद प्रवृत्ति के थे, जो जल्दी ही मानसिक सन्तुलन भी खो बैठे और लगे कानाफूसी करने कि पता नहीं आज गुरूदेव जी को क्या हो गया है ? सिक्खों की ही हत्या करने लगे हैं। इन में से कुछ एकत्र होकर माता गुजरी के पास शिकायत करने जा पहुँचे और कहने लगे पता नहीं गुरूदेव जी को क्या हो गया है! वह अपने सिक्खों को ही मौत के घाट उतार रहे हैं। यदि इसी प्रकार चलता रहा तो सिक्खी- समाप्त होते देर नहीं लगेगी। यह सुनकर माता जी ने उन्हें सांत्वना दी और अपनी छोटी बहू साहब दैवीय को गुरूदेव जी के दरबार की सुध लेने भेजा। साहब दैवीय जी ने घर से चलते समय भेंट में बताशे पल्लू में बांध लिये और दर्शनों के लिए चल पड़ी।

उधर दूसरी बार ललकारने पर श्रद्धावान सिक्खों में से दिल्ली निवासी धर्मदास (जाट) उठा। गुरूदेव जी उसे भी उसी प्रकार खींच कर तम्बू में ले गये और फिर जल्दी ही खून से सनी तलवार लेकर मंच पर आ गये और वही प्रश्न फिर दोहराया कि मुझे एक सिर की और आवश्यकता है। इस बार भाई मुहकमचन्द (छींबा) गुजरात द्वारका निवासी उठा और उसने स्वयँ को गुरूदेव जी के समक्ष प्रस्तुत किया और कहा – गुरूदेव! मेरा सिर हाज़िर है। गुरूदेव जी ने उसे भी तुरन्त पकड़ा और खींच कर तम्बू में ले गये। कुछ क्षणों पश्चात् फिर लौटकर मंच पर आ गये पुन: वही प्रश्न दोहराया कि मुझे एक सिर की और आवश्यकता है। इस बार खून से सनी श्री साहब देखकर बहुतों के दिल दहल गये किन्तु उसी पल भई हिम्मत लांगरी निवासी जगन्नाथपुरी उड़ीसा उठा और कहने लगा कि गुरूदेव जी मेरा सिर हाज़िर है। ठीक इसी प्रकार गुरूदेव जी पाँचवी बार मंच पर आये और वही प्रश्न संगत के सामने रखा कि मुझे एक सिर और चाहिए, इस बार बिदर-करनाट का निवासी साहब चन्द (नाई) उठा और उसने विनती की कि मेरा सिर स्वीकार करें। उसे भी गुरूदेव जी उसी प्रकार खींचकर तम्बू में ले गये। अब गुरूदेव जी के पास पाँच निर्भीक आत्म बलिदानी सिक्ख थे जो कि कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। बलि चढ़ाने का प्रदर्शन गुरूदेव जी का बहुत सफल रहा। इस कौतुक के तद्पश्चात इन पाँचों को एक जैसे नीले वस्त्र, केसरी दास्तार कछहरे और लघु कृपाण पहनने को दिये और उन्होंने स्वयँ भी इसी प्रकार का बाणा (परिधान) पहना। तब इन पाँचों मृतजीविओं को अपने साथ पण्डाल में लेकर आये। उस समय इन पाँचों को आकर्षक तथा सुन्दर स्वरूप में देखकर संगत आश्चर्य में पड़ गई क्योंकि इनके चेहरे से विजयी होने का नूर झलक रहा था। तभी गुरूदेव जी ने भाई चउपति राये को आदेश दिया कि वह चरणामृत वाले मटके को पानी सहित सतलुज में प्रवाहित कर दे और उसके स्थान पर सरब लोह के बाटे (बड़ा लोह पात्र) में स्वच्छ जल भर कर लाएं। ऐसा ही किया गया। गुरूदेव जी ने इस लोह पात्र को पत्थर की कुटनी पर स्थिर करके उसमें खण्डा (दोधारी तलवार) बीर आसन में बैठकर घुमाना प्रारम्भ कर दिया तभी आप की सुपत्नी साहब देवी दर्शनों को उपस्थिति हुई। उन्होंने बताशे भेंट किये जिसे गुरूदेव जी ने उसी समय लोहपात्र के जल में मिला दिये और गुरूबाणी उच्चारण करते हुए खण्डा चलाने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने जपुजी साहिब का पाठ किया तद्पश्चात जापु साहिब, सवैया, चौपई तथा आनन्द साहिब का क्रमश: पाठ किया, समाप्ति पर अरदास की और जयकार के पश्चात 'खण्डे का अमृत' वितरण करने की मार्यादा प्रारम्भ की। सर्वप्रथम गुरूदेव जी ने तैयार अमृत (पाहुल) के छींटे उनकी आँखों, केशों और शरीर पर मारते हुए आज्ञा दी कि वे सभी बारी बारी बाटे (लोह पात्र) में से अमृत पान करें (पीयें) यही क्रिया पुन: वापस दुहराई अर्थात उसी बर्तन से दो बार अमृत पान करने को कहा जिससे ऊँच नीच का भ्रम सदैव के लिए समाप्त हो जाये और एक भ्रातृत्त्व भावना उत्पन्न हो जाए।

आप जी ने उसी समय पाँचों सिक्खों के नामों के साथ "सिंघ" शब्द लगा दिया जिसका अर्थ है बब्बर शेर। इस प्रकार उनके नये नामकरण किये गये आधा नाम उनको गुरूदेव जी ने दिया और आधा नाम उनके अभिभावकों वाला ही रहने दिया। इन पाँचों परमस्नेही शिष्यों को जिन्होंने गुरूदेव जी के एक संकेत पर अपना सर्वत्र न्योछावर कर दिया था। पाँच प्यारों की उपाधि से सम्मानित किया और उनको विशेष उपदेश दिया –

आज से तुम्हारा पहला जन्म, जाति, कुल, धर्म सभी समाप्त हो गये हैं। आज से आप सभी गुरू वाले हो गये हैं। अत: आज से तुम मेरे जन्मे पुत्र हो, तुम्हारी माता साहब कौर, निवासी केशगढ़, आनन्दपुर साहब हैं और तुम्हारी जाति खालसा है क्योंकि सिहों की केवल एक ही जाति होती है। अब आप लोगों की वेश-भूषा पाँच ककारी वर्दी होगी – केश, कंघा, कड़ा, कछहरा तथा कृपाण। आप नित्यकर्म में अमृतबेला

में जागकर वाहे गुरू के संग सुरति जोड़कर नाम-वाणी का अभ्यास अवश्य ही करोगे। उपजीविका के लिए धर्म की किरत करोगे और अर्जित धन बांट कर सेवन करोगे। इसके अतिरिक्त चार शपथ (रहित) दिलवाई

चारसूत्री कार्यक्रम

1. केशों का अपमान न करना।
2. कुटठा न खाना (वह मांस है जो मुसलमानी तरीके से तैयार किया गया हो)
3. परस्त्री या परपुरूष का गमन (भोगना) न करना।
4. तम्बाकू का सेवन न करना।

गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया कि इन चार कुरीतियों में से एक के भी भंग होने पर व्यक्ति पतित समझा जाएगा और वह निष्कासित माना जाएगा। यदि वह पुन: सिक्खी में प्रवेश करना चाहता है तो उसे पाँच प्यारों के समक्ष उपस्थित होकर दण्ड लगवाकर पुन: अमृत धारण करना होगा। गुरूदेव जी ने ने उन्हें समझाते हुए कहा - आप पाँच परमेश्वर रूप में उनके गुरू हैं, इसलिए वे भी अब उनके सेवक (शिष्य) हैं। उन पाँचों ने तब कहा - ठीक है ! परन्तु गुरू दक्षिणा में उन्होंने अपने सिर भेंट में दिये हैं। अब वे क्या देंगे ? इस पर गोबिन्द राय जी ने कहा - आप की मांग उचित है। वे दान तो दे नहीं सकते क्योंकि अमृत अमूल्य निधि है परन्तु भेंट दे सकता हूँ जो कि अभी उधार करता हूँ। समय आने पर वे भी अपना समस्त परिवार उन लोगों पर गुरू दीक्षा के बदले न्यौ छावर कर देंगे। उन पाँचों ने मिलकर तब गोबिन्द राय जी के लिए भी उसी प्रणाली द्वारा अमृत तैयार किया और उनको भी अमृतपान कराया तथा उन का नामकरण पुन: किया जिस से उनका नाम भी बदल कर गोबिन्द राय से गोबिन्द सिंघ कर दिया गया। तद्पश्चात् गुरूदेव जी के बाकी शिष्यों ने भी गुरू दीक्षा लेने के लिए प्रार्थना की तथा इस नई विधि अनुसार अमृत धारण किया। जिस से उनकी पहली कुल, वर्ण जाति तथा नाम आदि को परिवर्तित कर नए नामकरण किये गये।

जगत गुरू नानक देव जी की सुनियोजित प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उच्च मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में समस्त गुरू साहबान का समान योगदान रहा। जब दसवें गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने खालसा पंथ को सम्पूर्ण किया जो उन्होंने उसे न्यारा तथा अनादि बनाने के लिए कुछ विशेष आदेश दिये, जिस से खालसा पंथ का स्वरूप कभी भी परिवर्तित न हो - 'पूजा अकाल की, परचा शब्द का एवं दीदार खालसा का' अर्थात एक परमपिता परमेश्वर की पूजा - मार्गदर्शन गुरू ग्रंथ साहब की वाणी का - दर्शन दीदार साध संगत के।

खालसा अकाल पुरख की फौज।
प्रगटियो खालसा परमातम की मौज।

ये थे वे सबसे पहले पाँच सिक्ख जिन्होंने सिर भेंट करके सिद्ध कर दिया था कि वे सम्पूर्ण पुरुष बनने के अधिकारी हैं क्योंकि जो व्यक्ति अपने चुने हुए आदर्श के लिए बलिदान देने का साहस नहीं रखता, वह भले ही कितना ही पढ़ा लिखा हो, कितना ही ज्ञानी-तपस्वी को, अथवा दानी क्यों न हो, पूर्ण व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। वह व्यक्ति अभी कच्चा है और खोखला है। उसका ज्ञान-ध्यान केवल दिखावा अथवा मन-बहलावा कहा जा सकता है। जो अपने सिद्धान्तों के लिए अन्तिम कदम उठाने से घबराता है, उसके सिद्धान्त, केवल अवसरवादी नीति तक ही सीमित रह सकते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए उस धार्मिक जत्थे-बन्दी में कोई स्थान नहीं जो गुरू गोबिन्द सिंघ ने बैशाखी वाले दिन 13 अप्रैल, 1699 को व्यक्तियों की परख करके प्रारम्भ की।

यह जत्थे-बंदी एक बिल्कुल नई धार्मिक जमात का बीजारोपण था, हिन्दू और मुसलमानों से पृथक किन्तु दोनों के मध्य एक पुल की भांति क्योंकि इसमें सम्मिलित होने के लिए हिन्दू हो अथवा मुसलमान, कोई शर्त नहीं थी। कोई भी व्यक्ति जाति-पाति, ऊँच-नीच या अमीरी-गरीबी के अन्तर के बिना इस नई जत्थे-बन्दी में शामिल हो सकता था। केवल शर्त थी ऊँचे और सच्चे जीवन के कुछ सिद्धान्तों पर विश्वास रखने की और उन सिद्धान्तों के लिए मर-मिटने की, वरना गुरू साहब के पहले पाँच प्यारों में से तीन पूर्णत: गरीब और लताड़ी हुई जातियों के व्यक्ति थे जो हिन्दू धर्म के अनुसार निम्न जातियाँ समझी जाती हैं।

इस मार्ग पर चलने वालों के सामने पूजा और नमाज़, मस्जिद या मन्दिर, राम या रहीम, हिन्दू अथवा मुसलमान में कोई अन्तर नहीं था। गुरू साहिब ने एक नया नारा दिया -

'हिन्दू कोउ तुरक कोउ राफज़ी इमाम साफ़ी।
मानस की जात सभै एकै पहिचानबो।
देहुरा मसीत सोइ पूजा औ निमाज़ ओही।
मानस सभै इक पै अनेक को भरमाउ है।'

यह रास्ता पकड़ने के लिए किसी को मजबूर नहीं किया गया। कोई भी अपनी इच्छानुसार इसे चुन सकता था जिसमें खण्डे की धार पर चलने की हिम्मत हो।

कहा गया है कि जिसे मरना नहीं आता, उसे जीना क्या आएगा यह नया मार्ग, धर्म, न्याय, मानवता, मानवीय बराबरी, सम्मान और हर प्रकार की स्वतन्त्रता के लिए मिटने वालों का था।

यहाँ यह बात भी बतानी आवश्यक है कि गुरू साहिब ने हिन्दुओं और मुसलमानों से पृथक एक तीसरा पंथ तो चलाया, पर इस कारण नहीं कि उन्हें एक नया धर्म चलाकर स्वयँ को परमेश्वर का दर्जा दे अपनी पूजा कराने का चाव था जैसे बहुत सारे प्राचीन पैगम्बर अथवा देवता करते आए हैं। उन्होंने सिक्खों की स्पष्ट कह दिया -

'मैं हो परमपुरख को दासा।
देखन आयो जगत तमाशा।
जो हमको परमेसर उचरै है।
ते सब नरक कुँड महिं परहें।'

यह स्पष्ट कहना इसलिए भी आवश्यक था कि भारत में प्रत्येक महापुरूष को परमेश्वर कह कर उसकी ही पूजा करने लग पड़ना एक प्राचीन बीमारी है और इसी कारण पूजा-योग्य देवताओं की संख्या भी इतनी ही पहुँच गई है, जितनी की पुजारियों की। गुरूदेव जी का एकमात्र उद्देश्य एक नया जीवन मार्ग दर्शाना था ना कि अपनी पूजा करवानी। उनकी आज्ञानुसार पूजा केवल एक अकाल पुरूष की ही हो सकती है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं।

आपे गुरू चेला

विश्वास और श्रद्धा की परीक्षा तो हो गई। किन्तु अभी विश्वास वालों पर धर्म की मोहर लगानी बाकी थी। प्राचीन शिष्यों में नवजीवन फूंकने के लिए चोला बदल कर न्यारापन देने की अति आवश्यकता थी। सदियों पुराने संस्कारों को त्यागने के लिए जीवन के नये मूल्यों, नये मार्गो और नये दृष्टिकोण दर्शा कर, खालसा अथवा पूर्ण मानव बनने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों के मस्तिष्क अथवा हृदय पर कुछ ऐसे कड़े परन्तु व्यवहारिक नियम निर्धारित करने की आवश्यकता थी क्योंकि वे फिर फिसल कर पुराने मार्गो पर न चल पड़ें। नये आदर्शो को ठोस चिन्हों में ढालकर सामान्य व्यक्तियों के समक्ष प्रस्तुत करना था, जिससे वह उन आदर्शों के भाव को सहजता के साथ समझ लें तथा प्रत्येक क्षण याद रखें।

किसी नये सजे मनुष्य को अपनी सुधरी दशा का अहसास कराने के लिए, उसमें स्वाभिमान और एक समूची जमात के सांझापन की नींव रखने के लिए, बाह्य रूप और विचारों की एकता आवश्यक थी। गुरू जी भी जब नीचों को आसमान पर चढ़ाने लगे, गीदड़ों को शेर बनाने लगे तब उन्होंने भी इन सर्व-सम्मत साधनों का ही उपयोग किया।

वे साधन क्या थे ? वह नया रूप क्या था ? वह साधन था अमृत छकाने का और नया रूप था स्वयँ गुरू गोबिन्द सिंघ का अपना। उन्होंने अपनी समस्त मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ नवीन व्यक्ति में भर दीं जिससे गुरू-चेले का अन्तर ही समाप्त हो गया। गुरूदेव जी ने अपने शब्दों में इस भाव को इस प्रकार प्रकट किया है -

आतम रस जिह जानही, सो है खालसा देव।
मो मैं प्रभ मैं, तास मैं, रचक नाही भेव।

यह एक ऐसी आशीष थी कि समयानुसार हर सिक्ख गुरू गोबिन्द सिंघ बन गया। गुरूदेव जी ने नया मनुष्य सजाकर उसे कहा - 'जा, तू भी वैसा ही संत-योद्धा, कर्म-योगी, बहादुर, चौड़ी छाती वाला, सरू कद, निडर, दुखियों का दर्द-मन्द, ज़ालिमों का दुश्मन, स्वतन्त्रता का पुजारी, स्वतंत्र दिल-दिमाग वाला, पाखंडों को उघाड़ने वाला, कृति-कर्म में विश्वास रखने वाला, बाँट कर खाने वाला, गरीबों का मित्र, मूर्ति पूजा पर विश्वास न रखने वाला, सर्व सँसार का भला चाहने वाला, केवल एक अकाल पुरख के अतिरिक्त और किसी पर भरोसा न रखने वाला, सदैव उन्नतिशील प्रगति की ओर अग्रसर, सँसार में रहता हुआ सँसार से विमुख, बेलाग हो जा, जैसा गुरू गोबिन्द सिंघ।

हुआ भी ऐसा ही। गुरू गोबिन्द सिंघ की आशीष लेने उस बैशाखी वाले दिन, समूह में कम से कम बीस हजार व्यक्ति उठ खड़े हुए। कुछ असमंजस में पड़े रहे। कई उठकर चले गये क्योंकि इस नये धर्म के आदर्श क्रान्तिकारी थे और उन लोगों में अभी पुराने रीति-रिवाज छोड़ने की हिम्मत नहीं थी।

लोग यह देखकर हैरान रह गये कि गुरू चेलों से अमृत का प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। दुनियां के इतिहास में कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिसमें किसी गुरू अथवा पीर-पैगम्बर ने अपने मतावलम्बियों को अपने बराबर या अपने से ऊँचा दर्जा दिया हो। यह रूहानी जम्हूरियत की एक अनोखी मिसाल पेश हो रही थी। इसीलिए तो कहा गया है कि "वाह-वाह गुरू गोबिन्द सिंघ आपे गुरू चेला"।

चेले तो सदा ही से गुरू की प्रशंसा करते आए हैं, पर यह गुरू गोबिन्द सिंघ है जिसने चेलों को यह बड़प्पन दिया और लिखा -

'युद्ध जिते इनही के प्रसादि, इनही के प्रसादि सु दान करे।
अग उघ टरे इनही के प्रसादि, इनही के कृपा फुन धाम भरे।
इनही के प्रसादि सुविद्या लई, इनही की कृपा सभ शत्रु मरे।
इनही की कृपा के सजे हम हैं, नहि मो से ग़रीब करोर परे।

यह अद्वितीय प्रजातंत्र, यह ग़रीब निवाज़ी और यह अथाह नम्रता – 'नहिं मोसे ग़रीब करोर परे' – शायद ही दुनिया में किसी के हिस्से इस हद तक आई हो, जितनी कि गुरू गोबिन्द सिंघ के। परन्तु ध्यान रहे – पाँच प्यारों को जीवन और मृत्यु की कड़ी परीक्षा लेकर चयन किया गया था, मत पत्र डाल कर चुनाव नहीं।

गुरू साहिब की ओर से चेलों द्वारा अमृत पीने की माँग सुनकर सिक्ख संगतों को हैरानी तो होनी ही थी चेले भी घबरा गये। कहने लगे – 'सच्चे पातशाह, यह पाप हमसे न करवायें। आप ही तो अमृत के देने वाले हैं। हम बेचारों की क्या हैसियत कि आपके सामने गुस्ताखी करें और आपको आपकी दात में से अमृत छकायें। गुरू गुरू है, चेला आखिर चेला। हम आपकी बराबरी भला कैसे कर सकते हैं? फिर बराबरी ही नहीं, आप तो हमसे दात माँगकर हमें अपने से भी ऊँचा दर्जा दे रहे हैं, नहीं जी, यह पाप हमसे नहीं होगा। आप हमारी दीन – दुनियां के मालिक हैं। हमने अपना लोक – परलोक सुधारने की डोर आपके हाथ पकड़ाई है। आपको भला अमृत किस प्रकार छका सकते हैं ?'

यह सुनकर गुरू जी ने बहुत ही धैर्य और सुरूर में आकर कहा, 'आज से मैं एक नये पंथ की नींव रखता रहा हूँ, जिसमें न कोई छोटा है न बड़ा, न नीच है न ऊँच, सभी बराबर होंगे। इस बात को सिद्ध करने के लिए आप लोगों से मैं स्वयँ अमृतपान करूँगा। इस सामाजिक बराबरी का आरम्भ स्वयँ मुझ ही से होगा।'

अब गुरू के पाँच प्यारों के पास इन्कार करने का कोई बहाना न था। उन्होंने गुरू जी को भी उसी प्रकार अमृत छकाया, जिस प्रकार स्वयँ छका था। यह दृश्य देखकर सारे वातावरण में जोश और खुशी की बाढ़ सी आ गई। वातावरण सत्य श्री अकाल के जयकारों से गूँज उठा – संगतें झूम उठीं। 'धन्य गुरू गोबिन्द सिंघ आपे गुरू चेला'।

अमृत संचार दो हफ्ते जारी रही और अमृत छकने वालों की संख्या बीस हजार से अस्सी हजार हो गई। अमृतपान करने वालों की काया पलट गई। वे सिक्खों से सिंघ बन गए। इसलिए आज्ञा हुई कि आज से हर एक सिख अपने नाम के साथ सिंघ शब्द जोड़ा करेगा। इसी आदेश के अनुसार गोबिन्द राय जी का नाम भी परिवर्तित करके गुरू गोबिन्द सिंघ कर दिया गया।

अमृत देवताओं का भोजन है। इसलिए जिस व्यक्ति ने भी इसे छका, इन्सान न रहा, भट्टी में तपे हुए कंचन की भान्ति खालिस अथवा शुद्ध हो गया। गुरू गोबिन्द सिंघ ने अपने पाँच प्यारों को खालसा की उपाधि दी और गुरू नानक का सिक्ख खालसा पंथ का सदस्य बन गया।

इसके पश्चात् गुरूदेव जी ने इन शब्दों के साथ खालसे को सम्बोधित किया – 'आज से आप अपने आपको जाति – पाति से मुक्त मानो। आप लोगों को हिन्दुओं अथवा मुसलमानों किसी का भी तौर तरीका नहीं अपनाना, किसी वहम अथवा भ्रम में नहीं पड़ना। केवल एकमात्र अकाल पुरूख में भरोसा रखना है, जो सभी का रखवाला (पालक) है। वही सृष्टि का कर्त्ता और नाश करने वाला है। आपके इस नये पंथ में छोटे से छोटा व्यक्ति बड़े से बड़े व्यक्ति के बराबर समझा जाएगा और सभी एक दूसरे को भाई समझेंगे। आज से आपके लिए किसी तीर्थ यात्रा का प्रश्न नहीं, न ही किसी तप का, केवल गृहस्थ जीवन को मर्यादित बनाओ और धर्म के लिए शहीद होने को हर समय तैयार रहो। इस नये पंथ में महिलाओं को भी बिल्कुल वही अधिकार प्राप्त हैं जो पुरूषों को। महिलाएँ पुरूषों के बराबर समझी जाएंगी। लड़की को मारने वालों के साथ खालसा सामाजिक व्यवहार नहीं रखेगा। गुरू के प्रति पूरी श्रद्धा के रूप में पुराने ऋषियों मुनियों की भान्ति खालसा केस रखेगा। केसों को स्वच्छ रखने के लिए कंघा रखने की आज्ञा है। परमात्मा के विश्व – व्यापी होने का चिन्ह आपके हाथ में एक लोहे का कड़ा होगा। एक कच्छा होगा आपके संयम की निशानी। सुरक्षा के लिए कृपाण रखने का हुक्म है। तम्बाकू और स्वास्थ्य को खराब करने वाली अन्य नशीली चीजें भी आपके लिए वर्जित हैं। शस्त्रों के साथ आपको प्यार रहेगा। आप अच्छे घुड़सवार, निशानची, नेजा – तलवार के धनी होंगे। शारीरिक शक्ति की उतनी ही कदर होगी, जितनी आत्मिक सूझ – बूझ की। हिन्दू और मुसलमान के मध्य आप एक पुल का काम देंगे। बिना जाति, रंग, वेश और मज़हब का ख्याल किए, आप गरीबों और दुखियों की सेवा करेंगे। मेरा खालसा गरीबों का आश्रय होगा और पंथ में देग और तेग दोनों का प्रचलन होगा। आज से आप सिंह शब्द का उपयोग करेंगे और एक दूसरे से मिलने के समय 'वाह गुरू जी का खालसा वाह गुरू जी की फ़तह' कहकर जयकारा बुलायेंगे।

यह था गुरू गोबिन्द सिंघ का खालसा के लिए हुक्मनामा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रूहानी और भाईचारक प्रजावाद के जो असूल इस हुक्मनामे में दर्ज हैं, वे इतने क्रान्तिकारी और गुरू जी की प्रगतिशील वृत्ति तथा दूरदर्शी सूझ – बूझ के परिचायक हैं कि आजकल के प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में भी कई पश्चिमी देश भी इन्हें अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस तरह सारे सिक्ख एक पक्के रिश्ते में बंध गए जिन का माता, पिता, जन्म स्थान, वासी, स्वरूप, पोशाक, जीवन संस्कार सब एक समान हो गए थे। पहले प्रत्येक सिख अकेला था। अब वह पंथ में समा गया था। उस पंथ में जिस में अमृतपान करके गुरू गोबिन्द सिंघ साहिब स्वयँ समा गए थे। जैसे एक बूंद का कोई महत्त्व नहीं होता, पर बूंद – बूंद हो कर समुद्र बन जाता है और पानी एक महान शक्ति का रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार जब सिख "पंथ" का रूप बन गए तो वह एक महान शक्ति का अंग बन गए। वह शक्ति जिस ने हिन्दुस्तान के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जहाँ पंथ ने धर्म का प्रचार किया, सामाजिक कुरीतियों को दूर किया, वहीं एक खास प्रकार के राज्य प्रबन्ध का नमूना भी पेश किया जो बाबा बंदा सिंघ जी बहादुर की जत्थेदारी में हुआ।

अपनी कृति खालसा पंथ पर गुरू साहिब रीझ उठे। रीझते भी क्यों न, आखिर 230 वर्षों के परिश्रम का परिणाम जो था। प्यार में आ कर आपने खालसा की उपमा इस प्रकार की -

खालसा मेरो रूप है खास। खालसे महि हौं करौं निवास।
खालसा मेरो मुख है अंगा। खालसे के हउं सद सद संगा।
खालसा मेरो इष्ट सुहिरद। खालसा मेरो कहीअत बिरद।
खालसा मेरो पछ अर पादा। खालसा मेरो मुख अहिलादा।
खालसा मेरो मितर सखाई। खालसा मात पिता सुखदाई।
खालसा मेरी सोभा सीला। खालसा बंधु सखा सद डीला।
खालसा मेरी जात अर पत। खालसा सौ मा की उतपत।
खालसा मेरो भवन भंडारा। खालसे कर मेरो सतिकारा।
खालसा मेरो सजन परवारा। खालसा मेरो करत उधारा।
खालसा मेरो पिंड परान। खालसा मेरी जान की जान।
मान महत मेरी खालसा सही। खालसा मेरो सवारथ सही।
खालसा मेरो करे निरवाह। खालसा मेरो देह अर साह।
खालसा मेरो धरम अर करम। खालसा मेरो भेद निज मरम।
खालसा मेरो सतिगुर पूरा। खालसा मेरो सजन सूरा।
खालसा मेरो बुध अर गिआन। खालसे का हउ धरों धिआन।
उपमा खालसे जात न कही। जिहवा ऐक पार नहि लही।
सेस रसन सारद की बुध। तदफ उपमा बरनत सुध।
या मैं रंच न मिथिआ भाखी। पारब्रह्म गुरू नानक साखी?
रोम रोम जे रसना पाऊ। तदप खालसा जस तहि गाउं।
हउ खालसे को खालसा मेरो। ओत पोत सागर बूंदेरो।   (सब लौह ग्रंथ में से)

हित मर्यादा का महत्त्व

यह बात भली भान्ति समझ लेनी चाहिए कि अमृत की शक्ति के पीछे वास्तव में सिक्खी की हित अर्थात जीवनशैली ही काम करती है। यदि यह प्रश्न किया जाए कि हित मर्यादा क्या है ? तो हम उत्तर देंगे कि अपनी मनमति को त्याग कर गुरूमति को धारण करके उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना ही हित का धारणी होना है।

इस विषय पर गुरूदेव जी का हमारे लिए आदेश है -

इतु मारगि चले भाई अड़े, गुरू कहै सु कार कमाए जीउ।
तिआगे मन की मतड़ी, विसारे दूजा भाउ जीउ।
इस पावहि हरि दरसावड़ा नह लगै तती वाउ जीउ।   (सूही म. 5 पृष्ठ 763)

गुरूदेव जी के शब्द अर्थात उपदेश की वास्तविक हित वही है, जो मनुष्य के अन्त:करण में से विकारों को समाप्त करके उस के मन में धर्म का प्रकाश उत्पन्न करता है।

पूरे गुरू के शब्द को जीवन में व्यावहारिक रूप देते हुए, सिख का एक विशेष प्रकार का स्वभाव बन जाता है। वही स्वभाव उसको बुराइयों से रोकती है और धर्म से गिरने नहीं देती - भले ही कितनी ही कठिनाइयाँ आ जाएं। एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति बनाने के लिए ही सिख को प्रतिदिन नित्यनेम करने की हिदायत दी गई है और कहा -

रहिणी रहै सोई सिख मेरा, उह ठाकुर मैं उसका चेरा।
रहित बिना नहि सिख कहावै, रहित बिना दर चोटा खावै।
रहित बिना सुख कबहू न लहै, तां ते रहित सु दृढ़ कर रहै।

इसके अतिरिक्त गुरूदेव जी ने सतर्क किया कि यदि कोई व्यक्ति सिक्खी वेश-भूषा तो बनाता है किन्तु विधिवत गुरू दीक्षा नहीं लेता अर्थात पाँच प्यारों के समक्ष उपस्थित होकर अमृतपान नहीं करता तो मेरी उसके लिए प्रताड़ना है -

धरे केश पाहुल बिना, भेखी मूढ़ा सिख।
मेरा दरशन नाहि तहि, पापी तिआगे भिख।

इस प्रकार हुक्म हुआ जब तक खालसा पंथ न्यारा रहेगा, हित पर चलेगा, तब तक वह चढ़दी कला अर्थात बुलंदियों में रहेगा परन्तु

जब वह रहित में कोताही करेगा अर्थात अनुशासनहीन हो जायेगा तो उसका पतन निश्चित समझो और उन्होंने फरमान जारी किया।

जब लग खालसा रहे निआरा, तब लग तेज दीओ मैं सारा।
जब इह गहै बिपरन की रीत, मैं न करो इनकी प्रतीत।

गुरूसिख के लिए जहाँ मन की रहित अथवा अनुशासित जीवनशैली जरूरी है, वहीं तन की रहित भी जरूरी है। वह है पाँच ककारों का धारणकर्ता होना।

पाँच ककारों के विषय में निर्देश इस प्रकार हैं -

नशनि सिखी, ई पंज हरीफ काफ।
हरगिज़ न बाशद, ई पंज मुआफ।
कड़ा कारदो, काछ, कंघा बिदान।
बिना केस, हेच अस्त, जुमला निशान। *(भाई नन्द लाल गोया)*

दम्भी सिक्खों द्वारा विरोध

इस बैशाखी सम्मेलन में कुछ दम्भी सिख भी आये हुए थे, जिनके हृदय में अभी तक अपनी जाति का अभिमान मन में भरा हुआ था। उन्होंने गुरूदेव जी की इस कार्यवाही को बिल्कुल पसन्द न किया। वे उठे और विरोध प्रदर्शन करने लगे और अपने धर्म, रीतियों में हस्तक्षेप के आरोप में हल्ला-गुल्ला करने लगे किन्तु गुरूदेव जी चट्टान की तरह अडोल रहे और उन्होंने अपने सिंहों को गुरू वाणी के उदाहरण संकेत रूप में प्रस्तुत करके कहा -

जा की छोति जगत कउ लागै ता पर तूही ढरै।
नीचहु ऊँच करै मेरा गोबिन्द काहू ते न डरै। (पृष्ठ 1106 रविदास)

उन्होंने कहा कि नीच अवश्य ही उच्च होंगे। यह अकाल पुरूष का आदेश है, जिसका हमने पालन करना है। जिन लोगों को आज जाति के कारण, ब्राह्मण घृणा करते हैं, मेरे पीछे वे ही मेरे उत्तराधिकारी होंगे और सम्मान प्राप्त करेंगे। गुरूदेव जी ने अपना वचन पूर्ण किया और किसी के भी विरोध की कोई परवाह नहीं की और नवीन सिंहों को वर दिया -

जिनकी जात और कुल मांही, सरदारी न भई किदाही।
तिनही को सरदार बनाऊँ, तबे गोबिन्द सिंघ नाम कहाऊँ।

यथा

इन गरीब सिखन को दें पातशाही।
याद करै हमरी गुरिआई।

सैद्धान्तिक दृष्टान्त

एक दिन श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी का दरबार सजा हुआ था। गुरूदेव जी अपने सिहांसन पर बैठे थे। कीर्तनी जत्थे मधुर स्वर में गुरवाणी गायन कर रहे थे। तद्पश्चात गुरमति के एक विशेष विद्वान ने गुरवाणी के सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम विद्वान की व्याख्या की और उसने उन सिद्धान्तों को व्यवहारिक जीवन में अपनाने की प्रेरणा दी। जब यह सज्जन धर्म के सत्य स्वरूप पर प्रकाश डाल ही रहे थे तो इतनी देर में दस पन्द्रह सिक्खों का एक टोला बाहर से दरबार में प्रवेश हुआ। उनके पीछे बच्चे, जवान और अन्य लोग ऊँचे स्वर में हँसते हुए तथा मजाक करते आ रहे थे। इन सिक्खों के पास एक गधा था, जिसे वे दरबार के बाहर बाँध आये थे। आने वाले एक सिक्ख ने अपने कन्धे पर शेर की सुन्दर खाल लटकाई हुई थी तथा उस खाल का कुछ भाग हाथ से पकड़ा हुआ था।

जब सभी सिक्खों ने गुरूदेव जी को शीश झुका कर प्रणाम कर लिया तो गुरूदेव जी ने कुछ विचित्र शोरगुल का कारण पूछा। उन्होंने लोट-पोट होते हुए वह सारा वृत्तान्त सुनाने लगे। इस घटनाक्रम को सारी संगत ने बड़े ध्यानपूर्वक श्रवण किया। उस सिक्ख ने बताया, हजूर ! पिछले तीन-चार दिनों से नगर के पश्चिम की ओर से निकलने वाले लोग, एक शेर को नगर की सीमा के पास खेतों के उस ओर वन के निकट घूमते हुए देख रहे थे। उस तरफ से आने वाले लोग काफी सर्तकता से आवागमन कर रहे थे। इक्के-दुक्के यात्री तो शेर को दूर से ही देखकर भय के मारे नगर की ओर भाग कर वापिस चले आते थे। यह चर्चा समस्त नगर में भय का कारण बनी हुई है और आपको इस की सूचना दी गई थी। इस पर गुरूदेव जी हल्की-हल्की मुस्कुराहट से सारी संगत पर दृष्टि डाल रहे थे।

खोदा पहाड़ निकला चूहा ! उस सिक्ख ने वार्ता आगे जारी रखते हुए कहा - आज सुबह नगर का कुम्हार कुछ गधे लेकर चिकनी मिट्टी लेने नगर के बाहर जा रहा था। इन गधों को देखकर उस शेर ने रेंगना शुरू कर दिया। उस शेर को रेंगते देखकर कुम्हार को वास्तविकता समझने में देर न लगी। उसने उस शेर को जा पकड़ा और जांचा। किसी ने बड़ी सावधानी से, इस गधे के ऊपर शेर की खाल मड़ दी थी। जिस

कारण दूर से इस भेद का बिल्कुल भी पता नहीं लग रहा था। कुम्हार ने इस शेरनुमा गधे की शेर वाली खाल उतार ली जो कि हम आपके पास लेकर हाजिर हुए हैं और वह गधा अब हम बाहर बाँध आये हैं। सारी संगत हँसी के मारे लोट-पोट हो रही थी। सभी लोग इस हास्यास्पद घटना को सुन हँसी न रोक सके। बाहर से आया वह सिक्ख सब को तथाकथित शेर की खाल दिखा रहा था।

गुरूदेव जी ने सभी संगत को सम्बोधन करते हुए कहा, - "आप सब इस शेरनुमा गधे की असलियत प्रकट होने पर हँस रहे हैं, परन्तु यह बताओ कि आप में से कौन उस शेरनुमा गधे का भाई है ? छिपाने की कोशिश न करो। समस्त संगत में कोई भी ऐसा न निकला जो शेरनुमा गधे के साथ सम्बन्ध प्रकट करता।"

गुरूदेव जी कहने लगे कि सिक्खों में अभी बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं, जो दृढ़ता तथा विश्वास की कमी के कारण समय समय विचलित होते रहते हैं तथा डगमगा कर भटक जाते हैं। उन्होंने केवल देखा-देखी सिक्खों वाला स्वरूप अवश्य ही धारण कर लिया है परन्तु अन्दर से आचरण सिक्खों वाला नहीं। केवल वेश-भूषा सिक्खों वाली डालने से धर्म का वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं होता। जिन सिक्खों ने अपने मन को समर्पित नहीं किया अथवा वाणी, रहणी (जीवन चरित्र) को व्यवहारिक रूप नहीं दिया, उनकी बाहरी दिखावट केवल धर्म का ढकोसला बनकर रह जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहँकार पर काबू पाकर, अन्त:करण की शुद्धि, त्याग, मधुरभाषी, परोपकारी जैसे ऊँचे आदर्शों पर आचरण करने पर बाहरी रहत की शोभा बढ़ती है। बाहरी रहत अर्थात पाँच ककारी वर्दी धारण करने पर व्यक्ति सिंघों (शेरों) जैसा मालूम पड़ता है। यदि अन्दर जीवन चरित्र में परिवर्तन न हुआ, निर्भयता तथा शौर्य जैसे गुण उत्पन्न न हुए तो व्यक्ति उस गधे की तरह है जिस पर शेर की खाल मड़ी हुई थी। वास्तव में दिखावे वाले लोग ही धर्म के अपमान का कारण बनते हैं और उस गधे की तरह अपमानित होकर अपना शेरों वाला स्वरूप खो बैठते हैं। अत: सदाचारी गुणों वाला जीवन ही सिक्खी है अथवा शेरों वाला स्वरूप है।

गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया कि उन्होंने ही गधे पर शेर की खाल मड़वा कर यह कौतुक रचा था, जिससे जन-साधारण को दृष्टान्त देकर गुरमति दृढ़ करवाई जा सके।

भाई जोगा सिंघ जी

एक बार सीमा प्रान्त के नगर पेशावर से गुरू दर्शनों के लिए एक काफिला आनन्दपुर पहुँचा। इस काफिले में एक किशोर भी था जो बहुत श्रद्धाभक्ति रखता था। वह आते ही संगतों की सेवा में व्यस्त रहने लगा। संगतों को पंखा करना, पानी पिलाना, लंगर में बर्तन साफ करना इत्यादि कार्य वह मन लगाकर कर रहा था। गुरू गोबिन्द सिंघ जी उसके सेवाभाव से मन ही मन अति प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे। अत: उन्होंने उसे प्रेम से अपने पास बुलाया और बहुत स्नेह से पूछा - तुम्हारा नाम क्या है ? किशोर ने उत्तर दिया - मेरा नाम जोगा है। इस पर गुरूदेव जी ने दूसरा प्रश्न किया कि तुम किस के जोगे हो अर्थात किस को समर्पित हो ? उत्तर में जोगे ने कहा - हजूर, मैं तो केवल आपका जोगा हूँ। उत्तर सुनकर गुरूदेव जी रीझ उठे और उन्होंने तुरन्त किशोर को गले से लगाया और स्नेहपूर्वक कहा - अच्छा ठीक है, यदि तुम हमारे जोगे हो तो मैं भी तुम्हारे जोगा रहूँगा। इस प्रकार दोनों ओर से स्नेह बढ़ने लगा। किशोर सदैव गुरूदेव जी की सेवा में रहने लगा। पेशावर की संगत तो वापस चली गई किन्तु गुरूदेव जी ने इस किशोर को उसके अभिभावकों से माँग कर अपने पास रख लिया।

समय व्यतीत होने लगा। किशोर जोगा सेवा बहुत लगन से करने लगा और वह गुरूदेव जी की कृपा का पात्र बना रहता। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये और किशोर जोगा युवक बन गया। जोगा सिंघ के पिता जी पेशावर से आनन्दपुर आये और उन्होंने गुरूदेव जी के चरणों में प्रार्थना की कि गुरूदेव जी अब जोगा सिंघ को आज्ञा प्रदान करें वह विवाह करवा ले क्योंकि हमने इसका रिश्ता निश्चित कर रखा है। गुरूदेव जी ने जोगा सिंघ से प्रश्नवाचक दृष्टि से उसकी इच्छा जाननी चाही तो उसने उत्तर दिया - आप की जो आज्ञा होगी मैं वैसा ही करूँगा। गुरूदेव जी ने उसे विवाह करवाने की अनुमति दी और कहा - अच्छा घर जाओ किन्तु जब हम याद करें जल्दी लौट आना। युवक जोगे ने आश्वासन दिया। गुरूदेव जी ऐसा ही होगा, आप चिन्ता न करें।

युवक जोगा अभिभावकों के साथ घर पेशावर नगर पहुँचा। कुछ दिन के भीतर ही उसका विवाह होना निश्चित था। जब विवाह में फेरे होने लगे तो अन्तिम फेरे से पहले उसे एक सिक्ख ने एक पत्र उसके हाथ में थमा दिया। जिसमें गुरूदेव जी का हुक्मनामा था। हुक्मनामे में कुछ इस प्रकार लिखा था - प्यारे जोगा सिंघ जिस समय भी यह पत्र तुम्हें प्राप्त हो उसी क्षण बिना किसी विलम्ब हमारे पास चले आओ। इस कार्य के लिए समय-असमय का ध्यान नहीं करना। जैसे ही यह पत्र जोगा सिंघ ने पढ़ा। वह उस क्षण फेरे बीच में ही छोड़ गुरूदेव जी की ओर आनन्दपुर चल पड़ा। सभी सम्बन्धियों ने बहुत समझाया कि अन्तिम फेरा लेकर चले जाओ कोई नहीं रोकेगा, किन्तु जोगा सिंघ ने एक नहीं मानी। केवल यही कहा कि गुरूदेव जी का हुक्म ही ऐसा है। मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कर सकता। जोगा सिंघ घर से चल पड़ा। उसी की तलवार लेकर अन्तिम फेरा पूरा किया गया। यह पत्र गुरूदेव जी ने एक सिक्ख को बहुत दिन पहले देकर पेशावर भेज दिया था, जिसे आदेश था कि हमारा हुक्मनामा जोगा सिंघ को अन्तिम फेरे से पहले ही देना। उसने वैसा ही किया था।

भाई जोगा जी पेशावर नगर से बिना किसी विलम्ब आनन्दपुर प्रस्थान कर गये। मार्ग में उसके मन में एक विचार उत्पन्न हुआ कि मैंने अपने गुरू की आज्ञा के लिए बहुत बड़ा त्याग किया है। यदि मैं अन्तिम फेरा ले लेता तो कौन सी विपत्ति आ जानी थी। अत: वह सोचने लगा

– मैं गुरूदेव जी का अति निकटवर्ती शिष्य हूँ, जहाँ गुरूदेव जी मुझ से स्नेह करते हैं, वहाँ मेरी भी उनके प्रति श्रद्धाभक्ति कम नहीं है। मैंने भी गृहस्थ सुख का त्याग किया है।

भाई जोगा जी यात्रा करते करते होशियारपुर पहुँच गये। संध्या के समय वह किसी सराय में ठहरने के लिए स्थान खोज रहे थे कि उनकी दृष्टि एक अति सुन्दर युवती पर पड़ी जो दुल्हन रूप में सजी हुई थी। उसने कामुक दृष्टि से जोगा सिंघ को आमंत्रित किया। युवक जोगा सिंघ विचलित हो उठा। उसे अपनी दुल्हन की याद सताने लगी। दुविधा में जोगा सिंघ कोई निर्णय नहीं ले सका। उसने सोचा –कुछ अंधकार हो जाने पर मैं लौट कर इस युवती से सम्बन्ध बनाऊँगा। अभी सामाजिक बन्धन और कई प्रकार की दीवारें हैं। जोगा सिंघ भावावेश में समय व्यतीत करने लगा। जैसे ही गहरा अंधकार हुआ, जोगा उस युवती के चौबारे पर पहुँचा परन्तु वहाँ उसे एक बहुत रौबीला सन्तरी खड़ा दिखाई दिया जिस के हाथ में एक चान्दी की चोब (लट्ठ) थी। चोबदार ने जोगे को बहुत करूर दृष्टि से देखा और अपनी चोब को जमीन से टकरा कर बजाया। इस पर जोगा सतर्क हुआ और यह सोचता हुआ लौट आया कि कोई बड़ा व्यक्ति उस युवती के पास आया है। उसके लौटने पर मैं चला जाऊँगा। लगभग एक पहर रूकने के बाद जोगा फिर से चौबारे के पास पहुँचा किन्तु सन्तरी वहीं खड़ा था और उसने क्रोध में आवाज लगाई – कौन है रे तू ! जोगा काँप गया और वापिस चला आया। जोगा सिंघ की आँखों में नींद तो थी नहीं वह प्रतीक्षा करने लगा कि वह व्यक्ति जो चौबारे पर युवती के पास है, लौट जाए तो मैं जाऊँ। जब आधी रात्रि हो गई तो जोगा सिंघ ने फिर चौबारे का चक्कर लगाने का साहस किया किन्तु सन्तरी तो वहीं खड़ा था। जोगा इस बार दूर से ही लौट आया और बड़ी बेसब्री से सन्तरी के हटने की प्रतीक्षा करने लगा। जब रात्रि का अन्तिम पहर हुआ तो जोगा सिंघ पुन: चौबारे का चक्कर लगाने पहुँच गया। किन्तु इस बार सन्तरी ने उसे फटकारते हुए कहा – दिखता तो कोई सिक्ख है किन्तु अमृत बेला में चौबारे के चक्कर काट रहा है। जाओ स्नान करके पूजा पाठ करो। सन्तरी की इस डांट ने तो भाई जोगा सिंघ जी को वास्तविकता के धरातल पर ला खड़ा कर दिया। वह विचारने लगा कि इस सन्तरी ने मुझे आज नर्कगामी होने से बचा लिया है और वह तुरन्त लौट कर अपने नित्यनेम में व्यस्त हो गये। सूर्योदय होते ही वह आनन्दपुर के लए चल पड़ा। वहाँ से आनन्दपुर की दूरी लगभग 15 कोस थी जो दोपहर तक पूरी हो गई। आनन्दपुर पहुँचते ही जोगा सिंघ सीधा गुरूदेव जी के दर्शनों के लिए उनके दरबार में पहुँचा और दण्डवत् प्रणाम करके उनके समक्ष बैठ गया। गुरूदेव जी ने उससे कुशलक्षेम पूछी। उत्तर में जोगा का स्वर धीमा रहा और उनसे दृष्टि मिला न सका। इस पर गुरूदेव जी ने कहा – तुमने रातभर हम को वैश्या के द्वार पर तैनात रखा, हम से तुमने बहुत कड़ी सेवा ली है। देखो न रात भर जगने के कारण अब हमें नींद के झोंके आ रहे हैं। यह सुनते ही जोगा सिंघ फूट–फूट कर रो पड़ा और गुरूदेव जी के चरणों में लेटकर क्षमायाचना करने लगा। उसका गला रूंधन के कारण भर आया और कहने लगा मैं आपका अल्पज्ञ बच्चा हूँ, कदम–कदम पर डगमगा गया हूँ, मेरी भूल क्षमा के पात्र नहीं है, तो भी क्षमा करें। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – तुम्हें याद होगा, तुमने कहा था मैं आपके जोगा हैं तो हम भी तुम्हारे जोगे हैं। अत: हमारा बिरद था तुम्हारी रक्षा करना।

ब्राह्मण देवदास

एक बार आनन्दपुर साहब में श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी का दरबार सजा हुआ था तो एक होशियारपुर निवासी देवदास नामक ब्राह्मण बहुत दीनदशा में रोता–बिलखता प्रार्थना लिये हुए उपस्थित हुआ। उसने गुरूदेव जी के समक्ष अपनी फरियाद रखी और कहा – मैं अपनी दुल्हन को उसके मायके से विदाई लेकर आपने गाँव जा रहा था कि रास्ते में बस्सी नगर के पठान सरदार जाब्बर ख़ान ने मेरी पत्नी को मुझ से छीन लिया है। मैंने बहुत चीखपुकार की परन्तु मेरी किसी ने नहीं सुनी और उल्टा मुझे पकड़ कर बहुत मारा है। अब मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी सहायता करें और मेरी पत्नी मुझे वापस दिलवाएं।

गुरूदेव जी ने उसकी फरियाद सुनकर अपने बड़े सुपुत्र अजीत सिंह को बुलाया और उसे आदेश दिया कि अपने साथ एक सैनिक टुकड़ी ले जाओ और तुरन्त बस्सी के पठान जाब्बर ख़ान को उसके किये का दण्ड देकर इस गरीब ब्राह्मण की पत्नी को उसकी कैद से मुक्ति दिलवाओ।

साहबजादा अजीत सिंह जिस की आयु केवल 16 वर्ष थी, ने लगभग 100 सिक्ख योद्धाओं को साथ लिया और देवदास ब्राह्मण को घोड़े के पीछे बिठाकर बस्सी क्षेत्र पहुँचे। उन्होंने तुरन्त जाब्बर ख़ान की हवेली को घेर लिया और हवेली का दरवाजा तोड़कर अन्दर प्रवेश कर गये। इस पर पठान भयभीत होकर शोर मचाने लगे, सिक्ख आ गये ! सिक्ख आ गये !! किसी भी पठान की हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह इन योद्धाओं से लोहा ले। जाब्बर ख़ान भीतर के कमरे में जा छिपा, तलाशी अभियान में पकड़ा गया। देवदास ब्राह्मण ने दोषी जाब्बर ख़ान को पहचान लिया। देवदास की पत्नी भी बरामद कर ली गई और उसे देवदास को सौंपा दिया। इसके अतिरिक्त किसी स्त्री अथवा किसी वस्तु को छुआ तक नहीं। केवल जाब्बर ख़ान को बां.ध कर घोड़े पर लादकर अपने साथ आनन्दपुर वापिस चले आये। जाब्बर ख़ान को उसके कर्मो की कड़ी सजा दी गई। गुरूदेव जी साहबजादा अजीत सिंह के इस कारनामे पर अति प्रसन्न हुए।

दीपकौर

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में माझा क्षेत्र की संगत ने प्रार्थना की, 'हे गुरूदेव जी ! माई दीपकौर ने आपका अमृत छका है। जब हम तलबन के कुएं पर पानी पी रहे थे तो यह थोड़ी दूर आगे निकल गई। इसे अकेला देखकर चार तुर्को ने घेर लिया, इसने अपना सोने

का कंगण उतारकर फेंका। जब एक तुर्क कंगण को उठाने लगा, तो इसने तलवार खींच ली और उस पर वार किया। वह घायल होकर गिर पड़ा। शेष तुर्क घबराकर शस्त्र सम्भालने लगे तो इसने निर्भय होकर ऐसी तलवार मारी कि एक एक करके दो को गिरा दिया। चौथे को घायल करके उसके ऊपर चढ़कर बैठ गई और तलवार उसकी छाती में मार ही रही थी कि इतने में हम लोग पहुँच गए। चारों पापी मर चुके थे। हम शीघ्रता से वहाँ से दीपकौर को साथ लेकर रास्ता बदल यहाँ आ पहुंचे हैं। अब हमारे कई साथी यह वहम करते हैं कि दीपकौर ने हत्या की है और यह तुर्क से छूकर भ्रष्ट हो गई है।''

सतगुरू जी ने हँसकर कहा, ''इसने तो अपने धर्म तथा अपने प्राणों की रक्षा की है। यह शूरवीर सिंघनी पंथ की पुत्री है। यह भ्रष्ट नहीं हुई। अछूत लोग इसके चरणों को छूकर पवित्र होंगे। इसका नाम वीरों की श्रेणी में रहेगा और यह पवित्र-पावन कहलाएगी। तुम सब अमृत छको, ताकि तुम्हारे भ्रम-भय दूर हों और शेर पुत्र बन जाओ।'' उसी दिन सारी संगत ने अमृत पान किया।

हरि नाम की महिमा

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी दरबार में विराजमान थे। कीर्तनीय सिंघ गुरूवाणी का गायन कर रहे थे। संगत का समुह श्रोता रूप में वाणी के उपदेशों पर ध्यान एकागर मन में बसी दुविधा पर विचार रहे थे कि वाणी की कुछ विशेष पंक्तियों ने संगत का ध्यान आकर्षित किया। पंक्तिया इस प्रकार थी -

माधउ जल की पिआस न जाइ।
जल महि अगनि उठी अधिकाइ। रहाउ।

कीर्तन की समाप्ति पर एक सिक्ख ने गुरूदेव जी से पंक्ति के अर्थ पूछे कि 'जल महि अगनि उठी अधिकाइ' के क्या अर्थ हुए। जल में अगनि उठी - समझ में नहीं आई। गुरूदेव जी ने बताया कि यह पंक्तियां भक्त कबीर जी की हैं। वह जीव आत्मा की तरफ से प्रभु को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि हे माया पति ! तेरे नाम रूपी अमृत की प्यास नहीं मिटती। जैसे ही तेरा नाम रूपी अमृत प्राप्त हुआ है, मन में तृष्णा रूपी अग्नि और ज्वलंत हो उठी है कि मैं नाम रूप अमृत सदैव पीता ही रहूँ, एक क्षण के लिए भी तुझ से जुदा न रहूँ।

इस सम्पूर्ण शब्द के अर्थो के पश्चात् गुरूदेव जी ने संगत से प्रश्न किया कि कोई ऐसा सिक्ख है जो यह बता सके कि भक्त कबीर जी के समकालीन सम्राट अथवा बादशाह कौन कौन से हुए हैं ? समस्त संगत विचारमग्न हो गई। सभी ने भिन्न भिन्न उत्तर दिये परन्तु कोई दृढ़ता से उत्तर नहीं दे पाया। इस पर गुरूदेव जी ने एक विचार रखा कि भक्त कबीर को सभी जानते हैं जो कि एक गरीब जुलाहा था किन्तु उस समय का सम्राट जो कि लाखों सिपाहियों की सेना रखता था, कोई नहीं जानता, इसका कारण बता सकते हो? सभी उत्तर की खोज में व्यस्त हो गये। अन्त में एक सिक्ख ने कहा - गुरूवाणी अनुसार तो यह पंक्ति इस बात का उचित उत्तर देती है : -

जिसु नीच को कउ न जानै, नामु जपत ओह चाहु कुंट मानै। *पृष्ठ - 386*

गुरूदेव जी उत्तर सुनकर अति प्रसन्न हुए और कहने लगे - नाम जपने की महिमा अपरम्पार है।

शुद्ध वाणी उच्चारण पर बल

एक दिन सिक्ख 'पाँच ग्रंथी' नामक पुस्तक में से गुरूवाणी कण्ठस्थ करने का प्रयास कर रहा था। वह सिक्ख ऊँचे स्वर में दक्षिणी ओंकार नामक रचना के पद्य गायन कर रहा था। उसका स्वर मधुर था। इसलिए वहाँ से गुजरते समय गुरूदेव जी कुछ क्षण के लिए खड़े हो गये। उस समय सिक्ख पंक्ति उच्चारण कर रहा था : -

धनु धरणी धरू आपि अजोनी तोलि बोलि सचु पूरा।
करते की मिति करता जाणै कै जाणै गुरु सूरा।

किन्तु सिक्ख ने पंक्ति अशुद्ध उच्चारण कर दी जिस कारण अर्थो के अनर्थ हो गये, भाव बिल्कुल विपरीत बन गये। सिक्ख ने पंक्ति में भूल अथवा लापरवाही के कारण कै, के स्थान पर के पढ़ा। के जाणै गुरु सूरा। इस प्रकार अर्थ बोध हो गया कि, प्रभु की महिमा वही जान सकता है, गुरू इत्यादि लोग भी नहीं जान सकते। जब कि कै के अर्थ होते हैं कि प्रभु की महिमा को उस केअतिरिक्त पूर्ण गुरू भी जानते हैं अर्थात कै बराबर या के हुआ किन्तु सिक्ख ने उच्चारण किया के जाणै, अर्थ हुआ क्या जानता है।

अशुद्ध वाणी का उच्चारण सुनकर गुरूदेव जी ने उस सिक्ख से कहा - आप ध्यान से इस पंक्ति को पुनः उच्चारण करें। किन्तु वह सिक्ख गलती पर ध्यान एकागर नहीं कर पाया।उसने पुनः वही भूल दोहराई कै के स्थान पर 'के' शब्द का उच्चारण किया। इस पर गुरूदेव जी बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने एक सेवक को कहा - इसे एक चांटा लगाओ ऐसा ही किया गया। चांटा लगने से वह सिक्ख रूष्ट हो गया और कहने लगा मेरे से कौन सी भयंकर भूल हुई है जो मुझे अपमानित किया गया है ? गुरूदेव जी ने उसे समझाते हुए कहा - के तथा कै के अर्थ समझ लो और फिर सम्पूर्ण पद्य के अर्थ देखो कितना अन्तर हुआ है। ऐसा ही किया गया और जाना गया कि एक मात्रा का उच्चारण न करने

से अर्थ बिल्कुल विपरीत हो जाते हैं। गुरूदेव जी ने कहा – गुरूवाणी पढ़ने का तभी लाभ हो सकता है जब हम उसे ध्यानपूर्वक शुद्ध पढ़ें अन्यथा हमारा किया हुआ कर्म निष्फल चला जाता है।

अध्यात्मिक समस्या का समाधान

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में एक जिज्ञासु ने विनती की कि हे गुरूदेव जी ! हम गुरुवाणी का पठन बहुत करते हैं किन्तु हमारे मन को शान्ति अथवा तृप्ति प्राप्त नहीं होती। फिर यही बात संगत में से बहुत संख्या में सिक्खों ने भी कही। गुरूदेव जी ने कहा ठीक है। इस प्रश्न का उत्तर हम दोपहर के भोजन के समय देंगे। किन्तु किसी ने भी आज पानी नहीं पीना है। गर्मी के दिन थे आज्ञा अनुसार किसी ने भी पानी नहीं पीया। गर्मी के कारण सभी व्याकुल हो गये और प्यास सताने लगी। गुरूदेव जी ने सभी को एक एक लोटा भर कर पानी लाने को कहा और आदेश दिया कि इस पानी के चुल्ले ही करने हैं, किसी ने भी इसे पीना नहीं है। ऐसा ही किया गया। चुल्ले करने से पानी समाप्त हो गया। तभी गुरूदेव जी ने प्रश्न किया कि सभी बतायें कि प्यास बुझी की नहीं। उत्तर में संगत कहने लगी कि कभी चुल्ले करने से भी किसी की प्यास बुझ सकती है भला? इस पर गुरूदेव जी ने मुस्कुराते हुए कहा – वही तो मैं भी कहना चाहता हूँ कि केवल बाणी पढ़ने मात्र से शान्ति नहीं मिलती। वाणी के भाव हृदय में बसाने पड़ते हैं। केवल बाणी पढ़ना उसी प्रकार है जिस प्रकार हमने ठंडे पानी के चुल्ले कर लिए।

चरित्र निर्माण पर विशेष बल

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी एक दिन अपने दरबार में दूर दूर से दर्शनों को आने वाली संगतों का स्वागत कर रहे थे कि एक सिक्ख ने उन्हें सूचना दी कि हमारे जवानों के हाथ में शत्रु पक्ष की कुछ स्त्रियाँ लग गई हैं। कृपया आदेश दें कि उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाए। यह सुनते ही गुरूदेव जी ने उन स्त्रियों को दरबार में बुलवा लिया और उनको सम्मानित करके कहा – पुत्रियो आप चिन्ता न करें जल्दी ही सभी को उनके घरों में बा–इज्जत (सम्मानपूर्वक) पहुँचा दिया जएगा और ऐसा ही किया गया। तद्पश्चात उन जवानों को बुलाकर गुरूदेव जी ने गुरूमत सिद्धान्त समझाते हुए कहा – हमने पंथ को बहुत ऊँचे आचरण वाला बनाना है। यदि हमारे शिष्य भी वही त्रुटि करेंगे जो साधारण सैनिक करते हैं तो हम में और उन में अन्तर कहाँ रह गया। हमने तुम्हें आचरण से संत और कर्त्तव्य से सिपाही बनाना है, जिससे सँसार भर में विजय प्राप्त करते हुए नाम कमाओगे। तुम बलिदान और त्याग का पर्यायवाची कहलाओगे। इस पर एक सिक्ख ने दबी जुबान में कहा – गुरूदेव जी शत्रु तो हमारी स्त्रियों से अभद्र व्यवहार करते हैं और उनका शील भंग कर देते हैं। यदि प्रतिशोध में ऐसा कुछ न किया गया तो उनको सबक कैसे मिलेगा ? उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – अग्नि से अग्नि नहीं बुझती उस के लिए सदैव पानी का प्रयोग करना होता है। भाव हमें शत्रुता मिटाने के लिए अनैतिकता से नहीं नैतिकता से काम लेना होगा, दूसरे हम तुम्हें नरकगामी नहीं बनने देंगे। पर स्त्रीगामी पूरे समाज के पतन का कारण बनता है। इसीलिए हमने 'आचार संहिता' में तुम्हें (खालसे को) सतर्क किया है कि वह पर–नारीगामी नहीं होगा।

विद्याता पर अटूट आस्था

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दरबार में हर सिक्ख अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने के लिए उपस्थित होना चाहता था। भौगोलिक दूरियों उनके लिए कोई महत्त्व नहीं थी। जब भी कभी समय मिले वे गुरू दरबार में हाजरी देते और अपने को धन्य मान लेते थे कि उनको गुरूदेव जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एक सिक्ख जगाधरी नगर के निकट एक गाँव में रहता था। वह कुशल कारीगर (बढ़ई) था। उस की आय निम्न स्तर की थी। तब भी उसमें से कुछ अंश बचत करके सुरक्षित रखता और लगभग एक माह में एक बार अवश्य ही गुरूदेव जी के दर्शनों को आनन्दपुर पैदल यात्रा करते हुए पहुँच जाता। उसका यह नियम कई वर्षो से चलता आ रहा था किन्तु वह अन्य सिक्खों की तरह आनन्दपुर कभी भी रूकता नहीं था। उसको भय बना रहता था कि यदि वह समय अनुसार घर वापस न लौटा तो उसका परिवार धन के अभाव में भूखा मर जाएगा क्योंकि उसने घर पर एक दिन का ही खर्च दिया हुआ है। एक बार गुरूदेव जी ने उसे पास बुलाकर कहा – सिंघ जी आप इस बार हमारे पास कुछ दिन रहें। ऐसी हमारी इच्छा है। उत्तर में सिक्ख ने अपनी गुरुदेव जी के समक्ष विवश्ता बताई कि वह केवल एक दिन का ही खर्च घर पर देकर आया है। यदि वह समय पर न लौटा तो परिवार को बहुत कष्ट उठाना पड़ सकता है। गुरूदेव जी ने उसे समझाते हुए कहा – आप चिन्ता न करें। विधाता किसी प्राणी को भी भूखा नहीं मारता वह सभी के रिज़क का प्रबन्ध करता है। अत: हमें उस पर पूर्ण आस्था रखनी चाहिए किन्तु वह सिक्ख अपने हृदय में विश्वास उत्पन्न नहीं कर पाया। गुरूदेव जी उसके हृदय में बसे भ्रम को निकालना चाहते थे कि वह परिवार का पोषण नहीं कर रहा अपितु कोई और महाशक्ति है जो सभी को रिज़क (रोजी रोटी) दे रही है। केवल हम तो एक साधन मात्र हैं। गुरूदेव जी के दबाव डालने पर भी वह सिक्ख रूकने को तैयार नहीं हुआ केवल एक बात ही कहता रहा। आप मुझे कोई और सेवा बताएं मैं सहर्ष करूँगा किन्तु मेरे लिए रूकना असम्भव है। इस पर गुरूदेव जी ने युक्ति से काम करने के विचार से उसे कहा – ठीक है, यदि तुम नहीं रूकना चाहते तो हमारा एक पत्र पीर बुद्धुशाह जी को सढौरे नगर में देने का कष्ट करें। यह नगर आप के निकट ही पड़ता है। सिक्ख ने गुरूदेव जी से बन्द पत्र लिया और सढौरे चल दिया। रास्ते में विचारने लगा मुझे कुछ कोस अधिक चलना पड़ेगा क्योंकि यह नगर जगाधरी से कुछ हट कर पर्वतीय क्षेत्र की तहराई में है किन्तु कोई बात नहीं गुरूदेव जी का संदेश उचित स्थान पर पहुँच जाएगा। वह अगले दिन सढ़ौरे पीर जी के पास पहुँचा और गुरूदेव

जी का पत्र उनको दिया। पीर जी ने सिंघ जी से कुशल क्षेम पूछी और उनका अतिथि सत्कार करने के लिए जलपान लाने का आदेश दिया। परन्तु सिंघ जी ने आज्ञा मांगी और कहा – मुझे देर हो रही है मैं रूक नहीं सकता क्योंकि मैंने अपनी रोजी रोटी के लिए घर जाकर मज़दूरी करनी है। पीर जी ने कहा – वह तो ठीक है। इतनी दूर से आप मेरे लिए संदेश लाए हैं तो मैं आपको बिना सेवा किये जाने नहीं दूँगा। विवशता के कारण सिंघ जी नाश्ता करने लगे। तब तक पीर जी ने पत्र खोल कर पढ़ लिया। उसमें गुरूदेव जी की तरफ से पीर जी को आदेश था कि इस सिक्ख को छ: माह तक अपने पास अतिथि रूप में रखना है, इनको घर जाने नहीं देना। यह प्रसन्नतापूर्वक रहें तो ठीक नहीं तो बलपूर्वक रखना है और इनकी सेवा में कोई कोर कसर नहीं रखनी।

नाश्ता करने के उपरान्त जब सिंघ जी ने आज्ञा मांगी तो पीर जी ने उनको गुरूदेव जी का आदेश सुना दिया और कहा – अब आप की इच्छा है हमारे पास बलपूर्वक रहें अथवा स्वेच्छा से। गुरूदेव जी का आदेश सुनकर सिंघ जी स्तब्ध रह गये। किन्तु अब कोई चारा भी नहीं थी। आखिर मन मार कर रहने लगे। धीरे धीरे दिन कटने लगे। जब छ: माह सम्पूर्ण हुए तो उनको पीर जी ने घर जाने की आज्ञा दे दी। जब सिंघ जी गाँव में पहुँचे तो वहां उनकी झोंपड़ी नहीं थी वहाँ पर एक सुन्दर मकान बना हुआ था। वह दूर से विचारने लगे। मेरी स्त्री और बच्चे भूखे मर गये होंगे या कहीं दूर भाग गये होंगे और मेरी झोंपड़ी गिरा कर किसी धनी पुरूष ने अपना सुन्दर मकान बना लिया है। सिंघ जी जैसे ही मकान के निकट पहुँचे अन्दर से सुन्दर वस्त्रों में उनके बच्चे खेलते हुए बाहर आये और सिंघ जी को देखकर जोर जोर से चिल्लाने लगे माँ बापू आ गया – बापू आ गया। इतने में उनकी पत्नी भी उनको दिखाई दी जो स्वच्छ तथा सुन्दर वस्त्रों में सजी हुई थी। वह आते ही पति का हार्दिक स्वागत करने लगी और उसने कुशल मंगल पूछा। सिंघ जी घर की कायाकल्प देखकर आश्चर्यचकित थे। उनकी प्रश्नवाचक दृष्टि देखकर पत्नी ने बताया कि आप जब दो तीन दिन की प्रतीक्षा करने के पश्चात नहीं लौटे तो हमने सोचा आप गुरूदेव जी के पास सेवा के कार्यो में व्यस्त हो गये होंगे। अत: हम गाँव में खेतिहर मज़दूरी की तलाश में निकल पड़े। उस समय गाँव के मुखिया का नया मकान बन रहा था उनको मज़दूरों की आवश्यकता थी। इसलिए हमें वहाँ मजदूरी मिल गई। जब कुछ दिन काम करते व्यतीत हुए तो एक दिन एक स्थान की खुदाई करते समय एक गागर हमें दबी हुई मिली, जिसमें स्वर्ण मुद्राएं थी। जब हमने यह बात मुखिया जी को बताई तो वह कहने लगे। हम इस भूमि पर कई वर्षो से हल चला रहे हैं हमें तो कुछ मिला नहीं। यह गढ़ा हुआ धन तुम्हारे भाग्य का है। अत: तुम इसे ले जाओ। इस प्रकार हमने उस धन से पुरानी झोंपड़ी के स्थान पर नया सुन्दर मकान बनवा लिया है और बच्चों को जीवन निर्वाह की हर सुख सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं।

अब सिंघ जी को गुरूदेव जी की याद आई और वह उनका धन्यवाद करने आनन्दपुर पहुँचे। गुरूदेव जी ने अपने प्यारे सिक्ख को देखते ही पूछा – क्या बात है ? सिंघ जी कई माह बाद दिखाई दे रहे हो। वह सिख गुरू चरणों में लेट गया और कहने लगा। गुरूदेव जी पिता जी मैं बहुत भूल में था। आपने मेरी आँखों के आगे से मिथ्या अभिमान का मायाजाल हटा दिया है कि मैं बच्चों का पालन पोषण करता हूँ। वास्तव में तो यह कार्य विधाता स्वयं ही कर रहे हैं हम तो केवल निमित्तमात्र ही हैं।

ढाल की परीक्षा

मध्यप्रदेश का निवासी लाल सिंघ आनन्दपुर श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के दर्शनों को आया। वह कुशल कारीगर था, उसने स्वयँ बहुत कड़ी लगन से एक विशेष प्रकार की ढ़ाल का निर्माण किया था। इसकी विशेषता यह थी कि वह हल्की और मज़बूत थी। इसे कोई अस्त्र–शस्त्र भेद नहीं सकता था। यह विशेष उपहार उसने गुरूदेव जी के समक्ष भेंट किया और ढ़ाल की विशेषता बताते हुए कहा – गुरूदेव जी ! मैंने इसे कई धातुओं के मिश्रण से तैयार किया है। अत: इसमें से गोली पार नहीं हो सकती। गुरूदेव जी ने सिक्ख के भीतर अभिमान का अंश देखा और कहा – लाल सिंघ क्या हमारी गोली भी इसे भेद नहीं सकेगी ? इस पर लाल सिंघ बात को बिना विचारे कहने लगा – हाँ गुरूदेव जी ! यह इतनी मज़बूत है कि आप की गोली भी इसे भेद नहीं सकेगी।

गुरूदेव जी ने उसे कहा – अच्छा हम कल इस ढ़ाल का परीक्षण करेंगे। आज इसे ले जाओ, कल इसे साथ लेकर आना। लाल सिंघ वापिस अपने शिविर पर आ गया। जहाँ उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। जब उसे इस अभिमानभरी घटना का पता चला तो वह बहुत चिन्तित हुई, उसने लाल सिंघ को सुचेत किया कि आपसे भयंकर भूल हो गई है, गुरूदेव जी समर्थ हैं। उनके आगे यह ढ़ाल कोई वस्तु नहीं है। अब लाल सिंघ छटपटाने लगा और विचारने लगा कि अब क्या किया जाए।

तब उसको भी अपनी गलती का अहसास होने लगा। अब दोनों पति–पत्नी कोई युक्ति सोचने लगे कि कल उनकी आन रह जाए। तभी उसकी पत्नी को एक युक्ति सूझी कि गुरुदेव ने अपने पाँच प्यारों को अपने से सर्वोत्तम स्थान दिया है तथा उन्हीं पाँच प्यारों को गुरु मानकर गुरूदीक्षा भी उन्हीं से ली है। क्यों न वे भी उन पाँच प्यारों के आगे क्षमा याचना करें। यह बात दोनों के मन को भा गई और वह कारीगर, पाँच पूर्ण गुरु सिख अर्थात पूर्ण रूप से, गुरुदेव के उपदेशों पर जीवन व्यतीत करने वाले शिष्यों को, बड़ी विनम्रता से आग्रह करके अपने घर पर बुला लाया। तब तक उसकी पत्नी ने उनके लिए अपने हाथों से भोजन तैयार कर उनको भोजन कराया तथा अपनी सेवा भाव से उन्हें प्रसन्न कर लिया। तत्पश्चात उन्होंने अपनी गाथा सुनाई कि उन्हें अब उनके किये पर पश्चाताप है इसलिए वे उनकी शरण में उपस्थित हुए हैं। उन्हें उन पर गर्व है कि वे गुरुदेव के प्यारे शिष्यों में से है और वे उन्हें क्षमा दिलवा सकते हैं क्योंकि गुरुदेव की कृपा उन पर सदैव रही है। जैसा कि कथन है –

रहणी रहै सोई सिख मेरा ॥
ओहु साहिब मैं उसका चेरा ॥

ऐसा सुन उन पाँच गुरू सिक्खों ने अरदास की कि हे गुरुदेव ! यह, आप का अन्जान बच्चा अपनी भूल के लिए पश्चाताप करता है। इसलिए कल के दरबार में इसकी भी आन रखना आपका कर्त्तव्य है। क्योंकि यह भी आप का भक्त है। भक्तों की लाज आप ही के हाथ में है। अपने भूले-भटके सेवक को उसकी गलती पर क्षमा करें। दूसरे दिन वह कारीगर श्रद्धालु अपनी ढाल लेकर गुरुदेव के दरबार में मन ही मन आराधना करता हुआ उपस्थित हुआ कि हे गुरुदेव ! उसकी भी लाज रख लेना। गुरुदेव ने दरबार की समाप्ति के पश्चात् वह ढाल मँगवाई तथा उसको एक स्थान पर स्थित कर एक बन्दूक द्वारा उसका निशाना बनाकर गोली चलाई तो गोली चली ही नहीं मानो बन्दूक खराब हो या बारूद गीला हो। केवल बन्दूक से खराब बारूद जैसी ध्वनि ही हुई। इस पर गुरुदेव ने दूसरी चीज़ों को निशाना मानकर गोलियाँ चलायीं तो बन्दूक तथा बारूद ठीक साबित हुआ। इस आश्चर्य को देखकर उस श्रद्धालु कारीगर से इसके विषय में पूछा गया कि क्या कारण है कि उसकी ढाल की तरफ बन्दूक काम ही करना क्यों बंद कर देती है। इस पर वह कहने लगा हे गुरुदेव ! मैं कल मिथ्या अभिमान में आपकी अलौकिक शक्ति भूल गया था। अत: उसकी पत्नी ने उसे समझाया कि उसे प्रायश्चित करना चाहिए। इसलिए उसने आपकी दर्शाई विधि के अनुसार पाँच प्यारों को भोजन कराकर उन से प्रार्थना कराई है कि उसकी आन आज दरबार में रहनी चाहिए।

यह सुन गुरुदेव बोले - जब वे उसकी ढाल की तरफ निशाना बाँधते हैं तो उन्हें वहाँ नौ गुरु खड़े दिखाई देते हैं। जो कि उसकी ढाल की रक्षा कर रहे हैं। परन्तु अब उनकी भी आन का प्रश्न है। इसलिए उनकी गोली बन्दूक की नली से बाहर ही नहीं निकली क्योंकि पांच प्यारे परमेश्वर रूप में प्रार्थना कर चुके थे। जिससे दोनों पक्षों की आन-शान बनी रही है।

पर्वतीय नरेशों को प्रेरणा

वास्तव में राणाओं की परख तो सबसे अधिक हो चुकी थी। वे आपस में विभाजित थे। देश अथवा प्रजा, धर्म अथवा सच के लिए इनमें बलिदान की भावना ही नहीं थी। वे गुरूदेव जी के साथ कई बार युद्ध करके उन्हें पराजित करने के प्रयत्न कर चुके थे, पर जब से शाहजादा मुअज्जम पँजाब में आया था और गुरूदेव जी के साथ मित्रता का व्यवहार करके गया था, तब से पहाड़ी राजा सुलह-शान्ति का व्यवहार करते थे। इन्हीं दिनों में किसी भेंट के समय गुरूदेव जी ने उन्हें प्रेरणा दी और उन्हें समझाया कि हमें भारतवासियों को जातीय भेद और उससे उत्पन्न होने वाली घृणा ने पृथक कर दिया है अत: हम दलित दशा में पराधीनता के दुख सहन कर रहे हैं, अब मैं चाहता हूँ कि यह भेद मिटा दिया जाये। एक ऐसी रीति प्रचलित की जाये कि जो इसके द्वारा जन्म ले, वह जातीय भेद से मुक्त होकर एक मानववाद में आ जाये, तब कहीं जाकर अपने देश का भार दूर किया जा सकेगा। चाहिए यह कि परस्पर प्रेम बढ़े, सभी भाई भाई बन जायें और एक दूसरे पर प्राणों को न्योछावर कर दें। पूजा के लिए एक महाकाल अकाल की ही शरण ली जाये, जो कि सबके पूज्य है। फिर धर्म और आचरण की उच्चता को ही मनुष्य की परख समझा जाये। ऐसे व्यक्ति बलिदान कर सकेंगे। तुम इस देश के उद्धार के काम में सहयोग दो, चाहे इस काम के लिए अगुआ बन जाओ, पर राजाओं ने तुर्कों की शक्ति को अजेय समझा और सहयोग देने से इन्कार कर दिया।

आनन्दपुर का प्रथम युद्ध

खालसा पंथ के निर्माण से पर्वतीय नरेशों में बेचैनी बढ़ गई थी। उन्होंने समझा कि गुरूदेव जी खालसों की फौज़ बनाकर अपना राज्य कायम करना चाहते हैं। वे भूल गए कि खालसा तो सजाया गया था, पुरानी सामाजिक कमजोरियों को दूर करने, अत्याचारों से टकराने और सुरक्षा के लिए। असल में वे भूले नहीं थे, पर उनका अपना मन चोर था, इसलिए डरते थे। भंगाणी के युद्ध में हार कर उन्होंने गुरूदेव जी के साथ सन्धि कर ली थी। पर गुरूदेव जी की बढ़ती हुई शक्ति देखकर अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या कर रहे थे और गुरू जी को नीचा दिखाने का कोई न कोई बहाना ढूँढते रहते। जब उन्होंने यह सुना कि गुरू साहिब ने अपने सिहों समेत शिकार खेलते खेलते दो और पहाड़ी राजाओं - बलिया चन्द और आलमचन्द की फौजी टुकड़ियों के साथ झड़प हो गई जिसमें बलियाचन्द को तो प्राणों से हाथ धो बैठा और दूसरे की एक बांह तोड़कर मैदान से भगा दिया तब तो पहाड़ी राजाओं के पैरों के नीचे की ज़मीन खिसक गई। उन्हें अपना डर ही खाने लगा।

स्वयँ तो गुरू साहिब के विरूद्ध प्रयत्न कर ही चुके थे। कोई बात बनी नहीं थी। वरन् हर बार मुँह की खाई थी। अत: अब उन्होंने अपने मालिक औरंगज़ेब को चिट्ठी लिखकर उसको भड़काने की सोची।

गुरू साहिब के पुराने शत्रु भीमचन्द कहिलूरिये, वीरसिंघ जसवालिये और मदनपाल सिरमूरिये ने मिलकर पँजाब में औरंगज़ेब के राज्यपाल सरहन्द के सूबेदार के आगे विनती की कि उसकी प्रार्थना दिल्ली के बादशाह के पास भेज दी जाये। प्रार्थना पत्र में लिखा था कि हिन्दुओं और मुसलमानों से पृथक गुरू गोबिन्दसिंघ ने एक नया महजब बना लिया है। वे न केवल हिन्दू धर्म की ही जड़ उखाड़ना चाहते हैं वरन् मुगल सम्राट की भी सत्ता उलटना चाहते हैं। जब हमने गुरूदेव जी को इक्ट्ठे होकर इस मिशन से हटाने का प्रयत्न किया तो भंगाणी का युद्ध करके हमें पछाड़ दिया।

इस पत्र में केवल अपना ही रोना नहीं रोया था वरन् कुछ बातें जोड़ी गई थीं। यह भी लिखा गया था कि गुरूदेव जी पहाड़ी राजाओं को मुगल शासन के विरुद्ध लड़ने के लिए कहते हैं।

औरंगज़ेब को लिखित भेजने वाले अपने दरबारी द्वारा खालसा पंथ सजाये जाने समय गुरूदेव जी के भाषणों की खबर पहले ही मिल चुकी थी। एक मुसलमान इतिहासकार गुलाम मोहिउदीन के कथनानुसार इस दरबारी ने गुरू साहिब के भाषणों की सूचना देते हुए ऐसे लिखा - गुरू गोबिन्द सिंघ ने हिन्दुओं की जाति-पाति, वहम, भ्रम, रीति-रिवाज आदि को समाप्त करके सिक्खों को एक ही भाईचारे में गठित कर दिया है, जिसमें न कोई बड़ा है और न छोटा। एक ही बाटे में सभी जातियों को खाना खिलाया है। भले ही कुछ प्राचीन हठधर्मियों ने इस बात का विरोध किया। फिर भी लगभग बीस हजार पुरूष और महिलाओं ने गुरू साहिब के हाथों खंडे की धार का अमृत छका है। गुरूदेव जी ने सिक्खों को यह भी कहा है कि मैं अपने आप को गोबिन्द सिंघ तभी कहलवाऊँगा, जब चिड़ियों से बाज तुड़वाऊंगा और एक एक सिंघ दुश्मन के सवा-सवा लाख व्यक्तियों से टक्कर लेता दिखाई देगा।

औरंगज़ेब तो पहले ही क्रोध में था कि सिक्ख न तो दिलावर खां के काबू आए और न उसके पुत्र शहजादा मोअज़्ज़म के। पहाड़ी राजाओं की चिट्ठी पढ़कर तो उसे आग लग गई। उसी समय अपने दो पाँच हज़ारी जनरलों - पैदेखां और दीना बेग़ को हुक्म दिया कि वे पहाड़ी राजाओं की सहायता के लिए आनन्दपुर पर आक्रमण करें।

पहाड़ी राजाओं को चिट्ठी के उत्तर में यह कहा गया कि इस सारी हिमायती और फौज़ का खर्चा उन लोगों को झेलना होगा, जिन्होंने पत्र लिखा था। राजा लोग खर्चा उठाने को तुरन्त तैयार हो गये।

अन्ततः आनन्दपुर के समीप मुगल और पहाड़ी फौजें इक्ट्ठी हो गई। गुरू गोबिन्द सिंघ के सिक्ख तो पहले ही अमृत छककर आए थे। दुश्मन की फौजें देखकर उन्हें चाव चढ़ आया। उन्होंने यह चिन्ता बिल्कुल न की कि मुग़लों और पहाड़ियों की मिली-जुली फौजें उनसे कई गुणा अधिक है और पैंदेखां तथा दीना बेग़ जैसे अनुभवी जनरल उनकी फौजों की कमान संभाले हुए हैं। अकाल पुरूख पर भरोसा करके सिक्ख लड़ाई के मैदान में कूद पड़े। उनकी अगवाई करने के लिए गुरुदेव जी ने पाँच प्यारे नियुक्त किए और स्वयँ फौजों सहित रणभूमि में उतर आए।

खालसों ने गोलियों की वह अन्धाधुन्ध वर्षा की कि शत्रु दम तोड़ उठा। पैदेखां ने फौजों के हौसले बढ़ाने के लिए ऊँची आवाज में कहा - यह आपकी काफिरों के विरूद्ध मजहबी लड़ाई है। काफिरों को मारकर बहिश्त हासिल करो। लेकिन मौत के मुँह में कौन जाए। मज़हबी उकसाहट भी कुछ काम न कर सकी। आखिर पैदेखां ने गुरूदेव जी को ललकारा कि आओ, अकेले ही दो हाथ करके लड़ाई की हार जीत का फैसला कर लें। यह ललकार सुनकर गुरू साहिब अपना घोड़ा पैदेखां के निकट ले आए और कहा - पठान पैदेखां, मैं हूँ गोबिन्द सिंघ, तेरा दुश्मन। पैदेखां ने कसम खाकर कहा - मैं पठान नहीं, यदि सिक्खों के गुरू का सिर उतार कर न रखदूँ। अहँकार में आकर गुरू साहिब से कहा - ले तू कर पहला वार।

गुरूदेव जी ने कहा,- मैंने आज तक पहला वार किसी पर नहीं किया, न करूँगा। सुरक्षा हेतु मैं लड़ता रहा हूँ और लड़ता रहूँगा। इसलिए पहला वार तू कर।

पैदेखां ने अपने घोड़े को घुमाकर गुरू साहिब के घोड़े के सामने ला खड़ा किया। एक सैंकेड में पैदेखां ने तीर निकाल मारा जो गुरुदेव जी की कनपटी के पास से होता हुआ सूँ करता निकल गया। गुरूदेव जी ने ताना देते हुए कहा, बड़ा भारी तीरंदाज दिखाई देता है। चल, एक बार और वार कर देख। तेरे अरमान न रह जाएं कि गुरू को मारने का अवसर न मिला।

पैदे खां ने दूसरा तीर भी निकाल मारा, पर वह भी निशाने पर न बैठा।

शर्मिन्दा होकर पैदेखां पीछे मुड़ने लगा तो गुरूदेव जी ने ललकार - ठहर जा, कहाँ जाता है गीदड़। अब मेरी बारी है। मेरा हाथ भी देखता जा।

पैदे खाँ का सारा शरीर लोहे के कवच के साथ ढका हुआ था। केवल कान ही नंगे थे। गुरू साहिब ने कानों का निशाना ताड़कर ऐसा तीर मारा कि पैदे खां घोड़े से गिरकर मर गया।

यह देखकर दूसरे मुसलमान जनरल दीना बेग़ ने फौजों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। पैदे खाँ को मरता देखकर मुग़ल फौजें सिरधड़ की बाजी लगा कर आगे बढ़ीं और सिक्खों पर टूट पड़ीं। किन्तु सिक्खों के पैर न उखड़े। बल्कि सिक्ख फौजों ने दुश्मन का भारी जानी नुकसान किया। यह देखकर राजा भीमचन्द का पुत्र अजमेरचन्द मुग़ल और अपनी फौजों सहित भाग खड़ा हुआ। शेष पहाड़ी राजे भी भाग गए। अब तक दीना बेग भी जख्मी हो चुका था। उसने सोचा कि जिनके लिए वह लड़ने आया था - जब वही भाग निकले, तो वह व्यर्थ अपनी फौज़ का नुकसान क्यों कराए ? उसने फौजों को पीछे हटने की आज्ञा दी। दुश्मन को पीछे हटता देख सिक्ख फौजों के हौसले और बढ़ गये और वह उनका पीछा करते हुए रोपड़ पहुँच गए। पर गुरू साहिब ने सिक्खों से कहा कि सिक्खों की युद्ध मर्यादानुसार भागते हुए दुश्मन को नहीं मारना चाहिए। अतएव सिक्ख फौजें रोपड़ से वापस आ गई और उन्होंने भागते हुए मुगलों का और पीछा नहीं किया।

आनन्दपुर की पहली लड़ाई इस प्रकार सिक्खों की विजय के साथ समाप्त हुई। यह लड़ाई सन् 1700 ईस्वी में लड़ी गई थी, जब गुरू साहिब केवल 34 वर्ष के थे।

आनन्दपुर का द्वितीय युद्ध

यह जानकर कि औरंगजेब ने दस हजार शाही फौज़ का गिने-चुने सिक्खों के हाथों हार खाने का अपमान कब तक सहन करना है' गुरूदेव जी ने भी तैयारियाँ जारी रखीं। दर्शन करने के लिए आने वाले सिहों को हुकुम हुआ कि अपने साथ या तो कोई हथियार या घोड़े की सौगात लेकर आएँ। आनन्दपुर की लड़ाई में गुरूदेव जी की शानदार विजय का हाल सुनकर सिक्ख धूमधाम के साथ दर्शनों के लिए आनन्दपुर पहुँचे। कई हज़ार और नए सिक्ख सज गए। सिक्ख मिस्त्रियों ने गुरूदेव जी के तोशेखाने को बंदूकों, तलवारों और खन्जरों के साथ लबालब भर गया। सिक्के बारूद के भी ढ़ेर लग गए। पहाड़ी राजे तो पहले ही सहमे हुए थे। दिन-प्रतिदिन यह इक्ट्ठा होता देखकर तो उनकी जान खुश्क हो गई। उन्होंने औरंगज़ेब की चापलूसी करने की सोची। राजा अजमेर चन्द को तोहफे देकर दिल्ली भेजने का विचार बनाया।

किन्तु हन्डूर राजा भूपचन्द ने इस विचार का विरोध करते हुए कहा, "भाइयों, दिल्ली की ओर मुँह उठाये फिरने की बजाय अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो। यदि इक्ट्ठे होकर लड़ो तो मुट्ठी-भर सिक्खों को जीत लेना कठिन कार्य नहीं। मेरी बात मानो तो आनन्दपुर को घेर लो। इस तरह रसद बन्द होने के कारण सिक्खों का अन्न-पानी समाप्त हो जाएगा। स्वयँ भूखे मर जाएँगे। जो पहाड़ी राजा हमारे साथ न मिले, उसका हुक्का-पानी बन्द कर दो। सिक्खों के पुराने शत्रु रंगघड़ों और गूजरों को भी अपने साथ मिला लो, फिर सिक्खों की क्या मजाल!

यह बात सुनकर पहाड़ी राजाओं ने भूपचन्द का प्रस्ताव स्वीकार किया और आनन्दपुर के घेरे की तैयारियाँ होने लगीं। जम्मू, नूरपुर, मंडी, कुल्लू, कैंथाल, गुलेर, चम्बा, गढ़वाल और अन्य रियासतों के पहाड़ी राजे अपनी अपनी सेनायें लेकर पहुँच गए। राजा अजमेरचन्द ने इन फौजों का नेतृत्त्व सम्भाला।

आनन्दपुर के आसपास घेरा डालने से पूर्व गुरूदेव जी को एक चिट्ठी द्वारा कर भुगतान करने अथवा आनन्दपुर छोड़ने और उनका प्रभुत्त्व स्वीकार करने की पुरानी रट लगाई। गुरू साहिब ने उसी निडरता के साथ नकारात्मक उत्तर दिया जिस प्रकार एक बार पहले दिया था। यह बात 1701 की है।

इस समय आनन्दपुर में बहुत सिक्ख नहीं थे। पर जितने भी थे, उन्हें छोटे छोटे फौजी दस्तों में बाँट दिया गया। एक सौ फौजियों वाले एक दस्ते का नेतृत्त्व गुरू साहिब ने अपने सबसे बड़े पुत्र अजीत सिंह को सौंपा। आनन्दपुर में लौहगढ़ और फतेहगढ़ नाम के दो किलों को एक एक हज़ार सेना के साथभर कर दो और कमांडर उदय सिंघ और नाहर सिंघ के सुपुर्द किया गया। गुरू साहिब ने सेनाओं को आज्ञा दी कि किलों के अन्दर जमकर बैठे रहें। माझा प्रदेश के पाँच सौ नवयुवक गुरू साहब की सहायतार्थ पहुँच गए।

पहाड़ी फौजें टिड्डी-दल की भाँति आनन्दपुर के आसपास आ बैठीं। युद्ध शुरू हो गया। पहाड़ी राजाओं की तोपों से गोलियों की वर्षा होने लगी। राजा केशरीचन्द ने फतेहगढ़ के किले पर हल्ला बोल दिया। दोनों ओर से तीरों की झड़ी लग गई। सिक्खों ने शहर से बाहर निकल कर सामना किया। रंघड़ घबरा कर मैदान से भागने लगे। उनका नेता जगतउल्ला पहले दिन ही मर गया। अजीत सिंह ने दुश्मन के वह परखच्चे उड़ाये कि बाकियों को भी जोश आ गया। उन्होंने दुश्मन की कतारें साफ कर दीं। गुरू साहिब भी एक ऊँचे स्थान से तीर चलाते रहे। आखिर दुश्मन को पीछे हटना पड़ा। जगतउल्ला की लाश जमीन पर पड़ी रही। सिक्खों ने उस लाश को उठाने के सभी प्रयत्न असफल कर दिये। जब रात पड़ी तो दोनों सेनाएँ अपनी अपनी छावनियों में आ गई।

दूसरे दिन फिर आनन्दपुर के आसपास घेरा डाला गया। सिक्खों ने फिर आकर मुकाबला किया। इस तरह दो महीने तक आनन्दपुर का घेरा पड़ा रहा। एक रात जब किसी प्रकार से सफलता नहीं मिली तो पहाड़ी राजाओं ने एक और युक्ति सोची।

उन्होंने एक हाथी को शराब पिलाकर मस्त कर दिया। उसके माथे पर और आसपास लोह की संजो और माथे पर लोहे का तवा, सूंड में खण्डा बाँध दिये और आनन्दपुर के दरवाजे की ओर धकेल दिया जिससे दरवाजा टूट जाए और पहाड़ी फौजें किले के अन्दर जा सकें। मंडी का राजा कहता रहा कि गुरूदेव जी के साथ संधि के बिना काम नहीं चलेगा। पर उसकी किसी ने नहीं सुनी।

राजा केशरी चन्द को मस्त हाथी की सफलता पर इतना विश्वास था कि उसे घमण्ड में आकर डींग मारी -यदि रात से पहले पहले किला फतह न किया तो मैं बाप का बेटा नहीं। आखिर किले में सिक्ख हैं भी कितने? बस यही खिचड़ी में नमक के समान। उनका कोई अता-पता भी नहीं चलेगा।

दुनीचन्द मसन्द

पर्वतीय नरेशों द्वारा लौहगढ़ किले के द्वार को मस्त शराबी हाथी द्वारा टकरा कर तोड़ने की योजना गुप्तचर विभाग ने जब गुरूदेव जी को बताई गई तो उस समय दुनीचन्द मसंद अपने क्षेत्र के कुछ सिक्खों को साथ लेकर आया और गुरूदेव जी के चरणों में प्रणाम किया। दुनीचन्द

का शरीर साधारण व्यक्ति की अपेक्षा कुछ अधिक भारी डीलडौल वाला था, अतः गुरूदेव जी ने सहजभाव से उस समय कहा – हमारा हाथी भी आ गया है। हमारी ओर से दुनीचन्द पहाड़ियों के हाथी को परास्त करेगा। यह वाक्य सुनते ही दुनीचन्द भयभीत हो गया, उसके पसीने छूटने लगे। परन्तु वह गुरूदेव जी के समक्ष अपनी कायरता प्रकट नहीं कर पाया। उसने कुछ मुखी सिक्खों से सम्पर्क किया और कहा कि वह गुरूदेव जी से कहें कि मुझ से ऐसा कुछ नहीं होगा। कहाँ मैं मनुष्य कहाँ विशालकाय हाथी। श्रद्धावान सिक्खों ने उसे बहुत समझाया कि गुरू समर्थ हैं, उन्होंने स्वयँ सब कार्य करने हैं, बस तेरे को तो वह एक मान दिलवा रहे हैं। किन्तु भक्ति और श्रद्धाविहीन दुनीचन्द की समझ में यह बात नहीं आई। वह अपने साथ लाये हुए व्यक्तियों को अकेले में मिला और अर्धरात्रि को किले की दीवार फांदकर भागने की योजना बनाई। योजना अनुसार किले की दीवार में रस्सी लगाकर एक एक करके उसके साथी नीचे उतर गये। अन्त में दुनीचन्द जब उतरने लगा तो उसके भारी–भरकम शरीर के कारण रस्सी टूट गई और नीचे गिर गया। उसके साथी उसे उठाकर घर ले गये।

प्रातःकाल गुरूदेव जी को सिक्खों ने बताया कि वह कल वाला हाथी तो किले की दीवार फांदकर अपने साथियों सहित भाग गया है। तभी उनकी दृष्टि एक साधारण से युवक बचित्र सिंघ पर पड़ी और उन्होंने कहा – अब हमारा यह दुबला–पतला सैनिक हाथी के साथ भिड़ेगा। यह सुनते ही श्रद्धावान बचित्र सिंघ ने कहा – गुरूदेव जी बस आपकी कृपा दृष्टि होनी चाहिए। इस हाथी को तो मैं चींटी की तरह मसल के रख दूँगा। गुरूदेव जी प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे एक विशेष नागनी बरछा दिया और कहा – यह रहा तेरा शस्त्र जो तुझे सफलता प्रदान करेगा और जो कायर होकर भागा है, मौत तो उसे घर पर भी नहीं छोड़ेगी और ऐसा ही हुआ। दुनीचन्द को घर पर साँप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई।

उदय सिंघ और विचित्र सिंघ

गुप्तचर विभाग ने गुरूदेव जी को बताया कि आज किले के द्वार को तोड़ने की योजना राजा केसरीचन्द जसवालिया ने बनाई है और वही आज सभी पर्वतीय सैनिकों का नेतृत्त्व करेगा और उसने शपथ ली है कि मैं आज इस अभियान को सफलतापूर्वक सम्पूर्ण करके लौटूंगा और हमारी विजय निश्चित है, नहीं तो मैं नरेश कहलवाना त्याग दूँगा। इस पर गुरूदेव जी ने तुरन्त निकट खड़े भाई उदय सिंघ को बुलाकर कहा – आप इस केसरीचन्द से दो हाथ करेंगे और उसका अभिमान तोड़ेंगे। दोनों जवानों ने गुरूदेव जी को शीश झुका कर प्रणाम किया और युद्ध नीति के विपरीत आज लौहगढ़ किले का दरवाजा खोल दिया, उसमें से केवल दो योद्धा घोड़े पर सवार होकर बाहर निकले।

मस्त हाथी किले के दरवाजे की ओर चल पड़ा। पीछे पीछे विचित्र सिंघ को आशीष देकर भेजा। विचित्र सिंघ के हाथ में बरछा था। उसकी भुजाएँ फड़क रही थीं।

एक विचित्र दृश्य था। एक ओर पूरी तरह कवज से लैस मस्त हाथी, जिसके माथे पर लोहे का तवा और सूंड में दोधारी तलवार बंधी थी और दूसरी ओर केवल हाथ में बरछा लिये हुए एक साधारण आदमी। आदमी ही नहीं, वीरता का जीवित–जाग्त पुतला। आश्रय उसे केवल प्रभु का था और निश्चय उसे अपने गुरू पर।

विचित्र सिंघ ने बरछा उठाकर सीधा हाथी के माथे पर दे मारा। पता नहीं उसकी बाँहों में इतनी शक्ति कहाँ से आ गई। बरछे की नोक लोहे की तवियों को पार करती हुई, हाथी के माथे में चुभ गई। मस्त हाथी दर्द और पीड़ा से चिंघाड़ उठा। रक्त–रंजित हो गया और भी अधिक मस्त हो कर पीछे की ओर दौड़ पड़ा। पीछे चली आ रही पहाड़ी सेनाएँ हाथी के पैर के नीचे आकर कुचली गई। कइयों को हाथी की सूँड में लगे हुए खण्डे ने घायल कर दिया। भगदड़ मच गई। विचित्र सिंघ मस्त हाथी से टकराने के बाद गुरू साहिब के पास पहुँचा। गुरू साहिब ने उसकी शूरवीरता की प्रशंसा की।

इधर तो हाथी ने पहाड़ियों को चक्की में पड़े दानों की तरह दल दिया। उधर गुरू साहिब का हुक्म मानकर उदयसिंघ सूरमा राजा केशरी चन्द का सिर तलवार के एक ही झटके से काटकर गुरू साहिब के पास पहुँचा। गुरू साहिब ने उसे भी थपथपाया।

अब पहाड़ी फौजों की कमर टूट चुकी थी। खंडूर का राजा भी ज़ख्मी हो गया था। फौजें शिवालिक की पहाड़ियों की ओर भाग खड़ी हुई। जिससे पहाड़ियों में छिपकर जान बचा सकें। मैदान सिक्खों के हाथ रहा।

दूसरे दिन काँगड़ा के पहाड़ी राजा घमंड चन्द ने बची–खुची फौजों को लेकर पुनः हमला किया। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से पुनः हमला किया। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से जान की बाजी लग गई। अचानक ही घमंड चन्द गोली खाकर गिर पड़ा। घमंड चन्द की मौत ने पहाड़ी फौजों का दिल तोड़ दिया और वे रातों–रात आनन्दपुर से परे हटकर दूर जा रूके।

जब पहाड़ियों ने देखा कि लड़ाई से काम नहीं बनेगा और मस्त हाथी वाली नीति भी असफल रही तो एक और मक्कारी करने का विचार किया। गुरू साहिब को पम्मे पुरोहित द्वारा एक चिट्ठी भेजी और गऊ माता की कसम खाकर विनती की कि यदि आप एक या दो दिन के लिए ही आनन्दपुर छोड़कर और कहीं आस–पास चले जाएं तो हम आपको कुछ नहीं कहेंगे। आनन्दपुर से घेरा हटाकर अपने अपने घर चले जाएंगे। इस तरह लोगों के सामने हमारा निरादर भी न होगा और आपका भी कुछ नहीं बिगड़ेगा। आप फिर आनन्दपुर आ सकते हैं।

गुरू साहिब पहाड़ियों की कसमों और फरेबों को अच्छी तरह जानते थे। वह इन पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं करते थे। पर दोनों ओर का पर्याप्त नुकसान हो चुका था। सिक्खों ने गुरू साहिब को कहा कि और व्यर्थ खून क्यों बहाया जाए। आनन्दपुर छोड़कर फिर वापिस आने में क्या नुक्सान है।

गुरू साहिब ने अपने सिक्खों की बात मान ली। आनन्दपुर से बिल्कुल थोड़ी दूर परे कीरतपुर के समीप निरमोह के ऊँचे स्थान पर जा डेरे लगाये। कुछ एक सिक्ख आनन्दपुर की रक्षार्थ पीछे छोड़कर शेष वे अपने साथ ले गए। पहाड़ियों का वास्तविक मतलब यह था कि गुरू साहिब किसी प्रकार आनन्दपुर का किला छोड़कर बाहर आ जाएं, फिर उन पर विजय प्राप्त करना आसान होगा।

गुरू साहिब के बाहर निकलने की देर थी कि पहाड़ियों ने उन पर धावा बोल दिया। गऊ माता की कसम भूल गए। अब तक सरहिन्द के सूबेदार वज़ीद खाँ की फौजें भी उनके साथ आ मिली थीं। एकओर से गुरू साहिब को पहाड़ी फौजों और दूसरी ओर से वजीद खाँ की फौजों के विरूद्ध लड़ना पड़ गया। पर वे बिल्कुल नहीं घबराये। सिक्खों के हौसले ऊँचे थे। गुरूदेव जी के लिए तो वे इस प्रकार मरने को तैयार थे जिस प्रकार दीपक पर पतंगा। अपनी अल्पसंख्या की चिन्ता न करते हुए उन्होंने सिर-धड़ की बाजी लगा दी। लड़ाई दो दिन जारी रही।

एक मुग़ल तोपची को बुलाकर कहा गया कि "यदि वह ऊँचे स्थान पर बैठे गुरू साहिब पर निशाना बिठा दे तो उसे बड़ा भारी इनाम दिया जाएगा। तोपची बड़ा नामी निशानेदार माना जाता था। उसने सीध लगाकर तोप का गोला गुरू जी की ओर फेंका। गोला गुरू साहिब के चंवर झुलाने वाले सेवक पर जा गिरा और वह वहीं मर गया। गुरू साहिब बच गए। दूसरी बार तोप में गोला भरकर चलाने ही वाला था कि गुरू साहिब ने एक तीर ऐसा छोड़ा कि ठीक तोपची के आकर लगा और वह वहीं ढेर हो गया। दूसरे तीर के साथ गुरू साहिब ने तोपची का भाई भी, जो तोप चलाने में उसकी मदद कर रहा था, मार गिराया। गुरू साहिब ऐसे बांके तीरंदाज थे कि उनका निशाना कभी भी खाली नहीं गया था।

सतलुज नदी के किनारे दोनों दलों का घमासान युद्ध हुआ, जिसमें पहाड़ी राजाओं और शाही फौज़ का इतना नुकसान हुआ कि उन्हें पीछे हटना पड़ा। वज़ीद खाँ राजाओं से बहुत सारे पुरस्कार और भेंट लेकर वापिस सरहिन्द जा पहुँचा। पहाड़ियों ने अपने मन को तसल्ली देते हुए कहा - "भले गुरू हारा नहीं, फिर भी उसे आनन्दपुर तो छोड़ना ही पड़ा।" इस बात में ही वे अपनी विजय समझकर अपने अपने घर वापिस लौट गए। पर पहाड़ियों की यह तसल्ली भी शीघ्र ही समाप्त हो गई। कुछ देर वसाली ठहरकर गुरू गोबिन्द सिंघ फिर डंके की चोट से आनन्दपुर आ पहुँचे। राजा अज़मेरचन्द ने गुरू जी को बहुत तोहफे और भेंटे भेजकर सन्धि के लिए विनती की। बाकी पहाड़ी राजाओं ने भी सुलह सफाई कर ली। ऐसा लगता था कि कम से कम कुछ दिन के लिए तो अब सिक्खों को सुख की साँस लेना नसीब होगा।

भाई कन्हैया जी

मुगल सेना से आमने-सामने होकर कई दिन से युद्ध हो रहा था। दोनों पक्षों के सैनिक बुरी तरह से घायल होकर रणक्षेत्र में गिर रहे थे। ऐसे में एक सिक्ख उन घायलों को पानी पिलाकर पुन: सुरजीत कर रहा था। तब उसको कुछ सिक्खों ने पकड़ लिया और बाँधकर श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के समक्ष पेश किया और बताया कि आज हमने एक ऐसे व्यक्ति को पकड़ा है जो कि शत्रुओं से मिला हुआ है और उनके घायलों को जलपान करवा कर पुन: जीवनदान दे देता है।

यह आरोप सुनकर गुरूदेव जी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से बाँधे हुए सेवादार को पूछा - क्या यह बात सत्य है ? उत्तर में आरोपी जवान ने कहा - मेरा कार्य तो केवल जल पिलाना ही है, मैं तो केवल पीड़ितों को जल पिलाता हूँ, मुझे तो शत्रु अथवा मित्र की पहचान नहीं है क्योंकि मुझे सर्वत्र वह प्रभु ही दृष्टिगोचर होता है। यह सुनते ही गुरूदेव जी ने उनको गले से लगाया और कहा - वास्तव में आपने ही वह अमूल्य दृष्टि पाई है जो बड़े बड़े जपी, तपविस्यों को भी प्राप्त नहीं होती, आप अद्वैत में पहुँच गये हैं, यही ब्रह्म ज्ञान है और तुरन्त उनके बंधन खोलकर उनको मुक्त करते हुए कहा - आप यह सेवा जारी रखें और यह लीजिए मरहम पट्टी आप घायलों की प्राथमिक चिकित्सा भी किया करेंगे।

यह थे भाई कन्हैया जी।

आनन्दपुर साहिब का तृतीय युद्ध

सैद खान

लाहौर तथा सरहिन्द प्रान्तों की संयुक्त सेना की पराजय सुनकर सम्राट औरंगज़ेब बौखला गया। उसको जब पुन: पर्वतीय नरेशों द्वारा प्रार्थना पत्र मिला कि हमारी सहायता की जाए। तब उसने अपने वरिष्ठ सैनिक अधिकारियों का सम्मेलन बुलाया और उसने अपने जरनैलों को ललकारा और कहा - है कोई ऐसा योद्धा जो गुरू गोबिन्द सिंघ को पराजित करे और गिरफ्तार करके मेरे सामने लाये। यदि ऐसा कोई करके दिखा देगा तो उसे मुँह मांगा पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। इस घोषणा को सुनकर सब जरनैल शान्त थे किन्तु सैदखान कुछ दुविधा के पश्चात् उठा और उसने यह चुनौती स्वीकार कर ली। सम्राट ने उसे प्रत्येक प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया और उसको दिल्ली, सरहिन्द तथा लाहौर छावनियों से सेना लेकर आनन्दपुर पर आक्रमण करना था, इसके अतिरिक्त उसे हिमाचल के नरेशों द्वारा उनकी सैनिक सहायता तथा मार्गदर्शन

मिलना था।

सभी छावनियों से सेना आनन्दपुर पहुँचने में कुछ समय लगना था। इस बीच जरनैल सैदखान अपने बहनोई पीर बुद्धूशाह जी व बहन नसीरा बेगम को मिलने सढौर पहुँचा। उसने अपने पँजाब में आने के परियोजन के विषय में बताया कि मैं गुरू गोबिन्द सिंघ को गिरफतार करने आया हूँ। यह सुनते ही पीर जी व नसीरा बेगम ने कहा – भैया तुम बहुत भूल में हो, वह कोई साधारण पुरूष नहीं जैसे कि तुम जानते ही हो, हम लोग उनके पक्के श्रद्धालू हैं पिछले भंगाणी के युद्ध में हमने अपने 700 मुरीदों के साथ उनका साथ दिया था। परिणामस्वरूप मेरे दो बेटे और एक देवर शहीद हो गये थे। यह सुनते ही सैदखान ने प्रश्न किया कि आपने एक काफिर का क्यों साथ दिया ? उत्तर में नसीरा बेगम ने कहा – दृष्टि अपनी अपनी है। हमें वह अल्लाह में अभेद पुरूष दृष्टिगोचर होते हैं जो निरपेक्ष हैं। इस पर पीर जी ने उसे बताया, कि गुरूदेव जी तो सच्चे दरवेश हैं। वह किसी रियासत (राज्य) के स्वामी नहीं, न ही उनका लक्ष्य किसी राज्य की स्थापना करना है। उन्होंने कई बार पर्वतीय नरेशों को पराजित किया है परन्तु किसी की एक इंच भूमि पर भी कब्जा नहीं किया। वह किसी से भी शत्रुता नहीं रखते। वह तो केवल अत्याचार और अन्याय के शत्रु हैं। असहाय व दीन दुखियों की सहायता करना उनका एकमात्र लक्ष्य है। अतः उनके एक संकेत पर उनके अनुयायी अपने को न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते हैं। ऐसे उच्च आचरण वाले महान व्यक्तित्त्व के संग बिना किसी आधार के शत्रुता डालना किसी के भी हित में नहीं हो सकता।”

पीर जी के वचन सुनकर सैदखान का मन दुविधा में हो गया क्योंकि पीर जी ने स्वयँ अपने बेटों और भाई की उनके लिए कुर्बानी दी थी। सैदखान यह सच्चाई जानकर गम्भीर हो गया और उसके मन में गुरूदेव जी के प्रत्यक्ष दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वह अपने नेत्रों से उन्हें देखकर अपनी जिज्ञासा शान्त करना चाहता था। अतः उसने निर्णय लिया कि युद्ध तो अवश्य ही होगा, यदि वह पूर्ण पुरूष हैं तो मुझे रणक्षेत्र में घमासान युद्ध के समय में मिले।

सैदखान अपनी सेना को युद्ध नीति के अन्तर्गत तैनात कर ही रहा था कि अवकाश के समय में शतरंज खेलने बैठ गया। तभी उसकी चारपाई में एक बाण आकर लगा, निकाल कर देखने से पता चला कि यह आनन्दगढ़ दुर्ग में से आया है और इसके पीछे सोना मड़ा हुआ है। अधिकारियों ने उसे बताया कि केवल गुरू गोबिन्द सिंघ के तीर के पीछे ही सोना होता है, उसका कारण यह है कि यदि शत्रु मर जाता है तो उसके कफन के लिए स्वर्ण राशि प्रयोग में लाओ। यदि शत्रु घायल अवस्था में है तो उसका उपचार किया जाए। यह सब सुनकर सैदखान प्रसन्न भी हुआ और आश्चर्य में पड़ गया और विचारने लगा कि मैं तो दुर्ग से लगभग एक कोस की दूरी पर हूँ। यहाँ मेरे पर अचूक निशान लगना एक करामात ही है। तभी दूसरा बाण उसकी दूसरी ओर चारपाई के पाये में लगा, उसमें एक कागज़ का टुकड़ा बंधा हुआ था, जल्दी से उसे खोलकर पढ़ा गया। उस पत्र में लिखा था – सैदखान यह करामात नहीं करतब है। इस पर सैदखान और उसके साथी विचारने लगे, माना दूर तक मार करने वाला बाण चलाना करतब है परन्तु हमारे हृदय की जानना यह तो करामात ही है।

अगले दिन युद्ध प्रारम्भ हो गया, जब दोनों पक्षों की सेनाएं आमने-सामने होकर भयकंर युद्ध में उलझी हुई थी। तभी गुरू गोबिन्द सिंघ जी घोड़े पर सवार होकर रणक्षेत्र में बढ़ने लगे। उन्हें सिक्खों ने रोका और कहा – आप युद्ध में न जाएं क्योंकि आगे घमासान युद्ध हो रहा है और शत्रु की सेना बड़ी संख्या में हैं परन्तु गुरूदेव जी ने उन्हें सांत्वना दी और कहा – हमें कोई याद कर रहा है, इसलिए जाना ही पड़ेगा और गुरूदेव जी अपनी सैनिक टुकड़ी लेकर आगे बढ़ते हुए सैदखान के समक्ष पहुँच गये। सैदखान ने गुरूदेव जी को जब प्रत्यक्ष देखा तो देखता ही रह गया, वह उनका तेजस्व सहन नहीं कर पाया, तभी गुरूदेव जी ने उसे ललकारा और कहा – सैदखान मैं आ गया हूँ। अब मुझ पर शस्त्र उठाओ और करो वार। सैदखान विचलित हो उठा। उसके कुछ क्षण आत्म संघर्ष में व्यतीत हुए। वह कोई निर्णय नहीं ले पा रहा था। किन्तु उसने अनुभव किया मैंने जो माँगा था वह पूर्ण हुआ, अब मुझे क्या चाहिए। वह जल्दी से घोड़े से उतरा और गुरूदेव जी के सम्मुख होकर अस्त्र-शस्त्र उनके चरणों में रख दिये और कहने लगा कि जैसा सुना था वैसा ही पाया है और उनके घोड़े की रकाब में सिर धर दिया। गुरूदेव जी ने उसकी नम्रता और जीवन में क्रान्ति देखकर, घोड़े से उतरकर उसे गले से लगाया और कहा – मांगो क्या चाहते हो ? यह दृश्य देखकर युद्ध रूक गया और दोनों पक्षों की सेनाएं विस्मय अवस्था में आ गई। गुरूदेव जी ने उसे रणभूमि में ही शाश्वत ज्ञान दिया और वह वर्दी वहीं उतार, कहीं दूर अदृश्य हो गया।

युद्ध रूक गया किन्तु सेना की कमान रमज़ान ख़ान ने सम्भाली। एक रात अंधेरे में गुरूदेव जी के सैनिकों ने दुर्ग से बाहर आकर जो धावा बोला तो उसमें न केवल रमजान बल्कि दूसरे जरनैल पैंदेखान तथा दीना बेग भी मारे गये। यह पराजय की घटनाएं जब औरंगज़ेब के पास पहुँची तो वह आग-बबूला हो गया। गुरूदेव जी के हाथों अपनी सेना की पराजय अथवा अवमानना उसे किसी मूल्य पर सहन नहीं थी।

आनन्दपुर की चौथी और अन्तिम लड़ाई

औरंगज़ेब को यह सूचनाएं मिलने पर बहुत चिन्ता हुई कि गुरू गोबिन्द सिंघ जी के साथ लड़ने को गई मुगल सेनाओं के सरदार भी गुरूदेव जी के मुरीद बन जाते हैं और बादशाही सेनाओं के विरूद्ध गुरूदेव जी के पक्ष में लड़ने लग जाते हैं। उसने दिल्ली, लाहौर, सरहिन्द, जम्मू व सुल्तान के नवाबों को लिखा कि वे मिलकर आनन्दपुर पर हमला करें और गुरू गोबिन्द सिंघ जी को कैद कर लें। यदि गुरूदेव जी को जिन्दा न पकड़ा जा सके तो उन का सिर काट कर लाया जाए। उसने बहुत सख्ती से लिखा कि इस काम में रत्ती भर भी विलम्ब न किया जाए।

औरंगज़ेब का आदेश पहुँचने के उपरान्त, सरहिन्द के नवाब वज़ीद ख़ान ने पहाड़ी राजाओं को कहा कि वे इस बार आनन्दुपर पर हमले केसमय मुग़ल सेनाओं का साथ दें। बिलासपुर के अमीर चन्द, काँगड़ा के घुमंड चन्द, जसवाल के वीर सिंह व कुल्लू, कैबल, मंडी, जम्मू, नूरपुर, चंबा, गुलेर, श्री नगर (गढ़वाल), बुशहर, बिजरवाल और डढवाल आदि के राजाओं ने मुगल सेनाओं का साथ देने का फैसला किया। रंघड़ और गुजर भी इस सांझे महाज में शामिल हो गये। लाहौर का जबर्दस्त ख़ान व सरहिन्द का वजीद ख़ान हजारों की सेना लेकर आनन्दपुर की ओर चल पड़े। दिल्ली और कश्मीर से भी मुगल सेनाएं इधर चल पड़ीं। पठानी क्षेत्र में धर्म युद्ध का नारा भी लगाया गया, इसलिए होती मर्दान क्षेत्र तक के मुसलमान कश्मीर की सेना के साथ शामिल हुए।

जब औरंगजेब के आदेशों की सूचना, श्री गोबिन्द सिंघ जी को मिली थी तो उन्होंने भी माझा, मालवा व दुआबे के गाँवों में सिक्खों को संदेश भेज दिये थे। जब सिक्खों को पता चला कि मुगल और पहाड़ी सेनाएं एक बार फिर आनन्दपुर का नामोनिशान मिटाने के इरादे से लड़ाई करने की तैयारियाँ कर रही हैं तो वे गाँवों से संगठित हो कर शस्त्र घोड़े, रसद व अन्य जरूरी सामान लेकर आनन्दपुर को चल पड़े। जो सिक्ख आनन्दपुर में पहुँचे उनकी संख्या मात्र दस हजार के करीब थी।

दिल्ली, सरहिन्द की मुगल फौज, पहाड़ी राजाओं की सेना और गूजरों, रंघड़ों का काफिला - इन सब का रोपड़ के पास मेल हुआ। उधर से लाहौर व कश्मीर की मुगल सेना और जेहादियों का जत्था लूटमार करने के चाहवान सतलुज के इस छोर पर एकत्र हो गया। अत: शत्रु दलों के एक हिस्से ने सूर्योदय की दिशा से दूसरे हिस्से ने सूर्यास्त की दिशा से मई 1704 (22 ज्येष्ठ संवत 1761) को आनन्दपुर पर आक्रमण कर दिया।

गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने पाँच पाँच सौ सिक्खों के पाँच जत्थे केसगढ़, अनंदगढ़, होलगढ़, लोहगढ़ और अंगमपुरे में तैनात कर दिये और आनन्दपुर नगर को खाली करने का आदेश दे दिया गया।

शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए सिक्खों ने नगर से बाहर आ कर मोर्चाबंदी की। दोनों दिशाओं से तोपों के गोले, बंदूकें इत्यादि गोलियों और तीरों की वर्षा होती रही। सिक्ख सेना ऊँचे स्थान पर थी और शत्रु दल नीचे स्थान पर, इसलिए उस स्थान से सिक्खों ने तीरों व बंदूकों के साथ शत्रु का अच्छा-खासा नुक्सान किया। तलवार चलाने में तो सिक्ख विशेष तौर पर माहिर थे। जब सिक्खों के जत्थे विरोधी दल के समीप पहुँच जाते, तो सिक्ख तलवारें ले कर दुश्मन पर भूखे शेरों की तरह टूट पड़ते। जहाँ सिक्ख धार्मिक भावना के अधीन अत्याचार व जुल्म के विरूद्ध लड़ रहे थे, वहीं मुगल और पहाड़ी सिपाही केवल वेतन की खातिर लड़ रहे थे। अत: यह स्वाभाविक था कि मुगलों व पहाड़िये सिपाहियों में सिक्खों जैसा जोश, भावना व बुलंदी की भावना नहीं थी। कुछ ही दिनों में मुगलों को यह बात साफ हो गई कि यदि वे सिक्खों के हाथों ऐसे ही अपने जवान मरवाते रहे तो आनन्दपुर को जीता नहीं जा सकेगा। अत: लगभग एक महीना तक ऐसे लड़ने के पश्चात उन्होंने पीछे हटकर, रणनीति अपनाते हुए आनन्दपुर को चारों ओर से घेरने का फैसला किया ताकि न तो और सिक्ख आनन्दपुर में पहुँच सकें और न ही दुर्गो में सिक्खों को रसद पानी पहुँच सके और अंतत: वे भूख के दुख से तंग आकर हथियार फेंक दें।

शत्रु द्वारा आनन्दपुर की नाकाबंदी करने से सिक्खों को रसद पानी की कठिनाई प्रतीत होने लगी। जो नहरी पानी, नाले से आनन्दपुर को चलताथा, मुगलों ने उसका मुँह भी मोड़ दिया। दुश्मन की इन चालों को असफल करने के लिए सिक्खों ने छापे मार जत्थे तैयार कर लिये। बेखबर बैठी मुगल फौज़ पर सिक्ख अचानक हमला बोलते, कई शत्रुओं को मौत के घाट उतार कर और रसद व जंगी सामान लूट कर वापिस आ जाते। ये छापे भिन्न भिन्न समय पर मारे जाते थे - कभी दोपहर को, कभी आधी रात को और कभी रात के पिछले पहर में जिस समय शत्रु आराम से सोए होते थे। सिक्खों के इन छापों के कारण शत्रु दल भी सावधान हो गया। रसद व जंगी सामान पीछे हटाकर सुरक्षित स्थान पर रखा जाने लगा। नगर का घेरा और कस दिया गया।

शत्रु के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप सिक्ख बहुत मुश्किल में फँस गए। जो कुछ शहर में व सिक्खों के किलों में था, सिक्ख उसी पर गुजारा करने लगे। पर अंदर रसद पानी बहुत ज्यादा नहीं था। आनन्दपुर एक तो छोटा सा नगर था, फिर दस हजार शूरवीर सिक्खों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी, रसद पानी की जरूरत थी। भले ही घरों से चलते समय सिक्ख हथियार और हर प्रकार का जरूरी सामान लेकर चले थे, पर किसी को इस बात की आशा भी न थी कि कई महीने लगातार इसी सामान पर गुजारने पड़ जायेंगे। ज्यों-ज्यों घास और अन्न में कमी होती गई, सभी की दैनिक रसद घटने लगी। हालात यहाँ तक पहुँच गए कि एक एक मुट्ठी चनों से सिक्खों को पेट की ज्वाला को शांत करना पड़ा। कई बार चने भी न मिलते। भूख के कष्ट से हाथी व घोड़े भी तड़प तड़प कर मरने लगे।

यदि सिक्ख किले में भूख और बीमारियों के कारण मुसीबत में फँसे पड़े थे तो बाहर शत्रु दल भी सुखी नहीं था। दो लाख बावर्दी सेना के अतिरिक्त, जेहादी और लूटमार करने को आएं झुंड भी लाखों की संख्या में थे। अत: मुगल सेनाओं ने अन्न और धन की प्राप्ति के लिए चारों ओर गाँवों के गाँव उजाड़ दिये। गाँवों की महिलाओं व बच्चों पर भी अत्याचार किए गए। फसलों और घरों के उजाड़ व महिलाओं के अपमान के कारण लोगों में हा-हाकार मच गई। लोग शाही सेनाओं व पहाड़ियों के साथ नफरत करने लग गए। वजीद ख़ान और जबरदस्त ख़ान ने नीति अपनाने की राह को चुना। एक दूत गुरू जी की ओर भेजा ताकि वे अधीनता को स्वीकार कर लें। पर सिक्खों ने उस दूत को गुरूदेव जी तक पहुँचन ही ने दिया और वह गुरू जी को बिना मिले ही वापिस आ गया।

मुगल सेनाओं ने एक जोरदार हमला भी किया पर सिक्खों ने उनकी दीवार तक भी न आने दिया। भूखे पेट सिक्ख जैकारे गजाते हुए लड़ रहे थे।

मुगल सरदार बहुत उदासीन थे। घेरा लम्बा चल रहा था और सिक्ख थे कि अधीनता को स्वीकार करने की जगह पर लड़ने मरने को तैयार बैठे थे। मुगल व पहाड़ी सेना को पहले गर्मी, वर्षा व बाढ़ के कारण बहुत परेशानी हुई थी। अब सर्दियाँ समीप आ रही थीं। वह भी इस जंग से पीछा छुड़वाना चाहते थे। उन्होंने (मुगल सरदारों और पहाड़ी राजाओं) ने श्री गुरू गोबिन्द सिंघ को धोखे से फँसाने की चाल चली। उन का विचार था कि यदि भूख और बीमारियों के सताये हुए सिक्ख, किलों से बाहर आ जाएं तो उन को मारा या पकड़ा जा सकता है। उन्होंने दो दूत एक ब्राह्मण व एक सैयद गुरू जी की ओर भेजे। उन्होंने गुरू जी को एक पत्र दिया जिस में मुगल सरदारों ने कुरान और पहाड़ी राजाओं ने गीता की कसमें खा कर कहा कि यदि सिक्ख किला छोड़ जायेंगे तो उनको कुछ नहीं कहा जाएगा और वे (मुगल सरदार) औरंगज़ेब को मुँह दिखलाने योग्य हो जायेंगे।

गुरू देव ने सिक्खों को समझाया कि यह सब शत्रु की रणनीतियाँ व चालें हैं, पर रसद पानी की तंगी के कारण और इतने लम्बे जंग में सिक्ख शूरवीरों की संख्या कम हो जाने के कारण वे कमजोर दिल हो गये थे। उन्होंने गुरू जी से कहा कि जब दुश्मन धार्मिक पुस्तकों की कस्में खाते हैं तो किला छोड़ कर जाने में कोई हर्ज नहीं। सतगुरू जी ने ऐसा निराला खेल खेला कि शत्रुओं की पोल खुल गई। उन्होंने कुछ बैलगाड़ियों, खच्चरों व गधों पर फट्टे पुराने कपड़े, टूटे जूते व कूड़ा आदि लाद लिया। इस सब को कीमती सामान की भान्ति ढक कर शहर से बाहर भेजा गया। आधी रात का समय था और खच्चरों व गधों के सिरों पर जलती हुई मशालें बाँध रखी थी। जब शत्रुओं ने सोचा कि कीमती सामान बैलगाड़ियों और खच्चरों पर लादकर बाहर भेजा जा रहा है तो उन्होंने उस माल पर हमला बोल दिया। जब फट्टे पुराने कपड़े तथा कूड़ा हाथ लगा तो उनको बहुत शर्मिंदगी उठानी पड़ी।

कुछ समय और बीत गया। सिक्खों को दुश्मन से घिरे हुए और शत्रु के साथ लड़ते हुए छः-सात महीने बीत गए थे। खुराक की कमी ने उन के शरीर ढीले कर दिए थे और उनको कई प्रकार की बीमारियाँ लग गई थी। इन दिनों में ही औरंगज़ेब की एक चिट्ठी आई जिस के साथ उसने दस्तखत किया हुआ कुरान भी भेजा था। उसने उस चिट्ठी में कई आश्वासन दिये हुए थे और लिखा था कि आप (गुरू जी) शाही प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए यह जरूरी है कि आप आनन्दपुर खाली कर दें। जब सिक्ख योद्धाओं को औरंगज़ेब की चिट्ठी का पता चला तो उन्होंने मिलकर गुरूदेव जी के सम्मुख विनती की कि सभी की भलाई की खातिर गुरूदेव जी जंग बंदी का ऐलान कर दें और सिक्ख सैनिकों सहित नगर खाली कर दें। गुरूदेव जी ने सब को धैर्य बँधवाया और समझाया कि यह भी दुश्मन की एक नई चाल है।

उधर गुरूदेव जी ने प्रमुख सिक्खों के साथ हालात के बारे में विचार विमर्श किया। सिक्खों के पास रसद पानी तो खत्म हो चुका था। पेड़ों के छिलके भी पीस पीस कर खा लिए गए थे। इस दशा में और अधिक लम्बे समय के लिए लड़ा नहीं जा सकता था। अतः यह फैसला किया गया कि दुश्मन के साथ रण में जूझ लिया जाए। जो सिक्ख जूझते हुए सुरक्षित ही स्थान पर चले जाएं वे तैयारी करके फिर मुगल हाकिमों के विरूद्ध संघर्ष छेड़ें।

नगरवासियों की महिलाएं व बच्चे तो जंग आरम्भ होने से पहले ही बाहर भेजे जा चुके थे परन्तु गुरूदेव जी का सारा परिवार आनन्दपुर में ही था। दूरदर्शी गुरूदेव जी ने शत्रु के हर तरह के धोखे और चालों को दृष्टि में रखते हुए छोटे साहिबजादों, पत्नी और माता जी की सुपरदारी अलग अलग सिक्खों को कर दी ताकि प्रत्येक सिक्ख अपनी अपनी जिम्मेवारी के प्रति सजग रहें। गुरूद्वारों की सेवा सम्भाल के लिए उदासी सिक्ख भाई गुरबख्श को आनन्दपुर में स्थाई तौर पर रहने की आज्ञा की।

आनन्दगढ़ का त्याग

सन् 1704 ईस्वी 20 दिसम्बर की मध्य रात्रि का समय, पँजाब में शीत ऋतु यौवन पर थी। बाहर हड्डियाँ जमा देने वाली सर्दी क्योंकि दो दिन से घनघोर वर्षा हो रही थी और अभी भी बूँदाबाँदी हो रही थी। आनन्दपुर में सन्नाटा था। कोसों तक फैले मुगलों के शिविरों में मौन व्याप्त था। सँसार सो रहा था किन्तु आनन्दगढ़ किले के अन्दर कुछ हलचल थी।

कोई अपना माल-धल लुटा रहा था, अमूल्य वस्तुओं को अग्नि भेंट करके अथवा भूमि में गाढ़ कर। गुरू गोबिन्द सिंह की आनन्दपुर के किले में यह अन्तिम रात्रि थी। कल प्रातः न जाने वह कहाँ होंगे और उनके बच्चे कहाँ?

आनन्दपुर छोड़ने से पहले वह बिल्कुल खाली होकर, हल्का होकर जाना चाहते थे। सभी कुछ स्वाहा करके। जो अग्नि सम्भाल न सके, उसे धरती के सुपुर्द करके, जिससे शत्रु के नापाक हाथ इन चीज़ों को छू न सकें, इसकी दुर्गति न हो।

आधी रात बीतने को आई। तारों के हल्के हल्के प्रकाश में कुकुरमुत्ता की भान्ति सीधी और लम्बा, ऊँचा, घुटनों को छूने वाली लम्बी सुडौल बाहों वाला, छाती तनी हुई एक ईश्वरीय चेहरा किले से बाहर निकला। मर्द अगंमड़ा गुरू गोबिन्द सिंह आनन्दपुर छोड़ कर जा रहा था।

आगे आगे दो सूरमा थे। दाहिनी ओर मोहकम सिंह और साहिब सिंह, पीछे पीछे गुरू साहिब के दो बड़े लाल - साहिबज़ादा अजीत सिंह

और साहिबजादा जुझार सिंह, दोनों के हाथों में तीर कमान थे। इनके पीछे भाई हिम्मतसिंह, सिक्का बारूद और तोप का तोड़ा कन्धों पर उठाये आ रहा था। उसके साथ साथ गुलाब राय, श्याम सिंघ और गुरूदेव जी के अन्य संगी-साथी चल रहे थे। अन्तिम लाईन में थे गुरू के नौकर-चाकर और पाँच एक सौ भूख से सताये हुए सिक्ख। गुरूदेव जी की माता छोटे दो साहिबजादों के साथ सबसे पहले रवाना की जा चुकी थीं। उन्हीं के साथ गुरू साहिब की धर्मपत्नियाँ सुन्दरी जी और साहिब कौर जी भी चली गई थी।

यह लोग आनन्दपुर से कहाँ जा रहे थे। यह तो शायद उन्हें भी पता न था। जा रहे थे अकाल पुरूष के भरोसे। स्वाभिमान के बदले ताज, तख्त ठुकराने वाले व्यक्तियों का वह काफ़िला बिना मंजिल का पता लगाये निकल पड़ा। इनका हर कदम मंजिल था।

चौथा (चतुर्थ) अध्याय

आनन्दपुर से प्रस्थान

अभी गुरू साहिब सरसा नदी के इस पार ही थे कि भोर हो गई। इसी अमृतकाल में हर रोज आनन्दगढ़ में 'आसा जी दी वार' का दीवान सजा करता था। गुरू साहिब और सिक्ख भक्ति में जुड़ जाया करते थे और कीर्तन का रस लेते। इस समय प्रभु से ध्यान लगाने की आदत पक्की होने के कारण सिक्खों को कुछ खोया-खोया सा अनुभव हुआ। कई सालों में आज पहली बार वे 'आसा जी दी वार' का समय टालने पर मजबूर हुए थे। गजों की दूरी पर बैठी दुश्मन की फौजों से बचकर वे चुपचाप जा रहे थे। कीर्तन करना दुश्मन को बुलाकर मुसीबत मोल लेना था। पर इस टोले का सरदार वह व्यक्ति था जिसकी नज़रों में अकाल पुरूष की बन्दगी के सामने दुनिया की सब चीज़ें व्यर्थ थी। गुरू गोबिन्द सिंह भौतिक वस्तुओं, राज-रजवाड़े, धन-दौलत और अपनी जान को भी त्याग सकते थे पर प्रभु का नाम नहीं। यह गुरू नानक की आरम्भिक देन थी और सभी गुरूओं की धर्म-मर्यादा।

शत्रु के आक्रमण की कोई चिन्ता न करके गुरू साहिब ने आज्ञा दी कि नित्य की भान्ति आसा जी दी वार होगी। वह प्राण हथेली पर रख कर घूमने वाला विचित्र व्यक्तियों का जत्था सरसा नदी के किनारे भक्ति रस में डूब गया।

सरसा नदी की जल-तरंगों ने जो अनहद नाद सुना, वह कुछ इस प्रकार था –

'जलस तुहि। थलस तुहि। नादिस तुहि। नदस तुहि।
ज़मी तुहि। जमा तुहि। मकहीं तुहि। मकां तुहि।
जतस तुहि। व्रतस तुहि। गतस तुहि। पतस तुहि।
तुहि तुहि। तुहि तुहि। तुहि तुहि। तुहि तुहि।'

बरसती गोलियों की छाया के नीचे किया गया यह कीर्तन गुरू गोबिन्द सिंह के आत्मिक झुकाव और रूहानी मूल्यों का भौतिक फर्जो पर प्रभावी होने का सच्चा और ऊँचा नमूना प्रस्तुत किया।

गाय और कुरान की कसमें उठा कर गुरू साहिब को सही सलामत आनन्दपुर से निकल जाने का भरोसा दिलाने वालों को जब पता लगा कि गुरू गोबिन्द सिंह अपने परिवार और सिक्खों सहित सिरसा नदी के किनारे पहुँच गए हैं तो वे सारे कौल, इकरार और कसमें भूल गए। एक ओर तो आनन्दपुर शहर पर हल्ला बोला और उसे बुरी तरह लूटा और दूसरी ओर सिक्खों के पीछे सेना डाल दी। सिरसा पार करते करते कई झड़पें हुई, जिसमें कई सिक्ख मारे गए। कई नदी में फिसल कर गिर पड़े। पाँच सौ में से केवल चालीस सिक्ख बचे जो गुरू साहिब के साथ रोपड़ के समीप चमकौर की गढ़ी में पहुँच गए। साथ दो बड़े साहिबजादे भी थे। इस गड़बड़ी में गुरू साहिब के दो छोटे साहिबजादे माता जी सहित गुरू साहिब से बिछुड़ गए। माता सुन्दरी और माता साहिब कौर, भाई मनी सिंह के साथ दिल्ली की ओर चले गए। जिसे जिधर मार्ग मिला, चल पड़ा।

गुरू साहिब ने अपनी माता और दोनों छोटे पुत्रों को एक सिक्ख को सौंपते हुए आज्ञा दी कि यदि किसी कारण से बिछड़ जाएं तो उन्हें दिल्ली पहुँचा दिया जाए। गड़बड़ में जब वे सचमुच गुरू महाराज से बिछड़े तो उस सिक्ख ने समीप के अपने गाँव में उन्हें ठहराने का फैसला किया और सोचा कि जब कुछ शान्ति हो जाएगी तो उन्हें दिल्ली भेज दिया जाएगा।

चमकौर का युद्ध

कीरतपुर से लगभग चार कोस की दूरी पर सरसा नदी है। जिस समय सिक्खों का काफिला इस बरसाती नदी के किनारे पहुँचा तो इसमें भयंकर बाढ़ आई हुई थी और पानी जोरों पर था। इस समय सिक्ख भारी कठिनाई में घिर गए। उनके पिछली तरफ शत्रु दल मारो-मार करता आ रहा था और सामने सरसा नदी फुंकारा मार रही थी, निर्णय तुरन्त लेना था। अत: श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने कहा – कुछ सैनिक यहीं शत्रु को युद्ध में उलझा कर रखों और जो सरसा पार करने की क्षमता रखते हैं वे अपने घोड़े सरसा के बहाव के साथ नदी पार करने का प्रयत्न करें। ऐसा ही किया गया। भाई उदय सिंह तथा जीवन सिंह अपने अपने जत्थे लेकर शत्रु के साथ भिड़ गये। इतने में गुरूदेव जी सरसा नदी पार करने में सफल हो गए। किन्तु सैकड़ों सिंघ सरसा नदी पार करते हुए मौत का शिकार हो गए क्योंकि पानी का वेग बहुत तीखा था। कई तो पानी के

बहाव में बहते हुए कई कोस दूर बह गए। पौष माह के दिन थे, जाड़े ऋतु की वर्षा, नदी का बर्फीला ठंडा पानी, इन बातों ने गुरूदेव जी के सैनिकों के शरीरों को सुन्न कर दिया। इसी कारण शत्रु सेना ने सरसा नदी पार करने का साहस नहीं किया।

सरसा नदी पार करने के पश्चात् 40 सिक्ख दो बड़े साहिबजादे अजीत सिंह तथा जुझार सिंह के अतिरिक्त गुरूदेव जी स्वयँ कुल मिलाकर 43 व्यक्तियों की गिनती हुई। नदी के इस पार भाई उदय सिंह तथा जीवन सिंह मुगलों के अनेकों हमलों को पछाड़ते रहे ओर वे तब तक वीरता से लड़ते रहे जब तक उनके पास एक भी जीवित सैनिक था और अन्ततः वे दोनों जत्थेदार युद्ध भूमि में गुरू आज्ञा निभाते और कर्त्तव्य पालन करते हुए वीरगति पा गये। इस भयंकर उथल-पुथल में गुरूदेव जी का परिवार उनसे बिछुड़ गया। भाई मनी सिंह जी के जत्थे में माता साहिब कौर जी व माता सुन्दरी कौर जी दो टहल सेवा करने वाली दासियां थी। दो सिक्ख भाई जवाहर सिंह तथा धन्ना सिंह जो दिल्ली के निवासी थे, यह लोग सरसा नदी पार कर पाए, यह सब हरिद्वार से होकर दिल्ली पहुँचे। जहाँ भाई जवाहर सिंह इनको अपने घर ले गया। दूसरे जत्थे में माता गुजरी जी छोटे साहबज़ादे जोरावर सिंघ और फतेह सिंघ तथा गँगा राम ब्राह्मण ही थे, जो गुरू घर का रसोईया था। इसका गाँव खेहेड़ी यहां से लगभग 15 कोस की दूरी पर मौरिंडा कस्बे के निकट था। गँगा राम माता गुजरी जी व साहिबज़ादों को अपने गाँव ले गया।

गुरूदेव जी अपने चालीस सिक्खों के साथ आगे बढ़ते हुए दोपहर तक चमकौर नामक क्षेत्र के बाहर एक बगीचे में पहुँचे। यहाँ के स्थानीय लोगों ने गुरूदेव जी का हार्दिक स्वागत किया और प्रत्येक प्रकार की सहायता की। यहीं एक किलानुमा कच्ची हवेली थी जो सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इसको एक ऊँचे टीले पर बनाया गया था। जिसके चारों ओर खुला समतल मैदान था। हवेली के स्वामी बुध चिन्द ने गुरूदेव जी से आग्रह किया कि आप इस हवेली में विश्राम करें। गुरूदेव जी ने आगे जाना उचित नहीं समझा। अतः चालीस सिक्खों को छोटी छोटी टुकड़ियों में बाँट कर उनमें बचा खुचा असला बाँट दिया और सभी सिक्खों को मुकाबले के लिए मोर्चो पर तैनात कर दिया। अब सभी को मालूम था कि मृत्यु निश्चित है परन्तु खालसा सैन्य का सिद्धान्त था कि शत्रु के समक्ष हथियार नहीं डालने केवल वीरगति प्राप्त करनी है। अतः अपने प्राणों की आहुति देने के लिए सभी सिक्ख तत्पर हो गये। गरूदेव अपने चालीस शिष्यों की ताकत से असंख्य मुगल सेना से लड़ने की योजना बनाने लगे। गुरूदेव जी ने स्वयं कच्ची गढ़ी (हवेली) के ऊपर अट्टालिका में मोर्चा सम्भाला। अन्य सिक्खों ने भी अपने अपने मोर्चे बनाए और मुगल सेना की राह देखने लगे।

उधर जैसे ही बरसाती नाला सरसा के पानी का बहाव कम हुआ। मुग़ल सेना टिड्डी दल की तरह उसे पार करके गुरूदेव जी का पीछा करती हुई चमकौर के मैदान में पहुँची। देखते ही देखते उसने गुरूदेव जी की कच्ची गढ़ी को घेर लिया। मुग़ल सेनापतियों को गाँव वालों से पता चल गया था कि गुरूदेव जी के पास केवल चालीस ही सैनिक हैं। अतः वे यहाँ गुरूदेव जी को बन्दी बनाने के स्वप्न देखने लगे। सरहिन्द के नवाब वजीद ख़ान ने भोर होते ही मुनादी करवा दी कि यदि गुरूदेव जी अपने आपको साथियों सहित मुग़ल प्रशासन के हवाले करें तो उनकी जान बख्शी जा सकती है। इस मुनादी के उत्तर में गुरूदेव जी ने मुग़ल सेनाओं पर तीरों की बौछार कर दी। इस समय मुकाबला चालीस सिक्खों का हज़ारों (असंख्य) की गिनती में मुग़ल सैन्यबल के साथ था। इस पर गुरूदेव जी ने भी तो एक-एक सिक्ख को सवा-सवा लाख के साथ लड़ाने की सौगन्ध खाई हुई थी। अब इस सौगन्ध को भी विश्व के समक्ष क्रियान्वित करके प्रदर्शन करने का शुभ अवसर आ गया था।

22 दिसम्बर सन् 1704 को सँसार का अनोखा युद्ध प्रारम्भ हो गया। आकाश में घनघोर बादल थे और धीमी धीमी बूंदाबांदी हो रही थी। वर्ष का सबसे छोटा दिन होने के कारण सूर्य भी बहुत देर से उदय हुआ था, कड़ाके की शीत लहर चल रही थी किन्तु गर्मजोशी थी तो कच्ची हवेली में आश्रय लिए बैठे गुरूदेव जी के योद्धाओं के हृदय में।

कच्ची गढ़ी पर आक्रमण हुआ। भीतर से तीरों और गोलियों की बौछार हुई। अनेक मुग़ल सैनिक हताहत हुए। दोबारा सशक्त धावे का भी यही हाल हुआ। मुग़ल सेनापतियों को अविश्वास होने लगा था कि कोई चालीस सैनिकों की सहायता से इतना सबल भी बन सकता है।

सिक्ख सैनिक लाखों की सेना में घिरे निर्भय भाव से लड़ने-मरने का नाटक खेल रहे थे। उनके पास जब गोला बारूद और बाण समाप्त हो गए किन्तु मुग़ल सैनिकों की गढ़ी के समीप भी जाने की हिम्मत नहीं हुई तो उन्होंने तलवार और भाले का युद्ध लड़ने के लिए मैदान में निकलना आवश्यक समझा। सर्वप्रथम भाई हिम्मत सिंघ को गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि वह अपने साथियों सहित पाँच का जत्था लेकर रणक्षेत्र में जाकर शत्रु से जूझे। तभी मुग़ल जरनैल नाहर ख़ान ने सीढ़ी लगाकर गढ़ी पर चढ़ने का प्रयास किया किन्तु गुरूदेव जी ने उसको वहीं बाण से भेद कर चित्त कर दिया। एक और जरनैल ख्वाजा महमूद अली ने जब साथियों को मरते हुए देखा तो वह दीवार की ओट में भाग गया। गुरूदेव जी ने उसकी इस बुजदिली के कारण उसे अपनी रचना में मरदूद करके लिखा है।

सरहिन्द के नवाब ने सेनाओं को एक बार इक्ट्ठे होकर कच्ची गढ़ी पर पूर्ण वेग से आक्रमण करने का आदेश दिया। किन्तु गुरूदेव जी ऊँचे टीले की हवेली में होने के कारण सामरिक दृष्टि से अच्छी स्थिति में थे। अतः उन्होंने यह आक्रमण भी विफल कर दिया और सिंहों के बाणों की वर्षा से सैकड़ों मुग़ल सिपाहियों को सदा की नींद सुला दिया। सिक्खों के जत्थे ने गढ़ी से बाहर आकर बढ़ रही मुग़ल सेना को करारे हाथ दिखलाये। गढ़ी की ऊपर की अट्टालिका (अटारी) से गुरूदेव जी स्वयँ अपने योद्धाओं की सहायता शत्रुओं पर बाण चलाकर कर रहे थे। घड़ी भर खूब लोहे पर लोहा बजा। सैकड़ों सैनिक मैदान में ढेर हो गए। अन्ततः पाँचों सिक्ख भी शहीद हो गये। फिर गुरूदेव जी ने पाँच सिक्खों का दूसरा जत्था गढ़ी से बाहर रणक्षेत्र में भेजा। इस जत्थे ने भी आगे बढ़ते हुए शत्रुओं के छक्के छुड़ाए और उनको पीछे धकेल दिया और शत्रुओं का भारी जानी नुक्सान करते हुए स्वयँ भी शहीद हो गए। इस प्रकार गुरूदेव जी ने रणनीति बनाई और पाँच पाँच के जत्थे बारी बारी रणक्षेत्र

में भेजने लगे। जब पाँचवा जत्था शहीद हो गया तो दोपहर का समय हो गया था।

सरहिन्द के नवाब वज़ीद ख़ान की हिदायतों का पालन करते हुए जरनैल हदायत ख़ान, इसमाईल खान, फुलाद खान, सुलतान खान, असमाल खान, जहान खान, खलील ख़ान और भूरे ख़ान एक बारगी सेनाओं को लेकर गढ़ी की ओर बढ़े। सब को पता था कि इतना बड़ा हमला रोक पाना बहुत मुश्किल है। इसलिए अन्दर बाकी बचे सिक्खों ने गुरूदेव जी के सम्मुख प्रार्थना की कि वह साहबजादों सहित युद्ध क्षेत्र से कहीं ओर निकल जाएं। यह सुनकर गुरूदेव जी ने सिक्खों से कहा – 'तुम कौन से साहिबजादों (बेटों) की बात करते हो, तुम सभी मेरे ही साहबजादे हो' गुरूदेव जी का यह उत्तर सुनकर सभी सिक्ख आश्चर्य में पड़ गये। यह सुनकर गुरूदेव जी के बड़े सुपुत्र अजीत सिंह के भुजदण्ड फड़क उठे। वह पिता जी के पास जाकर अपनी युद्धकला के प्रदर्शन की अनुमति माँगने लगे। गुरूदेव जी ने सहर्ष उन्हें आशीष दी और अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने को प्रेरित किया। साहिबजादा अजीत सिंह के मन में कुछ कर गुजरने के वलवले थे, युद्धकला में निपुणता थी। बस फिर क्या था वह अपने चार अन्य सिक्खों को लेकर गढ़ी से बाहर आए और मुगलों की सेना पर ऐसे टूट पड़े जैसे शार्दूल मृग-शावकों पर टूटता है। अजीत सिंह जिधर बढ़ जाते, उधर सामने पड़ने वाले सैनिक गिरते, कटते या भाग जाते थे। पाँच सिंघों के जत्थे ने सैंकड़ों मुगलों को काल का ग्रास बना दिया।

अजीत सिंघ ने अविस्मरणीय वीरता का प्रदर्शन किया, किन्तु एक एक ने यदि पचास पचास भी मारे हों तो सैनिकों के सागर में से चिड़िया की चोंच भर नीर ले जाने से क्या कमी आ सकती थी। साहिबजादा अजीत सिंह को छोटे भाई साहिबज़ादा जुझार सिंघ ने जब शहीद होते देखा तो उसने भी गुरूदेव जी से रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा मांगी। गुरूदेव जी ने उसकी पीठ थपथपाई और अपने किशोर पुत्र को रणक्षेत्र में चार अन्य सेवकों के साथ भेजा। गुरूदेव जी जुझार सिंघ को रणक्षेत्र में जूझते हुए, को देखकर प्रसन्न होने लगे और उसके युद्ध के कौशल देखकर जयकार के ऊँचे स्वर में नारे बुलन्द करने लगे – जो बोले, सो निहाल, सत् श्री अकाल। जुझार सिंघ शत्रु सेना के बीच घिर गये किन्तु उन्होंने वीरता के जौहर दिखलाते हुए वीरगति पाई। इन दोनों योद्धाओं की आयु क्रमश 18 वर्ष तथा 14 वर्ष की थी। वर्षा अथवा बादलों के कारण सांझ हो गई, वर्ष का सबसे छोटा दिन था, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, अंधेरा होते ही युद्ध रूक गया।

गुरू साहिब ने दोनों साहिबजादों को शहीद होते देखकर अकाल-पुरूष के समक्ष धन्यवाद (शुकराने) की प्रार्थना की और कहा – 'तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागे मेरा'। शत्रु अपने घायल अथवा मृत सैनिकों के शवों को उठाने के चक्रव्यूह में फँस गया, चारों ओर अंधेरा छा गया। इस समय गुरूदेव जी के पास सात सिक्ख सैनिक बच रहे थे और वह स्वयँ कुल मिलाकर आठ की गिनती पूरी होती थी। मुग़ल सेनाएं पीछे हटकर आराम करने लगी। उन्हें अभी सन्देह बना हुआ था कि गढ़ी के भीतर पर्याप्त संख्या में सैनिक मौजूद हैं।

रहिरास के पाठ का समय हो गया था अत: सभी सिक्खों ने गुरूदेव जी के साथ मिलकर पाठ किया तत्पश्चात् गुरूदेव जी ने सिक्खों के चढ़दीकला में रहकर जूझते हुए शहीद होने के लिए प्रोत्साहित किया। सभी ने शीश झुका कर आदेश का पालन करते हुए प्राणों की आहुति देने की शपथ ली किन्तु उन्होंने गुरूदेव जी के चरणों में प्रार्थना की कि यदि आप समय की नज़ाकत को मद्देनज़र रखते हुए यह कच्ची गढ़ीनुमा हवेली त्याग कर आप कहीं और चले जाएं तो हम बाजी जीत सकते हैं क्योंकि हम मर गए तो कुछ नहीं बिगड़ेगा परन्तु आपकी शहीदी के बाद पंथ का क्या होगा ? इस प्रकार तो श्री गुरू नानक देव जी का लक्ष्य सम्पूर्ण नहीं हो पायेगा। यदि आप जीवित रहे तो हमारे जैसे हज़ारों-लाखों की गिनती में सिक्ख आपकी शरण में एकत्र होकर फिर से आपके नेतृत्त्व में संघर्ष प्रारम्भ कर देंगे। गुरूदेव जी तो दूसरों को उपदेश देते थे – जब आव की आउध निदान बनै, अति ही रण में तब जूझ मरौ। फिर भला युद्ध से वह स्वयँ कैसे मुँह मोड़ सकते थे ? गुरूदेव जी ने सिंहों को उत्तर दिया – मेरा जीवन मेरे प्यारे सिक्खों के जीवन से मूल्यवान नहीं, यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मैं तुम्हें रणभूमि में छोड़कर अकेला निकल जाऊँ। मैं रणक्षेत्र को पीठ नहीं दिखा सकता, अब तो वह स्वयँ दिन चढ़ते ही सब से पहले अपना जत्था लेकर युद्धभूमि में उतरेंगे। गुरूदेव जी के इस निर्णय से सिक्ख बहुत चिन्तित हुए। वे चाहते थे कि गुरूदेव जी किसी भी विधि से यहाँ से बचकर निकल जाएं ताकि लोगों को भारी संख्या में सिंह सजा कर पुन: संगठित होकर, मुगलों के साथ दो दो हाथ करें।

सिक्ख भी यह मन बनाए बैठे थे कि सतगुरू जी को किसी भी दशा में शहीद नहीं होने देना। वे जानते थे कि गुरूदेव जी द्वारा दी गई शहादत इस समय पंथ के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होगी। अत: भाई दया सिंह जी ने एक युक्ति सोची और अपना अन्तिम हथियार आजमाया। उन्होंने इस युक्ति के अन्तर्गत सभी सिंहों को विश्वास में लिया और उनको साथ लेकर पुन: गुरूदेव जी के पास आये। कहने लगे – 'गोबिन्द सिंह जी, अब गुरू खालसा (पाँच प्यारे) परमेश्वर रूप होकर, आपको आदेश देते हैं कि यह कच्ची गढ़ी आप तुरन्त त्याग दें और कहीं सुरक्षित स्थान पर चले जाएं क्योंकि इसी नीति में पंथ खालसे का भला है। गुरूदेव जी ने पाँच प्यारों का आदेश सुनते ही शीश झुका दिया और कहा –मैं अब कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता क्योंकि मुझे अपने गुरू की आज्ञा का पालन करना ही है।

गुरूदेव जी ने कच्ची गढ़ी त्यागने की योजना बनाई। दो जवानों को साथ चलने को कहा। शेष पाँचों को अलग अलग मोर्चो पर नियुक्त कर दिया। संगत सिंघ जिस का डील-डौल (कद-बुत) तथा रूपरेखा गुरूदेव जी के साथ मिलती थी, उसे अपना मुकुट (ताज) पहनाकर अपने स्थान अट्टालिका पर बैठा दिया कि शत्रु भ्रम में पड़ा रहे कि गुरू गोबिन्द सिंह स्वयँ हवेली में हैं, किन्तु उन्होंने निर्णय लिया कि यहाँ से प्रस्थान करते समय हम शत्रुओं को ललकारेगें क्योंकि चुपचाप (शान्त) निकल जाना कायरता और कमजोरी का चिन्ह माना जाएगा और उन्होंने ऐसा ही किया।

देर रात गुरूदेव जी अपने दोनों साथियों दया सिंह तथा मानसिंह सहित गढ़ी से बाहर निकले, निकलने से पहले उनको समझा दिया कि हमे मालवा क्षेत्र की ओर जाना है और कुछ विशेष तारों की सीध में चलना है। जिससे बिछुड़ने पर फिर से मिल सकें। इस समय बूंदाबांदी थम चुकी थी और आकाश में कहीं कहीं बादल छाये थे किन्तु बिजली बार बार चमक रही थी। कुछ दूरी पर अभी पहुँचे ही थे कि बिजली बहुत तेजी से चमकी। दयासिंघ की दृष्टि रास्ते में बिखरे शवों पर पड़ी तो साहिबज़ादा अजीत सिंह का शव दिखाई दिया, उसने गुरूदेव जी से अनुरोध किया कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं अजीत सिंह के पार्थिव शरीर पर अपनी चादर डाल दूं। उस समय गुरूदेव जी ने दया सिंह से प्रश्न किया आप ऐसा क्यों करना चाहते हैं। दयासिंघ ने उत्तर दिया कि गुरूदेव, पिता जी आप के लाड़ले बेटे अजीत सिंह का यह शव है। गुरूदेव जी ने फिर पूछा क्या वे मेरे पुत्र नहीं जिन्होंने मेरे एक संकेत पर अपने प्राणों की आहुति दी है? दया सिंह को इस का उत्तर हाँ में देना पड़ा। इस पर गुरूदेव जी ने कहा यदि तुम सभी सिंहों के शवों पर एक एक चादर डाल सकते हो, तो ठीक है, इसके शव पर भी डाल दो। भाई दया सिंह जी गुरूदेव जी के त्याग और बलिदान को समझ गये और तुरन्त आगे बढ़ गये। योजना अनुसार गुरूदेव जी और सिक्ख अलग-अलग दिशा में कुछ दूरी पर चले गये और वहाँ से ऊँचे स्वर में आवाजें लगाई गई, पीर-ऐ-हिन्द जा रहा है किसी की हिम्मत है तो पकड़ ले और साथ ही मशालचियों को तीर मारे जिससे उनकी मशालें नीचे कीचड़ में गिर कर बुझ गई और अंधेरा घना हो गया। पुरस्कार की लालच में शत्रु सेना आवाज की सीध में भागी और आपस में भिड़ गई। समय का लाभ उठाकर गुरूदेव जी और दोनों सिंघ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे और यह नीति पूर्णत: सफल रही। इस प्रकार शत्रु सेना आपस में टकरा-टकरा कर कट मरी।

अगली सुबह प्रकाश होने पर शत्रु सेना को भारी निराशा हुई क्योंकि हजारों (असंख्य) शवों में केवल पैंतीस शव सिक्खों के थे। उसमें भी उनको गुरू गोबिन्द सिंह कहीं दिखाई नहीं दिये। क्रोधातुर होकर शत्रु सेना ने गढ़ी पर पुन: आक्रमण कर दिया। असंख्य शत्रु सैनिकों के साथ जूझते हुए अन्दर के पाँचों सिक्ख वीरगति पा गए।

भाई संगत सिंह जी भी शहीद हो गये जिन्होंने शत्रु को झांसा देने के लिए गुरूदेव जी की वेश-भूषा धारण की हुई थी। भाई संगत सिंह के शव को देखकर मुग़ल सेनापति बहुत प्रसन्न हुए कि अन्त में गुरू मार ही लिया गया। परन्तु जल्दी ही उनको मालूम हो गया कि यह शव किसी अन्य व्यक्ति का है और गुरू तो सुरक्षित निकल गए हैं। मुग़ल सत्ताधारियों को यह एक करारी चपत थी कि कश्मीर, लाहौर, दिल्ली और सरहिन्द की समस्त मुग़ल शक्ति सात महीने आनन्दपुर का घेरा डालने के बावजूद भी न तो गुरू गोबिन्द सिंघ जी को पकड़ सकी और न ही सिक्खों से अपनी अधीनता स्वीकार करवा सकी। सरकारी खजाने के लाखों रूपय व्यय हो गये। हज़ारों की संख्या में फौजी मारे गए पर मुग़ल अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त न कर सके।

चमकौर की रणभूमि से माछीवाड़ा क्षेत्र में

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी तथा उनके दो अन्य सेवकों ने शत्रु सेना को झांसा देकर माछीवाड़ा क्षेत्र की ओर रूख किया। रात अंधेरी, लम्बी तथा वर्षा के कारण अति शीतल थी। राह दिखाई नहीं देता था। हर दिशा में कांटेदार झाड़ियाँ थी। अत: गुरूदेव जी का जूता कीचड़ में कहीं खो गया। किन्तु आप किसी अदम्य साहस के साथ आगे बढ़े जा रहे थे। कभी कभी आकाश में बिजली चमकने मात्र से आप का मार्गदर्शन हो रहा था। उबड़-खाबड़ क्षेत्रों को पार करते समय दोनों सेवक भी बिछुड़ गये। किन्तु आप रातभर चलते ही गये, जब तक आपको माछीवाड़ा गाँव दिखाई न दिया। अब आप शत्रु सेना से दूर गाँव के बाहर एक बगीचे में थे। यह बाग गुलाबे मसंद (मिशनरी) का था। इस बाग में एक रहट वाला कुआं था, जिसे अमृत बेला में बगीचे का माली चला रहा था। आपने कुएं पर हाथ मुँह धोए, तभी उस माली ने आपको पहचान लिया। माली ने आपको इस कुएं के निकट बने हुए छप्पड़ में विश्राम करने का आग्रह किया। आपने रहट की पुरानी टिंड को अपना सिरहाना बनाया और उस माली की चटाई पर लेट गये। माली अपने स्वामी गुलाबे मसंद को सूचित करने चला गया कि आपके बगीचे में गुरू गोबिन्द सिंह पधारे हैं। इतने में बिछड़े हुए सिंह आपकी खोज करते हुए वहाँ पहुँच गये। उन्होंने मिलकर अभिनंदन करने के लिए जयकार की - वाहे गुरू जी का खालसा, वाहे गुरू जी की फतेह। गुरूदेव जी सतर्क हुए। उन्होंने भी उत्तर में जयकारा बुलंद किया। गुलाबा मसंद सूचना पाते ही आपकी अगुवाई करने उपस्थित हुआ वह सभी को अपने घर ले गया और गुरूदेव जी का भव्य स्वागत किया किन्तु मुग़ल प्रशासन से भयभीत भी हो रहा था कि शत्रुओं को भनक न मिल जाये कि गुरूदेव जी मेरे पास पधारे हैं। अत: उसने गुरूदेव जी तथा सिक्खों को घर के तहखाने में निवास करवाया और श्रद्धा से सेवा में जुट गया।

इस गाँव में गुरूदेव जी के दो मुसलमान सेवक गनीखान तथा नबीखान रहते थे। ये लोग घोड़ों का व्यापार करते थे। उन्होंने गुरूदेव जी को कई बार घोड़े बेचे थे और प्राय: गुरूदेव जी से मिलते रहते थे इसलिए उनके व्यक्तित्त्व से बहुत प्रभावित थे अत: उन पर श्रद्धा भक्ति रखने लगे थे। जब मुग़ल सैन्यबल ने गाँव गांव की तलाशी अभियान चलाया तो गुलाबे मसंद को चिन्ता हुई। गुरूदेव जी भी उसे किसी कठिनाई में नहीं डालना चाहते थे, इसलिए उन्होंने गनीखान और नबीखान को बुला भेजा। इन दोनों भाइयों ने गुरूदेव जी को संकट की घड़ी में हर प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दिया और अपनी सेवाएं अर्पित की। सभी ने मिलकर एक योजना बनाई और युक्ति से गुरूदेव जी को किसी सुरक्षित स्थान पर ले चलने के कार्य में जुट गये।

उन दिनों उच्च के पीर मुसलमानों में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त थे। यह मुसलमान सूफी फकीर लम्बी दाढ़ी तथा केश रखते थे परन्तु केशों

का जूड़ा नहीं करते थे अपितु उन्हें खुला, जटाएं रूप में रखकर ऊपर पगड़ी बाँधते थे और नीले वस्त्र धारण करते थे। प्राय: अपने मुरीदों से मिलने अथवा लोगों से भेंट इत्यादि लेने, गाँवों अथवा देहातों में भ्रमण के लिए निकला करते थे। इन पीरों को श्रद्धावश उनके श्रद्धालु पलंग पर बिठाकर पलंग स्वयं एक गाँव से दूसरे गाँव में अन्य मुरीदों (शिष्यों) के पास पहुँचा देते थे। उच्च नाम का नगर सिन्ध प्रान्त (पाकिस्तान) जिला बहावलपुर में है।

गुरूदेव जी जी को उच्च के पीर की तरह वेश-भूषा धारण करवा दी गई और उन्हें उसी प्रकार पलंग पर बिठाकर माछीवाड़े से दूर किसी सुरक्षित स्थान के लिए चल पड़े। गुरूदेव जी के पलंग के आगे से गनीखान तथा नबीखान ने उठाया तथा पीछे से भाई दया सिंह तथा मानसिंघ जी ने उठा लिया और एक अन्य सेवक को हाथ में मोर पंख का चंवर थमा दिया, जो वह गुरूदेव जी के ऊपर झूलाने लगा। स्थानीय लोग गनीखान, नबीखान के कथन पर पूर्ण भरोसा कर रहे थे क्योंकि वे यहाँ के गणमान्य व्यक्ति थे। अत: लोग गुरूदेव जी को उच्च का पीर जानकर बहुत अदब से सजदा करते थे।

माछीवाड़े से लगभग 20 कोस दूर एक फौजी चौकी पर शाही सेना ने गुरूदेव जी को संदेह में रोक लिया और गुरूदेव जी से अधिकारियों ने बातचीत की जिसका उत्तर गुरुदेव जी ने फारसी भाषा में दिया किन्तु अधिकारी दुविधा में था। एक तरफ उच्च का पीर दूसरी तरफ 'गुरू जी का बचकर निकल जाना, उसकी नौकरी को संकट में डाल सकता था। अत: वह आश्वस्त होना चाहता था। उसने प्रस्ताव रखा कि आप हमारे यहाँ भोजन करें। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा - मैंने चिल्ला लिया हुआ है अर्थात मैंने उपवास धारण किया हुआ है परन्तु मेरे मुरीद (शिष्य) ये आपके साथ भोजन करेंगे। ऐसा ही किया गया जब भोजन करने लगे तो भाई दया सिंह जी ने गुरू आज्ञा अनुसार अपनी लघु कृपाण भोजन (पुलाव) में डालकर गुरू मन्त्र उच्चारण किया, 'तौह प्रसादि, भ्रम का नाश' और सहर्ष भोजन कर लिया। चलते समय थाली में से कुछ अंश रूमाल में बाँध लिया। इस बीच सैनिक अधिकारी ने निकट के गाँव सलोहपुर से काजी पीर मुहम्मद को गुरूदेव जी की पहचान करने के लिए बुला लिया। यह काजी साहब, गुरूदेव जी को बचपन से फारसी भाषा का अध्ययन करवाते थे। जब काजी साहब ने गुरुदेव जी को पहचाना तो उसने दोहरे अर्थो वाली भाषा में कहा - हाँ मैं इन्हें जानता हूँ यह मेरे भी पीर हैं। इन्हें जाने दो।

इस प्रकार गुरूदेव जी विकट परिस्थिति से सहज ही निकल गये। परन्तु गनीखान नबीखान के मन में एक भ्रान्ति उत्पन्न हुई कि चलो हम तो मुसलमान हैं किन्तु गुरूदेव जी के अन्य सेवक तो मुसलमान नहीं, उन्होंने भी वही भोजन किया जो हमें करवाया गया। क्या गुरू समर्थ नहीं हैं ? तभी गुरुदेव जी ने पलंग रोकने के लिए कहा और भाई दया सिंह को आदेश दिया जो भोजन आप रूमाल में बाँध कर लाये हैं, वह इन भाई के सामने खालो। ऐसा ही किया गया रूमाल खोलते ही उसमें भीनी-भीनी हलवे की सुगंध आने लगी और पुलाव का हलवा दृष्टिमान हुआ। गनीखान नबीखान आश्चर्य चकित हुए। गुरूदेव जी ने स्पष्ट करते हुए कहा - मैं भविष्य के लिए अपने अनुयाइयों को कर्मयोगी बनाने का खेल खेल रहा हूँ। यदि मैं आत्मिक शक्ति अथवा दैवी शक्ति का प्रयोग कर कोई कार्य करता हूँ तो वह कोई महत्त्व नहीं रखता। इस से जनसाधारण कहेंगे कि गुरूदेव जी तो समर्थ थे, वह सभी कुछ आत्मबल से कर लेते थे किन्तु हम साधारण मनुष्य हैं। अत: हमारे बस का नहीं खतरों से खेलना। इसलिए मैं समर्थ होते हुए भी एक साधारण मनुष्य की तरह वह सभी कार्य करता हूँ और उसे व्यवहारिक रूप देता हूँ, जिससे जनसाधारण को प्रेरणा मिले।

माछीवाड़े क्षेत्र से पलायन

श्री गोबिन्द सिंघ जी उच्च के पीर के वेष में शाही सेना को झांसा देकर लुधियाना के निकट आलमगीर स्थान पर पहुँचे। आप जी ने यहां से गनीखान और नबीखान को बहुत आदरपूर्वक विदा किया और उनको एक यादगारी पत्र लिख कर दिया, जिस में उनके द्वारा की गई अमूल्य सेवा का वर्णन है। आलमगीर क्षेत्र में भाई मनी सिंघ जी का बड़ा भाई नगाहियां सिंघ अपने परिवार सहित आप का स्वागत करने आया और उसने आपकी कई दिन सेवा की। यहां पर बहुत से सिक्ख आप की सेवा में हाज़िर हो गये। अब आप शत्रु से प्रभावित क्षेत्र से दूर जाना चाहते थे जिससे पुन: सिक्खों को संगठित किया जा सके। इस कार्य के लिए भाई नगाहियां सिंघ जी ने आपको एक सुन्दर घोड़ा भेंट किया। घोड़े पर सवार होकर आप जी अपने काफिले सहित अपने अनुयाईयों को मिलने के लिए कई गांव का भ्रमण करते हुए रायकोट पहुँचे। यहाँ का स्थानीय जागीरदार 'राय कल्ला' मुसलमान होते हुए भी आप का श्रद्धालु और विश्वासपात्र मित्र था। अत: गुरूदेव जी इसके यहां उसके प्रेम को देखते हुए ठहर गये। अब आप शत्रु के प्रदेश से बिल्कुल बाहर आ चुके थे, इसलिए आपने आसपास के देहातों में बसने वाले सिक्खों को संदेश भेजे और उनको एकत्र होने को कहा - गुरूदेव जी का संदेश मिलते ही सिक्खों में खुशी की लहर दौड़ गई वे लोग गुरूदेव जी के दर्शनों को उमड़ पड़े। यहीं गुरूदेव जी को सूचना मिली कि आपकी माता जी तथा आप के दोनों छोटे बच्चों को सरहिन्द के नवाब वजीदखान ने बन्दी बना लिया था किन्तु विस्तृत जानकारी का अभाव था। गुरूदेव जी ने राय कल्ला को कहा कि किसी कुशल व्यक्ति को सरहिन्द भेजो जो विस्तारपूर्वक समस्त घटनाक्रम के सत्य तथ्यों सहित पता लगा कर जल्दी वापिस आये। चौधरी राय कल्ला ने तुरन्त नूरा माही नाम के एक व्यक्ति को सरहिन्द भेजा। रायकोट से सरहिन्द केवल 15 कोस की दूरी पर था। अगले दिन संदेशवाहक माही छोटे साहबजादों व माता जी की सम्पूर्ण शहीदी की गाथा की जानकारी लेकर लौट आया। उसने करूणामय काण्ड के दृश्यों का इस प्रकार वर्णन किया।

अल्प आयु के शहीद

रात अंधेरी और सरसा नदी की बाढ़ के कारण गुरू गोबिन्द सिंघ जी का परिवार काफिले से बिछुड़ गया। माता गुजरी जी जिनके साथ उनके दो छोटे पोते थे, अपने रसोइये गंगा राम ब्राह्मण के साथ आगे बढ़ती हुई रास्ता भटक गई। उनको गँगा राम ने सुझाव दिया कि यदि आप मेरे साथ मेरे गांव सहेड़ी चले तो यह संकट का समय सहज ही व्यतीत हो जाएगा। माता जी ने स्वीकृति दे दी और सहेड़ी गांव गँगा राम रसोइये के घर पहुँच गये। माता गुजरी जी के पास एक थैली थी, जिसमें कुछ स्वर्ण मुद्राएं थीं जो गंगा राम की दृष्टि में पड़ गई। गंगू की नीयत खराब हो गई। उसने रात में सोते हुए माता गुजरी जी के तकिये के नीचे से स्वर्ण मुद्राओं की थैली चुपके से चुरा ली और छत पर चढ़ कर चोर चोर का शोर मचाने लगा। माता जी ने उसे शांत कराने का प्रयास किया किन्तु गंगू तो चोर-चतुर वाला नाटक कर रहा था। इस पर माता जी ने कहा गंगू थैली खो गई है तो कोई बात नहीं, बस केवल तुम शांत बने रहो। किन्तु गंगू के मन में धैर्य कहां ? उन्हीं दिनों सरहिन्द के नवाब वजीद ख़ान ने गाँव-गाँव में डिंढौरा पिटवा दिया कि गुरूदेव जी व उनके परिवार को कोई पनाह न दें। पनाह देने वालों को सख्त सजा दी जायेगी और उनको पकड़वाने वालो को इनाम दिया जाएगा।

गँगा राम पहले तो यह एलान सुनकर भयभीत हो गया कि मैं खामख्वाह मुसीबत में फँस गया हूँ। फिर उसने सोचा कि यदि माता जी व साहबज़ादों को पकड़वा दूं तो एक तो सरकार के कोप से बच जाऊँगा तथा दूसरा इनाम भी प्राप्त होगा।

गंगू नमकहराम निकला। उसने मुरिंडे के थाने में थानेदार को सूचना देकर इनाम प्राप्ति की लालच में बच्चों को पकड़वा दिया। थानेदार ने माता जी से पूछताछ की, जब उसे मालूम हुआ गंगू ने स्वर्ण मुद्राएं चुराई हैं तो उसने इनाम देने के बदले, गंगू की खूब मरम्मत की और थैली बरामद कर ली।

थानेदार ने एक बैलगाड़ी द्वारा माता जी तथा बच्चों को सरहिन्द के नवाब वज़ीद ख़ान के पास कड़े पहरे में भिजवा दिया। वहां उनको सर्दी की रात में ठण्डे बुर्ज में बन्द कर दिया गया और उनके लिए कोई भोजन व्यवस्था नहीं की गई। दूसरी सुबह एक दोधी ने माता जी तथा बच्चों को दूध पिलाया।

नवाब वज़ीदखवान जो गुरू गोबिन्द सिंघ जी को जीवित पकड़ने के लिए सात माह तक सेना सहित आनन्दपुर के आसपास भटकता रहा था, परन्तु निराश होकर वापस लौट आया था, उसने जब गुरूदेव जी के मासूम बच्चों तथा वृद्ध माता को अपने कैदियों के रूप में देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अगली सुबह बच्चों को कचहरी में पेश करने के लिए फरमान जारी कर दिया।

दिसम्बर की बर्फ जैसी ठण्डी रात को, ठण्डे गुम्बज के ठंडे फर्श पर बैठी माता गुजरी अपने नन्हें नन्हें दो पोतों को शरीर के साथ लगाकर गर्माती और चूम-चूम कर सुलाने का प्रयत्न करती रही।

भोर होते ही मासूमों को जगाया तथा स्नेह से तैयार किया। दादी-पोतों से कहने लगी 'पता है, तुम उस गोबिन्द सिंघ 'शेर' गुरू के बच्चे हो, जिसने अत्याचारियों से कभी हार नहीं मानी। धर्म की आन तथा शान के बदले जिसने अपना सर्वत्र दांव पर लगा दिया और इससे पहले अपने पिता को भी शहीदी देने के लिए प्रेरित किया था। देखना कहीं वज़ीद ख़ान द्वारा दिये गये लालच अथवा भय के कारण धर्म में कमजोरी न दिखा देना। अपने पिता की शान को जान न्यौछावर करके भी कायम रखना।

दादी, पोतों को यह सब कुछ समझा ही रही थी कि वज़ीद ख़ान के सिपाही दोनों साहबजादों को कचहरी में ले जाने के लिए आ गये। जाते हुए दादी माँ ने फिर चूमा तथा पीठ पर हाथ फेरते हुए उन्हें सिपाहियों के संग भेज दिया।

कचहरी का बड़ा दरवाजा बंद किया हुआ था। साहबज़ादों को खिड़की के द्वारा अन्दर प्रवेश करने को कहा गया। रास्ते में उनको बार बार कहा गया था कि कचहरी में घुसते ही नवाब के समक्ष शीश झुकाना है, जो सिपाही साथ जा रहे थे। वे पहले सिर नीचा करके खिड़की द्वारा अन्दर दाखिल हुए। उनके पीछे साहबज़ादे थे। उन्होंने खिड़की में पहले पैर आगे किये और फिर सिर निकाला। थानेदार ने बच्चों को समझाया कि वे नवाब के दरबार में झुकर सलाम करें, किन्तु बच्चों ने इसके विपरीत उत्तर दिया और कहा - यह सिर हमने अपने पिता गुरू गोबिन्द सिंघ के हवाले किया हुआ है, इसलिए इस को कहीं और झुकाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

कचहरी में नवाब वज़ीदखवान के साथ और भी बड़े बड़े दरबारी बैठे हुए थे। दरबार में प्रवेश करते ही जोरावर सिंघ तथा फतेह सिंघ दोनों भाईयों ने गर्ज कर जयकारा लगाया - 'वाहिगुरू जी का खालसा, वाहिगुरू जी की फतेह'। नवाब तथा दरबारी, बच्चों का साहस देखकर आश्चर्य में पड़ गये। एक दरबारी सुच्चा नंद ने बच्चों से कहा - ऐ बच्चों ! नवाब साहब को झुककर सलाम करो। साहबज़ादों ने उत्तर दिया, 'हम गुरू तथा ईश्वर के अतिरिक्त किसी को भी शीश नहीं झुकाते, यही शिक्षा हमें प्राप्त हुई है'।

नवाब वज़ीदखवान कहने लगा - ओए तुम्हारा पिता तथा तुम्हारे दोनों बड़े भाई युद्ध में मार दिये गये हैं। तुम्हारी तो किस्मत अच्छी है जो मेरे दरबार में जीवित पहुँच गये हो। इस्लाम धर्म को कबूल कर लो तो तुम्हें रहने को महल, खाने को भांति भांति के पकवान तथा पहनने को रेशमी वस्त्र मिलेंगे। तुम्हारी सेवा में हर समय सेवक रहेंगे। बड़े हो जाओगे तो बड़े-बड़े मुसलमान जरनैलों की सुन्दर बेटियों से तुम्हारी शादी

कर दी जायेगी। तुम्हें सिक्खी से क्या लेना है ? सिक्ख धर्म को हमने जड़ से उखाड़ देना है। हम सिक्ख नाम की किसी वस्तु को रहने ही नहीं देंगे। यदि मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करोगे तो कष्ट दे देकर मार दिये जाओगे और तुम्हारे शरीर के टुकड़े सड़कों पर लटका दिये जायंगे ताकि भविष्य में कोई सिक्ख बनने का साहस ना कर सके। नवाब बोलाता गया। पहले तो बच्चे उसकी मूर्खता पर मुस्कुराते रहे, फिर नवाब द्वारा डराने पर उनके चेहरे लाल हो गये।

इस बार जोरावर सिंघ दहाड़ उठा - हमारा पिता अमर है। उन्हें मारने वाला कोई जन्मा ही नहीं। उस पर अकाल पुरूष (प्रभु) का हाथ है। उस वीर योद्धा को मारना असम्भव है। दूसरी बात रही, इस्लाम कबूल करने की , तो हमें सिक्खी जान से अधिक प्यारी है। दुनियां का कोई भी लालच व भय हमें सिक्खी से नहीं गिरा सकता। हम पिता गुरू गोबिन्द सिंघ के शेर बच्चे हैं तथा शेरों की भान्ति किसी से नहीं डरते। हम इस्लाम धर्म कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। तुमने जो करना हो, कर लेना। हमारे दादा श्री गुरू तेग बहादुर साहब ने शहीद होना तो स्वीकार कर लिया परन्तु धर्म से विचलित नहीं हुए। हम उसी दादा जी के पोते हैं, हम जीते जी उनकी शान को आंच नहीं आने देंगे।

सात वर्ष के जोरावर सिंघ तथा पाँच वर्ष के फतेह सिंघ के मुँह से बहादुरों वाले ये शब्द सुनकर सारे दरबार में चुप्पी छा गई। नवाब वज़ीद ख़ान भी बच्चों की बहादुरी से प्रभावित हुए बिना न रह सका। परन्तु उसने काजी को साहबज़ादों के बारे में फतवा (सजा) देने को कहा - काज़ी ने उत्तर दिया कि बच्चों के बारे में फतवा (दण्ड) नहीं सुनाया जा सकता। इस पर सुच्चानन्द बोला, - इतनी अल्प आयु में ये राज दरबार में इतनी आग उगल सकते हैं तो बड़े होकर तो हकूमत को आग लगा देंगे। ये बच्चे नहीं, साँप हैं, सिर से पैर तक ज़हर से भरे हुए। एक गुरू गोबिन्द सिंघ ही बस में नहीं आते यदि ये बड़े हो गये तो उससे भी दो कदम आगे बढ़ जायेंगे। साँप को पैदा होते ही मार देना चाहिए। देखो, इनका हौसला ! नवाब की निरादरी करने से नहीं झिझके। इनका तो अभी से काम तमाम कर देना चाहिए। नवाब ने बाकी दरबारियों की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा कि कोई और सुच्चानन्द की बात का समर्थन करता है अथवा नहीं, परन्तु सभी दरबारी मूर्त्तिव्रत खड़े रहे। किसी ने भी सुच्चा नन्द की हाँ में हाँ नहीं मिलाई।

तब वज़ीद ख़ान ने मलेर कोटले के नवाब का सम्बोधन करके पूछा - आपका क्या ख्याल है ? आपका भाई और भतीजा भी तो गुरू के हाथों चमकौर में मारे गये हैं। लो अब शुभ अवसर आ गया है बदला लेने का, इन बच्चों को मैं आपके हवाले करता हूँ। इन्हें मृत्यु दण्ड देकर आप अपने भाई-भतीजे का बदला ले सकते हो

मलेरकोटले का नवाब पठान पुत्र था। उस शेर दिल पठान ने मासूम बच्चों से बदला लेने से साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा - इन बच्चों का क्या कसूर है ? यदि बदला लेना ही है तो इनके बाप से लेना चाहिए। मेरा भाई और भतीजा गुरू गोबिन्द सिंघ के साथ युद्ध करते हुए रणक्षेत्र में शहीद हुए हैं, कत्ल नहीं किये गये हैं। इन बच्चों को मारना मैं बुजदिली समझता हूँ। अत: इन बेकसूर बच्चों को छोड़ दे। मलेरकोटले का नवाब शेरमुहम्मद ख़ान चमकौर के युद्ध से वज़ीद ख़ान के साथ ही वापस आया था और वह अभी सरहिन्द में ही था।

नवाब पर सुच्चा नन्द द्वारा बच्चों के लिए दी गई सलाह का प्रभाव तो पड़ा, पर वह बच्चों को मारने की बजाय इस्लाम में शामिल करने के हक में था। वह चाहता था कि इतिहास के पन्नों पर लिखा जाय कि गुरू गाबिन्द सिंघ के बच्चों ने सिख धर्म से इस्लाम को अच्छा समझा तथा मुसलमान बन गए।" अपनी इस इच्छा की पूर्ति हेतु उसने गुस्से पर नियंत्रण कर लिया तथा कहने लगा, "बच्चों जाओ, अपनी दादी के पास। कल आकर मेरी बातों का सही-सही सोचकर उत्तर देना। दादी के संग भी सलाह कर लेना। हो सकता हैं तुम्हें प्यार करने वाली दादी तुम्हारी जान की रक्षा लिए तुम्हारा इस्लाम में आना कबूल करने को कहें।"

बच्चे कुछ कहना चाहते थे परन्तु वज़ीद ख़ान शीघ्र ही उठकर एक तरफ हो गया तथा सिपाही बच्चों को दादी मां की ओर लेकर चल दिए।

बच्चों को पूर्ण सिक्खी स्वरूप में तथा चेहरों पर पूर्व की भांति जलाल देखकर दादी ने सुख की सांस ली। अकाल पुरख का दिल से धन्यवाद किया ओर बच्चों को बाहों समेट लिया। कितनी देर तक बच्चे दादी की बाहों में प्यार का आनन्द लेते रहे। दादी ने आंखें खोलीं बाहों ढीली की, तब तक सिपाही जा चुके थे।

अब माता गुजरी जी आहिस्ता-आहिस्ता पोतों से कचहरी में हुए वार्तालाप के बारे में पूछने लगी। बच्चें भी दादी मां को कचैहरी में हुए वार्तालाप के बारे में बताने लगे। उन्होंने सुच्चा नन्द की ओर से जलती पर तेल डालने के बारे भी दादी मां को बताया।

दादी मां ने कहा, शाबाश बच्चो! तुमने अपने पिता तथा दादा की शान को कायम रखा है। कल फिर तुम्हें कचहरी में और अधिक लालच तथा डरावे दिये जाएंगे। देखना, आज की भाँति धर्म को जान से भी अधिक प्यारा समझना और ऐसे ही दढ़ रहना। अगर कष्ट दिए जाएँ तो अकाल पुरख का ध्यान करते हुए श्री गुरू तेग बहादुर साहब और श्री गुरू अर्जुन देव साहब के शहीदी काण्डों को सामने लाने को प्रयास करना। भाई मतीदास और भाई दयाला ने भी गुरू चरणों का ध्यान करते हुए मुस्कराते-मुस्कराते तन चिरवा लिया और पानी में उबलवा लिया था। तुम्हारे विदा होने पर मैं भी तुम्हारे सिक्खी-सिदक की परिपक्ता के लिए गुरू चरणों में और अकाल पुरख के समक्ष सिमरन में जुड़ कर अरदास करती रहूँगी हूँ। यह कहते-कहते दादी माँ बच्चों को अपनी आलिंगन (गोद, बगल) में लेकर सो गई।

अगले दिन भी कचहरी में पहले जैसे ही सब कुछ हुआ और भी ज्यादा लालच दिये गये तथा डराया धमकाया गया। बच्चे धर्म से न डोले।

नवाब ने लालच देकर बच्चों को धर्म से फुसलाने का प्रयत्न किया। उसने कहा कि यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लें तो उन्हें जागीरें दी जाएंगी। बड़े होकर शाही खानदान की शहज़ादियों के साथ विवाह कर दिया जाएगा। शाही खजाने के मुँह उनके लिए खोल दिए जाएंगे।

नवाब का ख्याल था कि भोली-भाली सूरत वाले ये बच्चे लालच में आ जाएंगे। पर वे तो गुरू गोबिन्द सिंघ के बच्चे थे, मामूली इन्सान के नहीं। उन्होंने किसी शर्त अथवा लालच में आकर इस्लाम स्वीकार करने से एकदम इन्कार कर दिया।

अब नवाब धमकियों पर उतर आया। गुस्से से लाल पीला होकर कहने लगा - 'यदि इस्लाम कबूल न किया तो मौत के घाट उतार दिए जाओगे। फाँसी चढ़ा दूँगा। जिन्दा दीवार में चिनवा दूँगा। बोलो, क्या मंजूर है - मौत या इस्लाम ?-

ज़ोरावर सिंघ ने हल्की सी मुस्कुराहट होठों पर लाते हुए अपने भाई से कहा, 'भाई, हमारे शहीद होने का अवसर आ गया है। ठीक उसी तरह जैसे हमारे दादा गुरू तेगबहादुर ने दिल्ली के चाँदनी चौक में शीश देकर शहीदी पाई थी। तुम्हारा क्या ख्याल है ?

फतेह सिंघ ने उत्तर दिया, 'भाई जी, हमारे दादा जी ने शीश दिया पर धर्म न छोड़ा। उनका उदाहरण हमारे सामने है। हमने खण्डे का अमृत छका हुआ है। हमें मृत्यु से क्या भय ? अत: मेरा तो विचार है कि हम भी अपना शीश धर्म के लिए देकर तुरकों पर प्रभु के कहर की लानत डालें।

ज़ोरावर सिंघ - 'हम गुरू गोबिन्द सिंघ जैसी महान् हस्ती के पुत्र हैं। हमारा बाबा गुरू तेगबहादुर जैसे शहीद हो चुका है। हम अपने खानदान के नाम पर बट्टा नहीं लगने देंगे। हमारे खानदान की रीति है, 'सिर जावे तो जावे, पर सिक्खी सिदक न जाये।' हम धर्म परिवर्तन की बात ठुकरा कर फाँसी के तख्ते को चूमेंगे।'

जोश में आकर फतेह सिंघ ने कहा - 'सुन रे सूबेदार ! हम तेरे दीन को ठुकराते हैं। अपना धर्म नहीं छोड़ेगे। अरे मूर्ख, तू हमें दुनिया का लालच क्या देता है ? हम तेरे चकमे में आने वाले नहीं। हमारे दादा जी को मार कर तुरकों ने एक अग्नि प्रज्वलित कर दी है, जिसमें वे स्वयँ भस्म होकर रहेंगे। हमारी मृत्यु इस अग्नि को हवा देकर दावाग्नि बना देगी। धर्म तो हमने क्या छोड़ना है, इस प्रकार हम तुरकों की जड़ें ही उखाड़ फैंकेगे।

आज सुच्चा नन्द ने नवाब को परामर्श दिया कि बच्चों की परीक्षा ली जानी चाहिए। अत: उनको अनेकों भान्ति भान्ति के खिलौने दिये गये। बच्चों ने उन खिलौनों में से धनुष बाण, तलवार इत्यादि अस्त्र-शस्त्र रूप वाले खिलौने चुन लिए। जब उन से पूछा गया कि इससे आप क्या करेंगे तो उनका उत्तर था युद्ध अभ्यास करेंगे। यह सुनकर वजीद ख़ान चढ़दी कला के विचार और काजी के मन में यह बात बैठ गई कि सुच्चा नन्द ठीक ही कहता है कि साँप के बच्चे साँप ही होते हैं। वजीद ख़ान ने काजी के संग परामर्श करने के पश्चात् उसको दोबारा फतवा देने को कहा - इस बार काज़ी ने कहा कि बच्चे कसूरवार हैं क्योंकि बगावत पर तुले हुए हैं। इनको किले की दीवारों में चिन कर कत्ल कर देना चाहिए।

कचहिरी में बैठे मलेर कोटले के नवाब शेर मुहम्मद ने कहा, "नवाब साहब इन बच्चों ने कोई कसूर नहीं किया इनके पिता के कसूर की सज़ा इन्हें नहीं मिलनी चाहिए। इस्लाम की शरह अनुसार सज़ा उसी को मिलनी चाहिए दूसरों को नहीं।"

काज़ी बोला, "शेर मुहम्मद! इस्लामी शरह को मैं तेरे से अधिक जानता हूँ। मैंने शरह के अनुसार ही सजा सुना दी है।"

तीसरे दिन बच्चों को कचहरी भेजते समय दादी माँ की आँखों के सामने होने वाले काण्ड की तस्वीर बनती जा रही थी। दादी माँ को निश्चय था कि आज का बिछोड़ा बच्चों से सदा के लिए बिछोड़ा बन जाएगा। परन्तु यकीन था माता गुजरी को कि मेरे मासूम पोते आज जीवन कुर्बान करके भी धर्म की रक्षा करेंगे।

मासूम पोतों को जी भर कर प्यार किया, माथे चूमे, पीठ थपथपाई और विदा किया बावर्दी सिपाहियों के साथ, होनी से निपटने के लिये। दादी माँ टिकटिकी लगा कर तब तक सुन्दर बच्चों की ओर देखती रही जब तक बच्चे आँखों से ओझल न हो गये।

माता गुजरी पोतों को सिपाहियों के साथ भेज कर वापिस ठंडे बुरज में गुरू चरणें में ध्यान लगा कर वाहिगुरू के दर पर प्रार्थना करने लगी, "हे अकाल पुरख! बच्चों के सिक्खी-सिदक को कायम रखने में सहाई होना। दाता! धीरज और बल देना इन मासूम गुरू पुत्रों को ताकि बच्चे कष्टों का सामना बहादूरी से कर सकें।

तीसरे दिन साहबज़ादों को कचैहरी में लाकर डराया धमकाया गया उनको कहा गया कि यदि वे इस्लाम अपना ले तो उनका कसूर माफ किया जा सकता है और उनको शाहजादों जैसे सुख-सुविधाएं प्राप्त हो सकती हैं। किन्तु सहाबज़ादे अपने निश्चय पर अटल रहे। उन की दृढ़ता थी कि सिक्खी शान केशों श्वासों के संग निभानी हैं। उनकी दृढ़ता को देख कर किले की दीवार की नींव में चिनवाने की तैयारी आरम्भ कर

दी गई किन्तु बच्चों को शहीद करने के लिए कोई जल्लाद तैयार न हुआ। अकस्मात् दिल्ली के शाही जल्लाद साशल बेग व बाशल बेग अपने एक मुकद्दमें के सम्बन्ध में सरहिन्द आयें। उन्होंने अपने मुकद्दमें में माफी का वायदा लेकर शाहज़ादों को शहीद करना मान लिया। बच्चों को उनके हवाले कर दिया गया। इन्होंने जोरावर सिंघ व फतेह सिंघ को किले की नींव में खड़ा करके उनके आस पास दीवार चिनाई प्रारम्भ कर दी।

बनते-बनते दीवार जब फतेह सिंघ के सिर के निकट आ गई तो जोरावर सिंघ दु:खी दीखने लगें। काज़ियों ने सोचा शायद वे घबरा गए हैं। और अब धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो जायेंगे। उनसे दु:खी होने का कारण पूछा गया तो जोरावर बोले "मृत्यु भय तो मुझे बिल्कुल नहीं। मैं तो सोचकर उदास हूं कि मैं बड़ा हूं, फतेह छोटा हैं। दुनिया में मैं पहले आया था। इसलिए यहां से जाने का भी पहला अधिकार मेरा है। फतेह को धर्म पर बलिदान हो जाने का सुअवसर मुझ से पहले मिल रहा है। यह मेरा हक होना चाहिए था।

छोटे भाई फतेह सिंघ ने गुरूवाणी की पंक्ति कहकर दो वर्ष बड़े भाई को सांत्वना दी।

चिंता ताकि कीजिए, जो अनहोनी होइ।
इह मारगि सँसार में, नानक थिर नहिं कोइ।

और धर्म पर दृढ़ बने रहने का संकल्प दोहराया -

बच्चों ने अपना ध्यान गुरू चरणों से जोड़ा और बाणी का पाठ करने लगे। पास में खड़े काज़ी ने कहा- "अभी भी मुसलमान बन जाओ, छोड़ दिये जाओगे। बच्चों ने काज़ी की बात की और कोई ध्यान नहीं दिया अपितु उन्होंने अपना मन प्रभु से जोड़े रखा। दीवार फतेह सिंघ जी के गले तक पहुंच गई काज़ी के संकेत से एक जल्लाद ने फतेह सिंघ जी तथा उस के बड़े भाई जोरावर सिंघ जी का शीश तलवार के एक वार से कलम कर दिया। इस प्रकार श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी के सपुत्रों ने अल्प आयु मे शहादत प्राप्त की।

माता गुजरी जी बच्चे के लौटने की प्रतीक्षा में गुम्बद की मीनार पर खड़ी होकर राह निहार रही थी कि उन को पीछे से किसी दुष्ट ने धक्का दे दिया जिस से वह लड़खड़ा कर नीचे गिर पड़ी और उन का निधन हो गया।

स्थानीय निवासी जौहरी टोडरमल को जब गुरूदेव जी के बच्चों को यातनाएँ देकर कत्ल करने के हुक्म के विषय में ज्ञात हुआ तो वह अपना समस्त धन लेकर बच्चों को छुड़वाने के विचार से कचहरी पहुँचा किन्तु उस समय बच्चों को शहीद किया जा चुका था। उसने नवाब से अंत्येष्टि क्रिया के लिए बच्चों के शव माँगे। वज़ीद ख़ान ने कहा - यदि तुम इस कार्य के लिए भूमि, स्वर्ण मुद्राएं बिछा कर खरीद सकते हो तो तुम्हें शव दिये जा सकते हैं। टोडरमल ने अपना समस्त धन भूमि पर बिछाकर एक चारपाई जितनी भूमि खरीद ली और तीनों शवों की एक साथ अंत्येष्टि कर दी।

यह सारा किस्सा गुरू के सिक्खों ने गुरू गोबिन्द सिंघ को नूरी माही द्वारा सुनाया गया तो उस समय अपने हाथ में पकड़े हुए तीर की नोंक के साथ एक छोटे से पौधे को जड़ से उखाड़ते हुए उन्होंने कहा - जैसे मैंने यह पौधा जड़ से उखाड़ा है, ऐसे ही तुरकों की जड़ें भी उखाड़ी जाएंगी।

फिर गुरू साहिब ने सिक्खों से पूछा - 'मलेर-कोटले के नवाब के अतिरिक्त किसी और ने मेरे बच्चों के पक्ष में आवाज़ उठाई थी ? सिक्खों ने सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया।

इस पर गुरू साहिब ने फिर कहा - 'तुरकों की जड़ें उखड़ने के बाद भी मलेर-कोटले के नवाब की जड़ें कायम रहेंगी, पर मेरे सिक्ख एक दिन सरहिन्द की ईंट से ईंट बजा देंगे'। यह घटना 13 पौष तदानुसार 27 दिसम्बर 1704 ईस्वी में घटित हुई।

नोटः- मलेरकोटले की जड़ें आज तक कायम हैं। बन्दा बहादुर ने 1714 में सचमुच सरहिन्द शहर की ईंट से ईंट बजा दी थी।

मुगलों से अन्तिम युद्ध के लिए उचित क्षेत्र की खोज

इस अवधि में जहाँ गुरूदेव जी के पास काफी सैनिक इक्ट्ठे हो गये थे वहीं सरहिन्द के नवाब वज़ीदखान को गुरूदेव जी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त हो गई थी कि वह रायकोट के चौधरी राय कल्ला के पास सम्मानपूर्वक ठहरे हुए हैं। वज़ीद ख़ान अपने किये हुए पापों के कारण स्वयँ ही भयभीत रहने लगा था, उसको संदेह था कि गुरू गोबिन्द सिंघ पुन: शक्ति प्राप्त करके मुझ से अपने बच्चों की हत्या का प्रतिशोध अवश्य ही लेंगे। अत: वह चिन्तित रहने लगा और गुरूदेव जी को समाप्त करने की योजना बनाने लगा। जब गुरूदेव जी को वज़ीद ख़ान की नीतियों का ज्ञान हुआ तो उन्होंने युद्ध की सम्भावना पर विचार किया और सामरिक दृष्टि से किसी उचित स्थान की खोज के लिए रायकोट से प्रस्थान कर गये। आगे समस्त क्षेत्र गुरूदेव जी के श्रद्धालु सिक्खों का था। अत: आप प्रचार दौरे पर निकल पड़े। रायकोट से लम्मा जटपुरा पहुँचे और कुछ दिन वहीं गुरूमति प्रचार प्रसार करते रहे। संगत गुरूदेव जी के प्रवचनों से बहुत प्रभावित होती क्योंकि आप जी जो कहते थे, वही अपने जीवन में करके दिखाते थे। प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की तो आवश्यकता थी ही नहीं, स्पष्ट था। गुरूदेव जी ने अपना सर्वत्र न्यौछावर कर दिया था। अब उन के पास न किले थे न सेना थी, न ही उनके सुकुमार सपुत्र, सब मानव कल्याण के लिए शहीद हो चुके थे। समस्त संगत

गुरूदेव जी का त्याग और बलिदान का अनुभव कर रही थी। इसलिए अधिकांश युवा वर्ग गुरूदेव जी को अपनी सेवायें समर्पित करने के लिए उनके साथ हो गये। गुरूदेव जी गाँव गाँव अपने सेवकों के साथ प्रचार अभियान में विचरने लगे। आप माणू के महादिआणा, चकर, तख्तूपुरा और मधेय होते हुए दीनाकांगड़ पहुँचे। इस क्षेत्र में छठे गुरू हरिगोबिन्द साहब के समय से सिक्खी का बहुत प्रसार हो रखा था, अत: वहीं की संगत ने आपका भव्य स्वागत किया। यहाँ के चौधरी लखमीर और शमीर सूचना मिलने पर दर्शनों के लिए आए और गुरूदेव जी को तन मन से सहयोग देने का वचन दिया। आसपास के क्षेत्रों से लोग बीहड़ों को पार करते हुए दर्शनों के लिए आने लगे। गुरूदेव जी स्वयँ भी स्थानीय संगत के अनुरोध पर उनके इलाकों में प्रचार के लिए जाने लगे। इस भ्रमण से आप का सैन्य बल पहले की भान्ति स्थापित हो गया। गाँव, भदौड़, बुरज मानां दयालपुर और पतों हीरा सिंघ के निवासी तो गुरूदेव जी पर सर्वत्र न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहने लगे। वज़ीदखान ने गुरूदेव जी पर आक्रमण करने से पहले चौधरी लखमीर और शमीर के नाम तुरन्त आदेश भेजा कि वह गुरू गोबिन्द सिंघ को गिरफ्तार करके सरहिन्द में हाज़िर करे। लखमीर और शमीर दोनों भाई मुस्लिम होते हुए भी गुरूदेव जी के श्रद्धावान शिष्य थे। उन्होंने उस पत्र का उत्तर बहुत कड़े शब्दों में दिया। उन्होंने लिखा कि गुरू गोबिन्द सिंघ हमारे पीर-पैगम्बर हैं, हम अपने गुरू की सेवा करते हैं तो क्या यह पाप है ? उन्होंने कोई जुर्म भी नहीं किया। जुर्म किया है तो तुमने जो निर्दोष बच्चों की हत्या की है और कुरान की झूठी कसमें खाकर धोखा किया है। यदि तुम में बल है तो स्वयँ फिर से दो - दो हाथ करके देख लो। हम अपनी जानें उनके लिए कुर्बान करने के लिए तैयार हैं। इस आशय का पत्र देकर उन्होंने नवाब के दूत को वापिस भेज दिया। इस बीच गुप्तचर ने सूचना दी कि नवाब वज़ीद ख़ान जल्दी ही आक्रमण करने वाला है। गुरूदेव जी का ध्यान अब फिर से युद्ध की तैयारी और युद्ध के लिए उचित स्थान की ओर चला गया। भाई दया सिंह जी ने गुरूदेव जी से प्रार्थना की कि हे गुरूदेव! यही उचित समय है। औरंगजेब को फटकार लगाने का क्योंकि उसके पत्र के मिलने पर अपने आनन्दपुर का किला त्यागा था, जिसमें उसने कुरान की कसम खाई थी कि हमारी सेनाएं आपको फिर कभी परेशान नहीं करेंगी, आप चाहे जहाँ रहें। भाई दया सिंह जी की भावनाओं को ध्यान में रखकर गुरूदेव जी ने औरंगजेब को एक पत्र फारसी भाषा के शेयरों (पदों) में लिखा जिसमें उन्होंने उसे बेईमानी करने पर फटकार लगाई और लानते भेजी किन्तु युक्ति तथा तर्क के माध्यम से और भाषा शैली का प्रयोग किया। गुरूदेव जी ने इस पत्र का नाम जफ़रनामा रखा अर्थात 'विजय पत्र'। इस विस्तृत पत्र को विषयवस्तु की दृष्टि से कई भागों में बाँट सकते हैं। इन एक सौ बारह शेयरों में, 12 शेयर मंगलाचरण के रूप में अकालपुरूष (प्रभु) की स्तुति के हैं। इसके उपरान्त औरंगजेब की कस्में व उनके मुकरने का वर्णन है। इसके साथ ही उसके अत्याचारी जीवन का संकेत है। बादशाहों के कर्त्तव्य, राजनीति व उच्च मानवीय मूल्यों अथवा आदर्श आचार संहिता सम्बन्धि पथ प्रदर्शन भी किया गया है। सच्चा धार्मिक जीवन और अकालपुरूष (प्रभु) में अटल विश्वास दृढ़ करवाया है। चमकौर के युद्ध का संक्षिप्त दृश्य प्रस्तुत करके सिक्खों के शौर्य को दृष्टमान किया है। अन्त में बादशाह को सच्चे कार्य पर चलने की प्रेरणा दी है।

मुख्य संदेश में गुरूदेव जी ने औरंगज़ेब के कुकृत्यों, शपथ-भंग, अत्याचारों, मिथ्या व्यवहारों और लूमड़-चालों की कड़ी आलोचना इस पत्र में की है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि तुमने (औरंगज़ेब ने) कुरान की झूठी कसम खाई, खुदा और ईमान को बीच में डाला तथा फिर मुकर गये। खुदा के नाम पर बात कहकर मुकरने से अधिक भ्रष्ट कार्य क्या हो सकता है ? तुम्हारी सेना, सेनापति और अन्य अधिकारी, सब बेईमान हैं। तुमने मुझे हथियार उठाने को मज़बूर किया। यह तो तुम भी मानोगे कि जब अन्य सब उपाय व्यर्थ हो जायें तो हथियार उठाना उचित ही होता है। वैसे मुझे ज्ञात था कि तुम इतने चालबाज और मिथ्याचारी हो, तुम्हारी राजनीतिक कसमें सभी झूठी हैं। यह मुझे पूर्ण विश्वास था, किन्तु समय और विवशता के कारण अथवा अपने सिक्खों का आगामी समय में पथ-प्रदर्शन के कारण मुझे तुम्हारी कसमों की परीक्षा लेने के लिए अपने आपको दांव पर लगाना पड़ा। मुझे तो एकमात्र अल्लाह (अकालपुरूष) का सहारा है, इसलिए सिंहों के मित्र मृगों और गीदड़ों से नहीं डरा करते। तुम अपनी करतूतों का क्या जवाब दोगे ? प्रलय के दिन खुदा के सामने तुम्हारा सिर नीचा होगा और तुम पछताओगे।

मुग़ल साम्राज्य में सम्राट को ऐसी डांट से भरा पत्र कोई गोबिन्द सिंघ जैसा दिलेर व्यक्ति ही लिख सकता था - जल में रहकर मगर से बैर वही मोल ले सकता है, जिसके पास शक्ति हो और जिसका वाहिगुरू में अडिग विश्वास हो। गुरू गोबिन्द सिंघ के पास ये दोनों ताकतें मौजूद थीं। गुरूदेव जी ने औरंगज़ेब को अपनी शारीरिक एवँ आत्मिक शक्तियों का परिचय पत्र में करवा दिया और साथ ही चेतावनी दी कि गुरू के सिंघ उसके अन्याय और अत्याचार सहन नहीं करेंगे। उसकी ताकतों को गुरूदेव जी ने ललकारा और सम्राट के मन में एक आतंक पैदा कर दिया।

इस पत्र में गुरूदेव जी ने अनेक कथा-प्रसंगों के माध्यम से औरंगज़ेब को दिशा दी। पत्र तैयार करने के बाद गुरूदेव जी के सम्मुख क्षणिक समस्या उभरी, इसे सम्राट तक पहुँचाने की। वे जानते थे कि ऐसा पत्र ले जाने वाला औरंगज़ेब के हाथों मारा तो जायेगा ही, इसलिए बिल्ली के गले में घंटी बांधने के लिए सहर्ष कौन तैयार हो सकता है, यह चुनाव अनिवार्य था। गुरूदेव जी के आह्वान पर भाई दया सिंह अपने प्राणों को हथेली पर रखकर पत्र ले जाने को तत्पर हुआ। उन्हें पत्र केवल औरंगज़ेब के हाथों सौंपने का आदेश देकर गुरूदेव जी ने विदा किया।

'जफरनामा' को पढ़कर सम्राट औरंगज़ेब काँप गया। वह मानसिक रूप से इतना तनाव में आ गया कि वह बीमार बड़ गया। यही बीमारी औरंगज़ेब का काल बनी और वह सदा के लिए अपने झूठ के साथ ही दफ़न हो गया।

मुगलों से अन्तिम युद्ध

चौधरी शमीर और लखमीर का कोरा जवाब जब नवाब वज़ीद ख़ान को मिला तो उसने बगावत को कुचल देने की ठान ली। गुरूदेव जी ने पुनः तैयारियाँ आरम्भ कर दी, जिससे युद्ध की हालत में ईंट का जवाब पत्थर से दिया जा सके। दीना गाँव युद्ध की दृष्टि से उत्तम नहीं था इसके अतिरिक्त गुरूदेव जी इस गाँव को युद्ध की विभीषिका से क्षति पहुँचाना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने सामरिक दृष्टि से किसी श्रेष्ठ स्थान की तलाश प्रारम्भ कर दी और दीना गाँव से प्रस्थान कर गये। इस समय आपके पास बहुत बड़ी संख्या में श्रद्धालु सिक्ख सैनिक इक्ट्ठे हो चुके थे। युद्ध को मद्देनजर रखते हुए बहुत से वेतनभोगी सेना भी भरती कर ली थी और बहुत बड़ा भण्डार अस्त्र-शस्त्र तैयार हो गया था। आप जी मालवा क्षेत्र के अनेकों गाँव में भ्रमण करते हुए आगे बढ़ने लगे। इन गाँवों में आपके स्मारक है, वह इस प्रकार हैं जलाल, भगता, पवो, लम्भावाली, मलूके का कोट तद्पश्चात आप कोटकपूरे पहुँचे। यहाँ के चौधरी ने आपका हार्दिक स्वागत किया। गुरूदेव जी को यह स्थान युद्धनीति के अन्तर्गत उचित लगा। अतः आपने चौधरी कपूरे को कहा कि वह अपना किला हमें मोर्चे लगाने के लिए दे दें ताकि मुगलों के साथ दो-दो हाथ फिर से हो जाये। चौधरी कपूरा मुग़लों से भय रखता था। उसने गुरूदेव जी को टालना शुरू कर दिया और कहा यदि आप चाहे तो मैं आपकी मुगलों के साथ संधि करवाने में मध्यस्थता की भूमिका निभा सकता हूँ। यह प्रस्ताव सुनकर गुरूदेव जी ने बहुत रोष प्रकट किया और कहा – मैंने तो पंथ के लिए सर्वत्र न्यौछावर कर दिया है, अब संधि किस बात की करनी है। इस पर चौधरी कपूरे ने गुरूदेव जी को सामरिक दृष्टि से एक सर्वोत्तम स्थल का पता बताया जहाँ युद्ध में विजय निश्चित थी। यह स्थल था 'खिदराणे की ढाब'। यहाँ पानी उपलब्ध था और इस समस्त क्षेत्र में इसके अतिरिक्त कहीं पानी नहीं था। गुरूदेव जी को यह सुझाव बहुत अच्छा लगा क्योंकि मरूस्थल में जीवन के लिए पानी अनमोल वस्तु होती है और लम्बे युद्ध के समय तो शत्रु पक्ष की बिना पानी पराजय सहज में हो सकती थी। गुरूदेव जी अपने सैन्य बल के साथ निश्चित लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने लगे। रास्ते में पाँचवे गुरू श्री गुरू अर्जुन देव जी के भाई पृथ्वीचन्द की संतानों में से सोढ़ी वंश के लोग रहते थे। इस ढिलवां नामक गाँव के लोगों ने आपका भव्य स्वागत किया। गुरेव उनके प्रेम के कारण रूक गये। जब सोढ़ी वंश के लोगों ने आपको नीले वस्त्रों में देखा तो उसका कारण पूछा और निवेदन किया कि आप पुनः सफेद वस्त्र गुरू मर्यादा अनुसार धारण करें। गुरूदेव जी ने उनका अनुरोध स्वीकार करते हुए नीले वस्त्र उतार दिये और उनको चीथड़े-चीथड़े कर अग्नि की भेंट करते गये। उसमें से एक लीर पास खड़े भाई मानसिंह ने मांग ली जो गुरूदेव जी ने उसे प्रसादि रूप में उपहार स्वरूप दे दी। भाई मानसिंह जी ने उस नीली लीर को अपने सिर पर बाँधी पगड़ी में सजा लिया। उस दिन से निहंग सम्प्रदाय के लोग अपनी दस्तार नीले रंग की धारण करते हैं। जब गुरूदेव जी अपना नीला बाणा (पोशाक) जला रहे थे तो उन्होंने एक पंक्ति उच्चारण की –

नील वस्त्र ले कपड़े फाड़े, तुरक पठाणी अमल गइआ।

यह पंक्ति सुनकर सोढ़ी वंश के सदस्य कहने लगे गुरूदेव जी असली पद तो कुछ और है ? इस पर गुरूदेव जी ने उत्तर दिया –

गुरू कहयो हम सरबंस गार।
तुक पलटाई हित उपकार।

ढिलवां गांव से गुरूदेव जी जैतो कस्बे में पहुँचे। यहाँ आपको गुप्तचर नें सूचना दी कि सरहिन्द का नवाब लगभग आठ से दस हजार सेना लेकर आ रहा है, इसलिए गुरूदेव जी ने अगला पड़ाव सुनियार गाँव के खेतों में किया। गाँव वालों ने आपको प्रत्येक प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया। किन्तु गुरूदेव जी अगली भोर सीधे खिदराणे की ढाब (टेकरी) की ओर प्रस्थान कर गये।

मुक्तसर का युद्ध

आनन्दपुर के किले में मुग़ल सेना द्वारा लम्बी घेराबन्दी के कारण जो सिक्ख खाद्यान के अभाव में परास्त हो रहे थे, वे गुरूदेव जी को बाध्य कर रहे थे कि वह मुग़लों की कसमों पर विश्वास करते हुए उनके साथ संधि करके किला त्याग दें जिससे कठिनाईयों से राहत मिले। परन्तु गुरूदेव जी दूरदृष्टि के स्वामी थे। उन्होंने कहा कि वह सभी कसमें झूठी हैं कभी भी शत्रु पर उसकी राजनीतिक चालों को मद्देनजर रखकर भरोसा नहीं करना चाहिए। किन्तु कई दिनों के भूखे-प्यासे सिंघ अन्त में तंग आकर अपने घर वापिस जाने की जिद करने लगे। इस पर गुरूदेव जी ने उन्हें कह दिया कि जो व्यक्ति किला त्याग कर घर जाना चाहता है, वे एक कागज पर लिखे दें कि 'हम आपके सिक्ख (शिष्य) नहीं और आप हमारे गुरू नहीं'। उस पर अपने हस्ताक्षर कर दें और अपने घर को चले जाएं।

माझा क्षेत्र के झबल नगर के महा सिंघ के नेतृत्त्व में लगभग 40 जवानों ने यह दुस्साहस किया और गुरूदेव जी को बेदावा (त्यागपत्र) लिख दिया। गुरूदेव जी ने वह पत्रिका बहुत सहजता से अपनी पोशाक की जेब में डाल ली और उनको आज्ञा दे दी कि वे अब जा सकते हैं। ये सब जवान रात के अंधकार में धीरे धीरे एक एक करके शत्रु शिविरों को लांघ गये।

जब ये जवान झबल नगर पहुँचे तो वहां की संगत ने उनको आनन्दपुर के युद्ध के विषय में पूछा और जब उन्हें मालूम हुआ कि यह केवल शरीरी कष्टों को न सहन करते हुए गुरू से बेमुख होकर घर भाग आये हैं तो सभी बड़े बूढ़ों से उनको फटकार मिलने लगी कि तुमने यह अच्छा नहीं किया। युद्ध के मध्य में तुम्हारा घर आना यह गुरूदेव जी के साथ धोखा अथवा गद्दारी है। नगर की महिलाओं ने एक सभा बुलाई।

उसमें एक वीरांगना ने भाषण दिया कि इन पुरूषों को घर में स्त्रियों के वस्त्र अथवा गहने धारण करके घरेलू कार्य करने चाहिए। और शस्त्र हमें दे देने चाहिए। हम सभी महिलाएं शस्त्र धारण करके गुरूदेव जी की सहायता के लिए युद्ध क्षेत्र में जाने को तैयार हैं। जब इन जवानों का समाज में तिरस्कार होने लगा तो उनको उस समय अपने पर बहुत ग्लानि हुई और उनका स्वाभिमान जागृत हो उठा। वे सभी गुरूदेव जी से क्षमा याचना की योजना बनाने लगे परन्तु उनको अब किसी परोपकारी मध्यस्थ की आवश्यकता थी। अत: उन्होंने सर्वसम्मति से उसी वीरांगना माई भाग कौर को उनका नेतृत्त्व करने का आग्रह किया। जो कि माता ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वे सभी गुरूदेव जी की खोज में घर से चल पड़े। रास्ते में उनको ज्ञात हुआ कि गुरूदेव जी इन दिनों दीनाकांगड़ नगर में हैं। वे सभी दीना कांगड़ पहुँचे किन्तु गुरूदेव जी युद्ध की तैयारी में किसी उचित स्थान की खोज में, चौधरी कपूरे के सुझाव अनुसार जिला फिरोजपुर के गाँव खिदराना पहुँच चुके थे। यह काफिला भी गुरूदेव जी से क्षमा याचना माँगने के लिए उनकी खोज में आगे बढ़ता ही गया। जल्दी ही इस काफिले के योद्धाओं को सूचना मिल गई कि सरहिन्द का नवाब वज़ीद ख़ान बहुत बड़ी सेना लेकर गुरूदेव जी का पीछा कर रहा है। अत: उन्होंने विचार किया कि अब गुरूदेव जी से हमारा मिलन असम्भव है क्योंकि शत्रु सेना हमारे बहुत निकट पहुँच गई है। माता भाग कौर ने परामर्श दिया कि क्यों न हम यहीं शत्रु से दो-दो हाथ कर लें। शत्रु को गुरूदेव जी तक पहुँचने ही न दें। महा सिंघ तथा अन्य जवानों को यह सुझाव बहुत भाया। उन्होंने शत्रुओं को अपनी ओर आकर्षिन करने के लिए अपने झोलों में से चादरें निकाल कर रेत के मैदान में उगी झाड़ियों पर इस प्रकार बिछा दिया कि दूर से दृष्टि भ्रान्ति होकर वह कोई बड़ी सेना का शिविर मालूम हो। जैसे ही वज़ीद ख़ान सेना लेकर इस क्षेत्र से गुजरने लगा तो उनको दूर से वास्तव में दृष्टिभ्रम हो ही गया। वे आगे न बढ़कर इसी काफिले पर टूट पड़े। विडम्बना यह कि गुरूदेव जी का सैन्य शिविर भी यहाँ से लगभग आधा कोस दूर सामने की टेकरी पर स्थित था।

अब महा सिंघ के जत्थे के जवान आत्म बलिदान की भावना से शत्रु दल से लोहा लेने लगे। देखते ही देखते रणक्षेत्र में चारों ओर शव ही शव दिखाई देने लगे। समस्त सिंघ बहुत ऊँचे स्वर में जय-जयकार कर रहे थे। नारों की गूंज ने गुरूदेव जी का ध्यान इस ओर खींचा। उन्होंने भी टेकरी से शत्रु सेना पर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। जल्दी ही समस्त जत्था वीरगति पा गया। अब वज़ीद ख़ान के समक्ष अपने सैनिकों को पानी पिलाने की समस्या उत्पन्न हो गई। रास्ते में तो कहीं पानी था ही नहीं। आगे गुरूदेव जी पानी पर कब्जा जमाये बैठे थे। वज़ीद ख़ान ने एक भारी आक्रमण किया किन्तु दूसरी ओर से गुरूदेव जी के सैनिकों ने उसे तीव्रगति के बाणों से परास्त कर दिया। मुग़ल सैन्य बल बिना पानी के पुन: आक्रमण करने का साहस नहीं कर पा रहा था, उनको लग रहा था कि उन्हें यदि पानी न मिला तो प्यासे ही दम तोड़ना पड़ेगा क्योंकि वे गुरूदेव जी की शक्ति और उनका युद्ध कौशल कई बार देख चुके थे। जल्दी ही वज़ीद ख़ान ने निर्णय लिया कि वापिस लौटा जाए। इसी में हमारा भला है, देरी करने पर सभी सैनिकों की कब्रें मरूस्थल में बिना लड़े पानी से प्यासे होने के कारण बनेगी। वज़ीद ख़ान जल्दी ही अपनी सेना लेकर वापिस लौट गया।

जब मैदान खाली हो गया तो गुरूदेव जी अपने सेवकों के संग रणक्षेत्र में आये और सिक्खों के शवों की खोज करने लगे। लगभग सभी सिक्ख वीरगति पा चुके थे परन्तु उनका मुखिया महासिंघ अचेत अवस्था में था, श्वास धीमी गति पर थी। जब गुरूदेव जी ने उसके मुख में पानी डाला तो वह सुचेत हुआ और अपना सिर गुरूदेव जी की गोदी में देखकर प्रसन्न हो उठा। उसने गुरूदेव जी से विनती की कि उन्हें क्षमा कर दें। इस पर गुरूदेव जी ने उसे बहुत स्नेहपूर्वक कहा - मुझे मालूम था तुम्हें अपनी भूल का अहसास होगा और आप सभी लौट आओगे। अत: मैंने वह तुम्हारा बेदावे वाला पत्र सम्भाल लिया था, मैंने सब कुछ लुटा दिया है परन्तु वह पत्र अपने सीने से आज भी चिपकाए बैठा हूँ और प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि वे मेरे भूले-भटके पुत्र कभी न कभी अवश्य ही वापिस लौटेगें। गुरूदेव जी का सहानुभूति वाला व्यवहार देखकर महासिंघ की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और उसने सिसकियाँ लेते हुए गुरूदेव जी से अनुरोध किया यदि आप हम सभी पर दयालु हुए हैं तो हमारी सभी की एक ही इच्छा थी कि हमने जो आपसे आनन्दपुर में दगा दिया था अथवा बेदावा पत्र लिखा था, वह हमें क्षमा करते हुए फाड़ दें, क्योंकि हम सभी ने अपने खून से उस धब्बे को धोने का प्रयत्न किया है। कृपया आप हमें पुन: अपना शिष्य स्वीकार कर लें, जिससे हम शान्तिपूर्वक मर सकें। गुरूदेव जी ने अथाह उदारता का परिचय दिया और वह पत्र अपनी कमर में से निकालकर महा सिंघ के नेत्रों के सामने फाड़ दिया तभी महासिंघ ने प्राण त्याग दिये, मरते समय उसके मुख पर हल्की सी मुस्कान थी और वह धन्यवाद की मुद्रा में था।

जब सभी शवों को देखा गया तो उनमें एक स्त्री का शव भी था जिसने पुरूषों का वेष धारण किया हुआ था, ध्यानपूर्वक देखने पर उसकी नब्ज चलती हुई मालूम हुई। गुरूदेव जी ने तुरन्त उसका उपचार करवाया तो वह जीवित हो उठी। यह थी माई भागों जो जत्थे को क्षमा दिलवाने के विचार से उनका नेतृत्त्व कर रही थी। गुरूदेव जी ने उसके मुख से सभी समाचार जानकर उसको ब्रह्मज्ञान प्रदान किया।

शहीदों का सँस्कार करते समय गुरूदेव जी इनकी वीरता पर भावुक हो उठे और उन्होंने प्रत्येक शहीद के सिर को अपनी गोद में लेकर उनको बार-बार चूमा और प्यार करते हुए कहते गये। यह मेरा पाँच हजारी योद्धा था। यह मेरा दस हजारी योद्धा था, यह मेरा बीस हजारी योद्धा था, तात्पर्य यह था कि गुरूदेव जी ने उनको मरणोपरान्त उपाधियाँ देकर सम्मानित किया।

वर्तमानकाल में इस स्थान का नाम मुक्तसर है, जिसका तात्पर्य है कि वे बेदावे वाले सिंहों ने अपने प्राणों की आहुति देकर यहां पर मोक्ष प्राप्त किया था।

पाँचवा अध्याय

मालवा क्षेत्र में प्रचार

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी 'खिदराणे की ढाब' क्षेत्र में बहुत सफल रहे। वह क्षेत्र रणनीति अथवा सामरिक दृष्टि से उचित था। अब शत्रु सेना परास्त होकर लौट चुकी थी। अत: पुन: किसी नये आक्रमण का कोई भय बाकी नहीं बचा था। गुरूदेव जी ने इस पिछड़े हुए क्षेत्र में गुरमति प्रचार करने का मन बनाया और गाँव गाँव विचरण करने लगे। इस मालवा क्षेत्र में श्री गुरूनानक देव जी अथवा अन्य गुरूजनों के समय से ही सिक्खी फल-फूल रही थी किन्तु समय के अन्तराल के कारण उसे पुनर्जीवित करना आवश्यक था। आप का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण को दीक्षित करके सिक्ख से सिंघ सजाना था इसलिए आप सभी अनुयाईयों को अमृतपान करने के लिए प्रेरणा करते। अधिकांश लोग सहर्ष आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए स्वयँ को समर्पित करते। फिरोजपुर के समीप वजीदपुर में आपने एक विशाल समारोह का आयोजन किया जिसमें निकटवर्ती गाँवों के लोगों को एक स्थान पर एकत्र कर एक साथ अमृतपान कराया। आपके प्रचार अभियान से प्रभावित होकर एक मुसलमान फकीर सैयद इब्राहिम शाह ने आपसे अनुरोध किया कि उसे भी आप दीक्षित करें और नामदान से कृतार्थ करें। गुरूदेव जी अति प्रसन्न हुए और उसकी अभिलाषा सम्पूर्ण करके उन्हें सिंघ सजाया और उसका नाम अजमेर सिंघ रखा।

जैसा कि पहले वर्णन आ चुका है कि गुरूदेव जी ने बहुत बड़ी संख्या में स्थानीय बैराड़ जाति से सम्बन्धित वेतनधारी सेना भी भर्ती करके साथ रखी हुई थी। उनको कुछ समय से वेतन का भुगतान नहीं हो पा रहा था। जब गुरूदेव जी छतेआणे गाँव पहुँचे तो बैराड़ सैनिक अड़कर खड़े हो गये। उनका कहना था कि आगे का क्षेत्र साबों का है उसका स्वामी डल्ला है, हमारी सीमा यहीं समाप्त होती हैं अत: हम आगे नहीं जाएंगे। हमें हमारी तनख्वाह यहीं दे दीजिए। गुरूदेव जी ने उन्हें बहुत समझाया, देर-सवेर हो जाती है, तुम्हें तनख्वाह मिल जायेगी, संगते धन लाएंगी हम विभाजन कर देंगे। आज इत्फाक से खजाना नहीं है। मालिक भेजेगा, उस पर भरोसा रखते हुए धैर्य रखो, किन्तु भाड़े के लोगों में सब्र कहाँ ? उन्होंने कहा, 'बहुत धैर्य कर लिया है, अब और नहीं हो सकता। विडम्बना यह कि उसी समय एक सिक्ख ने रूपयों तथा अशर्फियों से लादे हुए खच्चर गुरूदेव जी के समक्ष लाकर खड़े कर दिये। (यह सिक्ख अपने क्षेत्र का दसबंध लाया था) इन पाँच सौ सवार और नौ सौ पैदल सैनिकों को गुरूदेव जी ने तुरन्त गिन कर तनख्वाह बाँट दी। किंवदन्ति यह भी है कि वेतन के अतिरिक्त एक एक ढाल रूपयों की भरकर प्रति सैनिक बख्शीश रूप में भी दिये। अन्त में इन सैनिकों के जत्थेदार भाई दाने को गुरूदेव जी ने कहा, 'दानिआ तू भी तनख्वाह ले ले, तू जत्थेदार है, तुझे किस हिसाब से धन दें।' इस पर दाना हाथ जोड़ कर विनती करने लगा, हे गुरूदेव! मुझे मोह माया के बन्धन में न बांधो। अपनी कृपा दृष्टि रखें और सिक्खी दान दें। वैसे आपका दिया सब पदार्थ घर में है किसी वस्तु की कमी नहीं। गुरूदेव जी ने उसका प्रेम देखकर मुँह माँगी मुरादें दी। जो माया खच्चरों की बोरियों में से बची वहीं उस धन को भूमि में गाड़ दिया। गुरूदेव जी के वहाँ से चले जाने के बाद जब लोगों ने चोरी से वह स्थान खोदा तो धन कहीं न मिला। तब से उस स्थान पर नाम गुप्तसर हो गया।

गुरूदेव जी को भाई दाना जी अपने गाँव ले गये और वहाँ वह गुरूदेव जी की सेवा करना चाहता था किन्तु गुरूदेव जी की दृष्टि उसके घर पर पड़े हुए हुक्के पर पड़ गई तभी गुरूदेव जी ने उसके घर का भोजन करने से इन्कार कर दिया और वचन लिया यदि तुम आज से तम्बाकू का सेवन त्याग दो तो हम तुम्हारे घर का भोजन स्वीकार कर सकते हैं। दाना जी कहने लगे कि हे गुरूदेव जी ! मुझे अफारा रोग है, मैं इसीलिए इसका प्रयोग करता हूँ क्योंकि इससे मुझे राहत मिलती है और दूसरा जाति-बिरादरी के लोग के एकत्र होने पर यह हुक्का सामाजिक स्वागत की परम्परा का रूप धारण कर गया है। अत: इसका त्याग कठिन है। इस पर गुरूदेव जी ने कहा - यदि तुम हमारा वचन नहीं मानते तो हम लोग जाते हैं। दाना गुरूदेव जी पर अथाह श्रद्धा भक्ति रखता था, वह गुरूदेव जी को रूष्ट कैसे देख सकता था, उसने तुरन्त निर्णय लिया। मैं आज से तम्बाकू का सेवन कदाचित नहीं करूँगा। उसकी नम्रता और श्रद्धा देखकर गुरुदेव जी ने वचन किया यदि तुम तम्बाकू के सेवन का त्याग करोगे तो अफारा रोग कभी भी तुम्हारे निकट नहीं आयेगा और समाज में भी तुम्हारी प्रतिष्ठा और बढ़ जाएगी। दाना जी ने बहुत प्रेम से समस्त संगत को लंगर सेवन कराया, किन्तु गुरूदेव जी ने उसे कहा, 'यदि तुम गुरू नानक के घर की कृपा चाहते हो तो अमृतपान करो, जिससे सदैव तुम उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते चले जाओगे। दाना जी ने तर्क रखा, गुरूदेव जी हम कई पीढ़ियों से गुरू घर के सिक्ख चले आ रहे हैं। अत: मुझे केश रखने के बन्धन में न डालें। इस पर गुरूदेव जी ने कहा - केश अति अनिवार्य हैं। हमारा सिक्ख वही कहलायेगा जो केशों की सेवा सम्भाल रखेगा और अपने न्यारे स्वरूप में समाज में रहेगा, जिससे दूर से ही बिना परिचय प्राप्त किये मालूम हो जाएगा कि वह केशधारी व्यक्ति गुरू नानक का सिक्ख है। इस प्रकार आपको समाज में सहज में ही आदर प्राप्त होगा और कोई व्यक्ति भूल से भी तम्बाकू इत्यादि सेवन के लिए आग्रह नहीं करेगा। भाई दाना जी गुरूदेव जी की सीख (उपदेश) से सन्तुष्ट हो गया और अमृतपान करने के लिए सहमति प्रदान कर दी।

हाज़री मन की अथवा तन की

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी तलवंडी साबों की तरफ प्रस्थान कर रहे थे तो एक रात्रि में गाँव बाजक के निकट आपने अपना शिविर लगवाया। प्राय: रात्रि के समय आपके तम्बू के पास चार शिष्य संतरी रूप में पहरा दिया करते थे। यहाँ भी ऐसा ही किया गया। रात्रि को जब अंध

रा अधिक घना हुआ, जब गुरूदेव जी विश्राम कर रहे थे, तभी गाँव में कुछ दूर नट लोगों द्वारा आयोजित कार्यक्रम के संगीत की मधुर ध्वनियाँ गूंजने लगी। इस ध्वनि को सुनकर, इन चारों सन्तरियों ने आपस में विचार किया कि वह नाटक देखा जाये, परन्तु दो संतरियों का विचार था कि वे डयूटी पर हैं, इसलिए उनका वहाँ जाना अपराध है। किन्तु दो संतरियों ने विचार किया कि ठीक है वे लोग कुछ समय के लिए वहाँ हो आते हैं, तब तक दूसरे लोग यहाँ पर ही रहें। इस प्रकार वे नाटक देखने चले गये। परन्तु वहाँ पर उन दोनों संतरियों का मन नाटक देखने में लगा ही नहीं, बस उन दोनों के हृदय में भय समाया रहा कि उन्होंने अपराध किया है। वे डयूटी से क्यों आये। इस प्रकार उनका मन डयूटी पर ही रहा। इसके विपरीत डयूटी पर तैनात संतरियों के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि वे क्यों न नाटक देखने चले गये तथा वे मन ही मन संगीत की ध्वनि से नाटक का अनुमान लगाते रहे। जब सुबह हुई तो गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि रात्रि में जो संतरी डयूटी से गैर हाजिर थे, उनको पेश किया जाये। जो नाटक देखने गये हुए थे उनको पेश कर दिया गया, परन्तु गुरूदेव जी ने कहा - यह लोग वास्तव में उपस्थित थे क्योंकि यह मन करके डयूटी दे रहे थे, परन्तु जो अपने आप को हाज़िर समझ रहे हैं, वास्तव में वही गैरहाज़िर थे क्योंकि उनका मन तो नाटक देखने में था। अत: गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया कि यहाँ तो हाज़री मन की ही मानी जाती है, तन की नहीं। आध्यात्मिक दुनिया का यही दस्तूर है।

सच्चा प्रेम ही प्रभु चरणों में स्वीकार

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी जिला बठिण्डा नगर के प्रचार दौरे पर थे कि एक रात्रि में जब आप विश्राम अवस्था में अपने तम्बू में थे तो आपने दूर से मधुर स्वर में कुछ लोगों के गाने की आवाज सुनी, गाने वाले यात्री बलोच थे जो प्रसिद्ध आशिक सस्सी-पुन्नू की गाथा काव्य रूप में गा रहे थे। गाने वाले व्यक्तियों के गले में वास्तविक वैराग्य अथवा करूणामय धुन का स्वर सुनकर गुरूदेव जी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने प्रात:काल उन यात्रियों को अपने दरबार में आने का निमन्त्रण भेजा। जब वे लोग गुरूदेव जी के समक्ष उपस्थित हुए तो गुरूदेव जी ने उनसे कहा कि तुम लोग जो रात में सुर लगा कर काव्य पठन कर रहे थे। वह हमें दुबारा सुनाएं। यह आज्ञा सुनकर वह बहुत नम्र भाव से बोले - गुरूदेव जी आपके सम्मुख प्रेम किस्सा सुनाते शर्म आती है। गुरूदेव जी ने कहा ठीक है, बीच में एक पर्दा लगा देते हैं, तुम लोग गाओ। आज्ञा मानकर वे प्रयास करने लगे किन्तु वह रात वाली भावात्मक बात नहीं बनी, सब कुछ फीका सा रहा। खैर - - - गुरूदेव जी ! फिर भी प्रसन्न हुए और उनको पुरस्कार दे कर विदा किया। किन्तु कुछ सिक्खों ने आपत्ति की कि गुरूदेव जी आध्यात्मिक दुनियां में इन आशिकों की प्रेम कथा कहाँ तक उचित है ?

उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा - आप सभी लोग एक एक ऊँगली गर्म रेत में डालकर एक घड़ी रखें। किसी से भी ऐसा नहीं किया गया। गुरूदेव जी ने बात का समाधान किया। शशि ने अपने प्राणों की परवाह न कर मरूस्थल की गर्म रेत में अपने आशिक की खोज में मृत्यु को स्वीकार कर लिया था। यह त्याग और बलिदान की कहानी है। अत: तर्क वही करने का अधिकारी है, जो इस से अधिक त्याग और बलिदान करने की क्षमता रखता हो ?

साचु कहो सुन लेहु सभै,
जिन प्रेम कीओ तिन की प्रभ पाइओ।

जागीरदार डल्ले के सैनिकों की परीक्षा

जब गुरु गोबिन्द सिंघ जी चमकौर साहिब की कच्ची हवेली में युद्ध के पश्चात एक दा छुटपुट मुग़ल सेनाओं के साथ झड़पों में सफल होते हुए 'साबो की तलवंडी' (जिला बठिंडा) पहुँचे तो वहाँ का जागीरदार डल्ला, गुरुदेव का बहुत बड़ा श्रद्धालु था। इसलिए उसने गुरुदेव को अपने यहाँ ठहराया। कई असफलताओं के कारण मुग़ल सेना ने गुरूदेव जी का पीछ करना छोड़ दिया था। अब राजा डल्ला गुरुदेव को उनके लड़कों के युद्ध में शहीद होने पर शोक प्रकट करने लगा। शोक प्रकट करते हुए वह गुरुदेव से कहने लगा-हे गुरुदेव! यदि आपने युद्ध के समय उसे याद किया होता तो वह अपनी सभी सेनाएँ लेकर आपकी सहायता के लिए पहुँच जाता। जिससे उनके बेटे शहीद न होते। देखो न इस सेना के जवान कितने वीर योद्धा हैं। एक से बढकर एक है। इसके उत्तर में गुरुदेव जी ने कहा-डल्ला, प्रभु का हुक्म ही ऐसा था। परन्तु भाई डल्ला ने इस बातचीत के पश्चात् भी गुरुदेव से कई बार इसी प्रकार की बातचीत की। वह हर बार अपनी सेना के जवानों की प्रशंसा करता तथा गुरुदेव से कहता कि काश आपने उसे संकटकाल में याद कर लिया होता तो वह रणक्षेत्र में उनकी सहायता के लिए आ जाता जिससे उनके लड़के शहीद होने से बच जाते। पहले तो गुरु जी उसकी बात को प्रभु का हुक्म कहकर टाल देते थे। परन्तु वह और अधिक अपनी तथा अपने सैनिकों की प्रशंसा करना शुरू कर देता था। अत: गुरुदेव ने कहा, ''डल्ला अच्छा फिर कभी हम तुम्हारे जवानों तथा तुम्हारी परीक्षा लेंगे।'' तभी गुरुदेव का एक शिष्य जो कहीं बहुत दूर से गुरुदेव के दर्शनों को आया था, ने एक सुन्दर बन्दूक गुरुदेव को भेंट की। उस बन्दूक को देखकर गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए तथा कहने लगे कि उस बन्दूक के निशाने की परीक्षा करनी है तथा उसकी घातक शक्ति को भी जाँचना है अच्छा तो डल्ला आप अपने एक नौजवान को भेजो जिस पर वे निशाना लगाकर उस बन्दूक की शक्ति देख सके कि वह कितनी घातक है। अब डल्ला इंकार नहीं कर सका। वह अपने सैनिकों की बैरिकों में पहुँचा तथा वहाँ पर सभी सैनिकों को गुरूदेव जी का हुक्म सुनाया कि उनको एक बन्दूक की घातकता की परीक्षा के लिए एक जवान की ज़रूरत है। है कोई एक अपने आपकों उस काम के लिए प्रस्तुत करे? इस पर सभी सैनिकों का

एक टूक उत्तर था कि किसी युद्धक्षेत्र में तो दो हाथ देखेंगे, दो दिखायेंगे, परन्तु अनचाही मौत बिना लड़े-मरे वे गोली का निशाना नहीं बनना चाहते। इस पर डल्ला निराश होकर वापस लौट आया। यह देख गुरूदेव जी कहने लगे, "अच्छा डल्ला तेरा कोई भी सैनिक तेरी बात नहीं मानता तो ठीक हैं तुम स्वयं ही हमारी बन्दूक के परीक्षण के लिए अपने आपको प्रस्तुत कर दो।" परन्तु यह सुन डल्ला घबरा गया तथा कहने लगा, "साहिब मैं कैसे मर जाऊँ? मेरे पीछे मेरे राजपाट का क्या होगा? अभी तो मैंने दुनिया में देखा ही क्या है?" यह सुन गुरुदेव ने कहा, "अच्छा डल्ला तुम ऐसा करो हमारे डेरे पर चले जाओ, देखों वहाँ पर मेरे शिष्य होंगे। उनको बताओ कि गुरूदेव जी ने बन्दूक की परीक्षा करनी हैं। इसलिए उसका निशाना बनने के लिए केवल एक शिष्य की आवश्यकता है।" डल्ला हुक्म मानकर गुरूदेव जी के लंगर की तरफ चला गया। वहाँ गुरूदेव जी के दो शिष्य लंगर की सेवा कर रहे थे जो आपस में बाप-बेटा थे। तभी भाई डल्ला ने उनको गुरूदेव जी का हुक्म सुनाया। यह सुनते ही बाप-बेटा दोनों भागकर गुरूदेव जी के पास पहुँच गये। उस समय पिता के हाथ आटे से सने हुए थे तथा पुत्र पगड़ी लपेटता हुआ आया था। पुत्र युवावस्था में था सो भागकर जल्दी पहुँच गया। परन्तु पिता गुरूदेव जी से कहने लगा "हे गुरूदेव जी मैंने आपका हुक्म पहले सुना हैं तथा इसे बाद में मैंने बताया है। इसलिए मेरा हक हैं कि आप मुझे ही निशाना बनायें।" परन्तु पुत्र का तर्क था कि वह उनके पास पहले पहुँचा हैं इसलिए उसे निशाना बनाया जाए। इस पर गुरूदेव जी कहने लगे, "दोनों एक कतार बाँधकर खड़े हो जाओ।" इस पर पुत्र आगे तथा पिता पीछे खड़े हो गए। परन्तु पिता का कद कुछ छोटा था। इसलिए उसने अपने पाँव के नीचे ईटें रख ली। तभी गुरूदेव जी ने बन्दूक की नाली थोड़ी सी दूसरी तरफ कर दी। वे दोनों भाग कर फिर नली की सीध में खड़े हो गये। तभी गुरूदेव जी ने नली का मुँह फिर घुमा दिया। यह देखकर वे लोग फिर नली की सीध में आ गये। गुरूदेव जी इसी प्रकार नली का मुँह बार-बार घुमा देते तो वे लोग भागकर फिर से बंदूक की नाली की सीध में खड़े होने का प्रयत्न करते। अतं में गुरूदेव जी ने हवा में गोली चला दी तथा कहा, "देख भाई डल्ला ये मेरे शिष्य ही मेरे सैनिक हैं जिन पर मुझे गर्व हैं। ये मेरे लिए अपना समस्त न्यौछावर कर सकते हैं। इन्हीं के बल पर मैंने चमकौर साहिब तथा दूसरे क्षेत्रों में युद्ध लड़े हैं। ये मेरी बन्दूक के सामने ऐसे नाच रहे थे जैसे साँप बीन की ध्वनि पर नाचता है। इन्हीं वीर तथा सहासी योद्धाओं पर मुझे नाज़ है। परन्तु तेरे सैनिकों में तो एक भी न निकला जो तेरा हुक्म मान सके।"

सरहिन्द से जगीरदार डल्ले को धमकी

सरहिन्द में जब नवाब वज़ीद ख़ान को यह सूचना मिली कि गुरू गोबिन्द सिंघ जी साबो की तलवंड़ी क्षेत्र के जगीरदार डल्ला के पास उसके अतिथि के रूप में ठहरे हुए हैं तो उसने तुरन्त जगीरदार डल्ले को कड़े शब्दों वाला पत्र भेजा जिसमें आदेश था कि गुरूदेव जी मुग़ल सलतन्त के बागी हैं। अत: उन्हें हमारे हवाले कर दो। ऐसा करने पर सम्राट की ओर से पुरस्कार भी दिलवाया जाएगा। यदि इसके विपरीत आदेश का उल्लंघन किया गया तो जाग़ीर जब्त कर ली जाएगी और मुग़ल सेना तुम्हें मिट्टी में मिला देगी।

इस पत्र का जगीरदार डल्ले पर कोई प्रभाव न हुआ। वह गुरूदेव जी की संगत पार कर अभय हो चुका था। उसने धमकियों भरे पत्र का उत्तर बहुत साहस पूर्ण शब्दों में देते हुए लिखा - गुरूदेव जी मेरे आदरणीय अतिथि हैं। मैं उनके लिए अपना सर्वत्र न्यौछावर करने को तत्पर हूँ। यदि तुमने मुझ पर आक्रमण किया तो तुम्हारा इस क्षेत्र से जीवित बचकर जाना असम्भव होगा क्योंकि इस रेगिस्तान में पानी के अभाव में हम तुम्हें प्यासे ही मार देंगे।

यह कड़ा उत्तर पाकर नवाब वज़ीद ख़ान डल्ले पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर पाया क्योंकि उसे खिदराणे की ढाब के कड़वे अनुभव ज्ञात थे।

धर्मपत्नी से मिलाप

दिल्ली में जब गुरू के महिल, माता सुंदरी जी व साहब कौर जी को यह ज्ञात हुआ कि गुरूदेव जी साबो की तलवंडी (दमदमा साहब) में ठहरे हुए हैं तो वे भाई मनी सिंघ जी के साथ यहाँ पधारे। जब उन्होंने अपने बेटे के विषय में गुरूदेव जी से पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया -

इन पुत्रन के शीश पर वार दिये सुत चार।
चार मुए तो क्या हुआ जीवित कई हजार।

अर्थात गुरूदेव जी ने सामने बैठे सिक्खों की ओर संकेत करके कहा - यह सिक्ख ही तुम्हारे वास्तविक पुत्र हैं जो सदैव खालसा पंथ के रूप में जीवित रहेगा। इन्हीं में तुम उन पुत्रों को भी देख सकती हैं जो केवल शरीर त्याग गये हैं किन्तु अमर होकर इन्हीं में सदैव विचरण करते रहेंगे।

यह आध्यात्मिक ज्ञान सुनकर माता सुंदरी जी ने उत्तर में कहा - आप ठीक कहते हैं। मैं अपने को भाग्यशाली मानने लगी हूँ कि मेरे पुत्रों ने धर्म की रक्षा करने हेतु अपने प्राणों की आहुति दी है।

गुरूग्रंथ साहब के नये स्वरूप की संपादना

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने साबो की तलवंडी, जिला बठिंडा में 'दमदमी टकसाल' (गुरूमति प्रशिक्षण केन्द्र) स्थापित किया तो उनको उस समय 'आदि ग्रंथ साहिब' की आवश्यकता अनुभव हुई। उन्होंने धीरमल को संदेश भेजा और आग्रह किया कि कृपया 'आदि ग्रंथ साहिब' उन्हें दें जिससे युवा पीढ़ी को प्रशिक्षित किया जा सके परन्तु धीरमल ने बीड़ देने से इन्कार कर दिया। गुरू गोबिन्द सिंघ जी के रिश्ते में वह ताऊ के बड़े बेटे थे। अत: गुरूदेव जी ने उनको बहुत सम्मान दिया परन्तु धीरमल ने उनके अनुरोध को ठुकराते हुए बहुत कटु वचनों का प्रयोग किया – तुम स्वयँ को गुरू कहलाते हो परन्तु नये ग्रंथ की रचना नहीं कर सकते? वास्तव में सिक्खों का गुरू मैं हूँ क्योंकि 'आदि ग्रंथ साहिब' मुझे विरासत में मिला है। इस अहंकार प्रवृत्ति के कठोर वचन सुनकर गुरूदेव जी के मुख से सहज भाव में शब्द निकले – तुम सिक्खों के गुरू कदाचित नहीं बन सकते, हाँ तुम भूत-प्रेतों के गुरू कहलाने योग्य हो क्योंकि तुम्हारी विचारधारा ही ऐसी है। समय के प्रवाह ने उनकी सन्तानों को भूत-प्रेतों का गुरू बना दिया और गुरूदेव जी के वचन सत्य सिद्ध हुए। बाबा बड़भाग सिंघ धीरमल की पाँचवी पुश्त में से हैं। इस घटना के पश्चात् गुरूदेव जी ने स्वयँ 'आदि ग्रंथ साहिब' की वाणी पुन: उच्चारण की और भाई मनी सिंघ जी से लिखवाई। बाद में दशम पातशाह ने नौवें गुरू तेग बहादुर साहिब की वाणी भी इस ग्रंथ में सम्मिलित कर दी।

जब यह सूचना धीरमल को मिली कि गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने 'आदि ग्रंथ साहिब' का निर्माण कर लिया है तो वह ईर्ष्या से जल उठा। उसके मसन्दों ने उसको खूब उत्तेजित किया, जिससे वह गुरू गोबिन्द सिंघ जी द्वारा रचित 'आदि ग्रंथ साहिब' पर शंकायें प्रकट करने लगा कि यह कैसे सम्भव हो सकता है जो ग्रंथ उसके पास है उसकी नकल बिना देखे गुरू गोबिन्द सिंघ कैसे तैयार कर सकता है? इसलिए गुरू गोबिन्द सिंघ द्वारा रचित आदि ग्रंथ में कुछ त्रुटियाँ अवश्य होंगी। इस प्रकार प्रतिस्पर्धा की आग में जलता हुआ वह अपने साथ मूल 'आदि ग्रंथ साहिब' की बीड़ लेकर 'साबो की तलवंडी' पहुँचा। उसने गुरूदेव जी के समक्ष दोनों ग्रंथो के मिलान का प्रस्ताव रखा। गुरूदेव जी ने सहर्ष यह अनुरोध स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप दोनों पक्षों ने अपने अपने ग्रंथों का एक एक अक्षर मिलान किया परन्तु कोई अन्तर नहीं पाया गया। केवल नौवें गुरू तेग बहादुर जी की रचनाएँ ही अधिक थीं जो कि इस बार संकलित की गई थी।

गुरू चरणों में पीढ़ी जितना स्थान

जागीरदार डल्ले ने गुरू पातशाह की सेवा करने में बहुत बहादुरी का प्रदर्शन किया था। उसने सरहिंद के नवाब की धमकियों की कोई परवाह नहीं की थी बल्कि उसको साफ लिख दिया था कि वह गुरू गोबिन्द सिंघ साहिब को पकड़ने की गलती बिल्कुल न करे। गुरूदेव जी भाई डल्ले की इस कुर्बानी की कदर करते थे।

एक दिन सतगुरू जी ने प्रसन्न होकर भाई डल्ले को कहा, 'भाई डल्ला ! गुरू नानक के घर में किसी चीज की कोई कमी नहीं है। तू जो कुछ चाहता है, बता? भाई डल्ले ने बहुत नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, 'सच्चे पातशाह ! धन, जमीन, इज्जत आदि दुनियावी पदार्थ पहले ही आपकी कृपा से बहुत हैं। इन पदार्थो की और चाह नहीं। यदि मेहरबान हो तो अपने चरणों में एक पीढ़ी जितना स्थान दे दो।

गुरूदेव जी ने उत्तर दिया, भाई डल्ला ! तूने हमारी सेवा की खातिर दुनियावी पदार्थों को खतरे में डाला है। उनके बदले दुनियावी पदार्थ ही मिल सकते हैं जो कुछ तू माँग रहा है, यह दुनियावी पदार्थो के तुल्य नहीं मिल सकता। गुरू के संग निकटता तो प्रेम का सौदा है। प्रेम पैसे से नहीं खरीदा जा सकता। यहाँ पर तो तन-मन भेंट करना होता है। यदि तू हमारे समीप होना चाहता है तो वही प्रण कर जो सिक्खों ने किया है। जो हमने भी किया है। अत: अमृतपान करके सिक्खी मार्ग पर चल। इस तरह गुरू घर में सदा के लिए स्थान मिल जाएगा।

भाई डल्ले ने गुरू जी के उपदेश के आगे शीश झुका दिया। अमृतपान करके वह भाई डल्ला सिंघ बन गया और अपने सारे परिवार को उसने अमृतपान करवाया।

कवि दरबार

जैसे पाऊँटा साहिब में रोज कवि दरबार लगा करते थे, वैसे ही दमदमा साहिब में भी कवि दरबार लगने लग गए। अधिकांश कवि फिर गुरू जी के पास दमदमा साहिब दरबार में आ चुके थे। हजारों की संख्या में संगत भी नगर-नगर, गाँव गाँव से पहुँचने लगी थी और खूब रंग बंधता था। कवियों से जोशीली कविताएं सुनकर वे लोग भी अमृतपान करने को तैयार हो जाते जिन्होंने अभी अमृतपान नहीं किया होता था। लोग समझते थे कि अमृतपान करके ही एक एक व्यक्ति सवा सवा लाख से जूझ सकता है और इस प्रकार गुलामी की जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं।

प्रचार का असर

साबो को तलवंडी (दमदमा साहिब) में निवास करते समय सतगुरू जी ने गुरमत प्रचार के भरसक प्रयास किये। अधिक से अधिक लोगों को अमृत की निधि प्रदान की। सतगुरू जी के प्रयत्नों से एक लाख बीस हजार की भारी संख्या में लोगों ने अमृतपान किया।

अन्तिम (छटा) अध्याय

औरंगजेब की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारियों में युद्ध

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी राजस्थान के कई नगरों में गुरूमति का प्रचार करके दिल्ली की ओर जाने का विचार कर रहे थे कि उनको सूचना मिली कि औरंगजेब का देहान्त हो गया है। इसलिए दिल्ली का सम्राट बनने की होड़ में औरंगज़ेब के दोनों बेटों में ठन गई है। औरंगज़ेब का बड़ा पुत्र मुअजम (बहादुरशाह) जो अफगानिस्तान की तरफ एक मुहिम पर गया हुआ था, पिता की मृत्यु का संदेश प्राप्त होते ही वापिस लौटा किन्तु उस समय तक उसका छोटा भाई शाहिज़ादा आज़म ने अपने आप को सम्राट घोषित कर दिया था। अतः दोनों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगी।

मुअज़म को आभास हुआ कि आज़म को युद्ध में पराजित करना इतना सहज नहीं है वह मुझ से अधिक शक्तिशाली है। अतः उसको परास्त करने के लिए मुझे किसी अन्य शक्ति से सहायता ले लेनी चाहिए। अन्यथा पराजय पर मृत्यु दण्ड निश्चित ही है। उसने चारों ओर दृष्टिपात किया किन्तु कोई ऐसी शक्ति दृष्टिगोचर नहीं हुई जो उसकी विपत्तिकाल में स्पष्ट रूप में आज़म के विरूद्ध सहायता करे। उसने परेशान होकर अपने वकील 'भाई नन्द लाल सिंघ गोया' से विचारविमर्श किया। नन्दलाल सिंघ ने उसे सुझाव दिया कि वह इस समय गुरू गोबिन्द सिंघ जी के पास जाकर सहायता माँगे, वह शरणागत की अवश्य ही सहायता करेंगे और यदि उनका सहयोग मिल जाये तो हमारी विजय निश्चित ही है। यह सुनकर मुअज़म ने संशय व्यक्त किया। वह मेरी सहायता क्यों करने लगे। जबकि मेरे पिता औरंगज़ेब ने उनको बिना किसी कारण आक्रमण करके प्रवासी बना दिया है और उनके बेटों की हत्या करवा दी है। इस पर भाई नन्द लाल सिंघ जी ने उसे समझाया कि वह किसी से भी शत्रुता नहीं रखते केवल अन्याय के विरूद्ध तलवार उठाते हैं। मुअज़म को भी इस बात का अहसास था और वह गुरूदेव जी के गुणों से भलीभान्ति परिचित भी था, इसलिए उसने भाई नन्द लाल सिंघ को ही अपना वकील बनाकर गुरूदेव जी के पास भेजा कि वह मेरी आज़म के विरूद्ध सहायता करें। श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने मुअज़म (बहादुरशाह) को सहायता देने के लिए एक शर्त रखी और कहा कि सत्ता प्राप्ति के पश्चात् मुअज़म हमें उन अपराधियों को सौंपेगा जिन्होंने पीर बुद्धशाह की हत्या की है तथा हमारे नन्हें बेटों को दीवार में चिनवाया है।

मुअज़म को यह शर्त बहुत ही कड़ी प्रतीत हुई किन्तु मरता क्या नहीं करता। उसने बड़े दुखी मन से यह शर्त स्वीकार कर ली। गुरूदेव जी स्वयँ दिल्ली जा ही रहे थे क्योंकि उन दिनों उनकी पत्नी दिल्ली में निवास करती थी। इस प्रकार गुरूदेव जी ने अपना विशाल सैन्यबल मुअज़म की सहायता के लिए भेज दिया।

दिल्ली के निकट दोनों भाइयों में भयंकर युद्ध हुआ किन्तु मुअज़म की सेना परास्त होने लगी। यह स्थिति देख कर उसने तुरन्त नन्द लाल को गुरूदेव जी के पास भेजा और पुनः विनती की कि विजय उसी की होनी चाहिए। गुरूदेव जी ने कहा हम उस की विजय करवाने ही वाले थे कि मुअज़म के मन में बेईमानी आ गई थी। वह विचार रहा था कि गुरू गोबिन्द सिंघ को सत्ता प्राप्ति के पश्चात् बहाने बनाकर टालता रहूँगा। बस इसी कारण हमने अपना सहयोग वापिस ले लिया था। इस बार यदि वह विजय चाहता है तो उसे हमें लिखित रूप में संधि पत्र तैयार करके देना होगा। नन्द लाल के दबाव में मुअज़म ने गुरूदेव जी को लिखित संधि रूप में एक पत्र भेजा जिसमें उसने वचन दिया कि यदि मैं गुरूदेव जी की सहायता से विजयी हो जाता हूँ तो उन कातिलों को गुरूदेव जी के सुपुर्द कर दूँगा जिनकी इन्हें तलाश है। बस फिर क्या था समस्त सिक्ख सेना में आत्म बलिदान की भावना से तन-मन से युद्ध लड़ना प्रारम्भ कर दिया। शत्रु पक्ष की ओर से युद्ध का नेतृत्त्व स्वयँ आज़म हाथी पर बैठ कर रहा था। घमासान युद्ध में एक बाण तारा-आज़म के सीने में लगा वह वहीं लुढ़क गया। उसको मृत देखकर युद्ध बन्द हो गया और मुअज़म विजयी घोषित हो गया। जब तारा-आज़म के सीने से तीर खींच कर बाहर निकाला गया तो वह गुरू गोबिन्द सिघं जी का था क्योंकि उसके पीछे सवा तोला स्वर्ण मढ़ा हुआ मिला, जैसे कि पिछले अध्यायों में वर्णन आ चुका है कि केवल गुरू गोबिन्द सिंघ जी ही अपने वाणों के पीछे स्वर्ण मढ़वाते थे। यह बाण गुरू देव जी ने मोती बाग नामक स्थान से चलाया था, जहाँ से केवल एक कोस की दूरी पर युद्ध हो रहा था।

मुअज़म विजय का डंका बजाता हुआ सेना सहित आगरा पहुँचा। जहाँ उसने स्वयँ को बहादुरशाह नाम दिया और हिन्दुस्तान का सम्राट बन कर सिंहासन पर बैठ गया। उसे इस बात का अहसास था कि बिना गुरू गोबिन्द सिंघ जी की सहायता के वह सम्राट नहीं बन सकता था। अतः उसने सम्राट बनते ही गुरूदेव जी को आगरा पधारने का निमन्त्रण भेजा और विनती की कि आप मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करें। गुरूदेव जी उन दिनों हुमायूं के मकबरे के समीप निवास करते थे।

बहादुरशाह के निमन्त्रण पर बहुत से सिक्खों ने शंका व्यक्त की और कहा - यदि यह भी अपने पूर्वजों की तरह छल कपट करने लगा तो गुरूदेव जी संकट में फंस सकते हैं। किन्तु गुरूदेव जी ने सिक्खों को धैर्य बंधाया और आगरा चल पड़े। रास्ते में आप जी ने मथुरा, वृदांवन इत्यादि कई ऐतिहासिक स्थल देखे। आगरा पहुँचने पर आप का शाही सम्मान से स्वागत किया गया किन्तु आपने अपना शिविर यमुना किनारे एक रमणीक स्थान पर लगवाया। बहादुरशाह के साथ भेंट वाले दिन गुरूदेव जी घोड़े पर सवार होकर अस्त्र-शस्त्र इत्यादि धारण करके स्वसजित हो कर आगरे के किले में प्रवेश हुए। द्वार पर बहादुरशाह ने आप का भव्य स्वागत किया और दरबारमें ऊँचे आसन पर बैठाया। तदुपरान्त आपको सम्मानित करने के लिए खिल्लत (सिरोपा) भेंट किया गया। इसमें एक कलगी भी थी जो हीरों से जड़ी हुई थी। गुरूदेव जी ने समस्त

वस्तुएँ प्राप्त करके अपने सेवादारों द्वारा शिविर में भेज दी। जब कि शाही नियमावली अनुसार उन उपहारों को दरबार में ही धारण करना अथवा पहनना होता था। कुछ दरबारियों ने इस बात का बुरा माना कि इन वस्तुओं को आपने धारण क्यों नहीं किया। उत्तर में गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया। हम आध्यात्मिक दुनिया के स्वामी हैं जबकि बहादुरशाह केवल दुनियादार है। अतः आध्यात्मिक रूतबा दुनियादारी रूत्बों में सर्वोत्तम है, इसलिए बादशाह की वस्तुएं हमने उसके स्नेह को देखकर स्वीकार तो कर ली है किन्तु वह आध्यात्मिक दुनिया में गौण हैं।

गुरूदेव जी बहादुरशाह के स्नेह के कारण उसकी राजधानी में तीन महीने तक रहे। बहादुरशाह ने गुरूदेव जी के साथ किये गये अत्याचारों के लिए अपने पिता औरंगज़ेब को जिम्मेवार ठहराया और भविष्य में प्रशासन की ओर से मित्रता का हाथ बढ़ाया। गुरूदेव जी ने उसे उसकी लिखित संधि की याद दिलवाई और कहा हमें उन अपराधियों को जल्दी सौंपो। किन्तु बहादुरशाह टाल गया और कहने लगा समय आने पर मैं यह अपना वायदा अवश्य ही पूरा करूँगा। किन्तु अभी मेरे विरोधी बगावत कर रहे हैं। उसने गुरूदेव जी को बताया कि इस समय राजपूताने में से बगावत की सूचनाएं मिली हैं और मेरा छोटा भाई कामबख्श जो इस समय बीजापुर में है, उसने अपने को स्वतन्त्र बादशाह होने का ऐलान कर दिया है। मुझे पहले इनका दमन करना है, उसके पश्चात् आपका कार्य पूर्ण करूँगा। गुरूदेव जी ने उसकी विवशता को समझा और कुछ समय प्रतीक्षा करने पर सहमत हो गये।

बहादुरशाह के समक्ष सर्वप्रथम कार्य अपने भाई कामबख्श की बगावत को कुचलना था। उसने इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए गुरूदेव जी को साथ में चलने का आग्रह किया। गुरूदेव जी ने उसके प्रस्ताव पर अपने सेवकों से परामर्श किया और सहमति दे दी। उनका विचारथा कि हमारा मुख्य उद्देश्य तो गुरमति का प्रचार-प्रसार करना है, इसी बहाने दक्षिण क्षेत्र में वहाँ के निवासियों में गुरू नानक देव जी के सिद्धान्तों का पुनः प्रचार-प्रसार को बढ़ावा मिल सकेगा।

उज्जवल आचरण ही श्रेष्ठता का प्रतीक

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को उनके शिविर में सम्राट बहादुरशाह किसी विशेष कारणवश मिलने आया। अवकाश का समय था विचार विमर्श करते समय आध्यात्मिक चर्चा प्रारम्भ हो गई। बहादुरशाह ने इस्लाम का पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा - इस्लाम में यह विश्वास दृढ़ है कि जो व्यक्ति एक बार कलमा पढ़ लेता है वह दोज़ख में नहीं जाता अपितु उसे बहिशत (स्वर्ग) में ऐश्वर्य युक्त जीवन जीने को मिलता है।

इसके विपरीत गुरूदेव जी ने उसे गुरूमति सिद्धान्त समझाते हुए कहा - यह सब मिथ्या धारणायें हैं वास्तविकता यह है कि जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा ही फल पायेगा। यह सर्वमान्य सत्य सिद्धान्त है। इसमें किसी की सिफारिश नहीं चलती। इस पर सम्राट कहने लगा आपके कथन की पुष्टि किस प्रकार हो, कोई उदाहरण तो होना ही चाहिए। गुरूदेव जी ने तुरन्त अपने खजानंची को बुला लिया और उसे कहा - हमारे खजाने में एक सिक्का खोटा भी है, वह लाओ। उस खोटे रूपये को गुरूदेव जी ने सम्राट को दिखाया और कहा इस पर वह सभी कुछ उसी प्रकार मुद्रित है, जिस प्रकार का आप की टकसाल के वास्तविक सिक्कों पर, इस पर भी कलमा इत्यादि सभी कुछ अंकित है। इसे बाजार में भेज कर कुछ आवश्यक सामग्री मँगवा कर देखते हैं और गुरूदेव जी ने उस सिक्के को एक सेवक के हाथ बाजार भेज दिया। कुछ समय पश्चात् वह सेवक खाली हाथ लौट आया और बताने लगा गुरूदेव जी यह सिक्का कोई स्वीकार नहीं करता क्योंकि यह खोटा है, इसमें मिलावट है। गुरूदेव जी ने सम्राट को सम्बोधन करते हुए कहा - जैसे यह सिक्का कोई स्वीकार नहीं करता भले ही आपकी टकसाल की तरह इस पर मोहर है और इस पर कलमा भी लिखा है। ठीक वैसे ही सच्ची दरगाह में केवल कलमा पढ़ लेने से कोई स्वीकार्य नहीं बन जाता। बहादुरशाह इस युक्तिपूर्ण उत्तर से सन्तुष्ट हो गया।

पीर को सीख

गुरू गोबिन्द सिंघ जी आगरे में सम्राट बहादुरशाह के दरबार में उसके विशिष्ट अतिथि के रूप में विराजमान हो रहे थे तो उस समय सरहिन्द के सैय्यद (पीर) ने गुरूदेव जी से कहा कि गुरू जी आप अपने आपको इतना बड़ा गुरू कहलवाते हैं तो उसे कोई करामात दिखाएं। नहीं तो वह अपनी शक्ति दिखाता है। इस पर गुरूदेव जी कहने लगे, 'करामात नाम कहर का है। मैं कोई करामात नहीं जानता। मेरी करामात तो मेरा कर्त्तव्य ही है।' परन्तु वह नहीं माना और हठ करने लगा। इस पर गुरूदेव जी कहने लगे, 'तुमने शक्ति ही देखनी है तो बहादुरशाह के जीवन में भी करामात है। वह देखो। यह चाहे तो राज्य शक्ति से अपने एक ही आदेश में कुछ भी कर सकता है।' यह सुनकर वह पीर कहने लगा, 'यह करामात तो बहादुर शाह में है ही। मैं तो आपकी शक्ति देखना चाहता हूँ। इस पर गुरू साहिब ने अपनी तलवार म्यान से निकाल ली तथा कहने लगे, 'मेरे पास तो यही करामात है। कहो तो इसकी करामात दिखा दूँ। यह चाहे तो अभी जीवन को मृत्यु मे बदल दे।' इस पर वह भयभीत हो गया और विनम्रता से कहने लगा, 'इस तलवार को म्यान के भीतर ही रखें। मुझे करामात नहीं देखनी।' इस पर गुरूदेव जी कहने लगे, 'मेरे पास एक दूसरी करामात है कहो तो वह भी दिखा दूँ।' इस पर वह फिर आश्चर्य प्रकट करने लगा और पूछने लगा, 'वह कौन सी?' गुरूदेव जी ने कहा, 'वही जिसके लिए वह दर दर भटकता फिरता है। इस पर उस पीर ने कहा - वह समझा नहीं। तभी गुरूदेव जी ने चाँदी के रूपयों की थैलियाँ उसके सामने पटकते हुए कहा, 'मेरी दूसरी करामात यही है। कहो तो इससे मैं तुमको खरीद लूँ तथा मानमानी बात तुम से करवाऊँ।' इससे वह पीर गुरूदेव जी के वास्तविक स्वरूप को जान गया कि उन्होंने एक ही इशारे में उस पर कटाक्ष किया है क्योंकि वह

लोगों से चन्द चाँदी के सिक्कों पर बिक जाता है तथा अपनी अमूल्य अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन करता फिरता है जो कि प्रकृति के काम में हस्तक्षेप है।

केश अनिवार्य क्यों?

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी अवकाश के समय आगरे के दर्शनीय स्थलों इत्यादि स्थानों पर विचरण कर रहे थे कि एक दिन कुछ स्थानीय सिक्ख एकत्रित होकर आपके दर्शनों को आये। गुरूदेव जी उनकी श्रद्धा पर सन्तुष्ट हुए और उन्होंने समस्त सिखों को अमृतपान करने की प्रेरणा दी। इस पर अधिकांश अमृतपान करने के लिए उत्सुक दिखाई दिये किन्तु एक व्यक्ति जिस का नाम नो निद्धि राय था, उसने गुरूदेव जी के समक्ष अपनी जिज्ञासा रखी और प्रश्न किया हे गुरूदेव जी ! आप जो अमृतपान करवाते समय केश अनिवार्य बतलाते हैं, वह क्यों? क्या सिक्खी हम पहले की तरह धारण नहीं कर सकते?

गुरूदेव जी इस प्रश्न पर प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा - नो निद्धि राय तुम विवेकशील व्यक्ति हो। अत: तुम्हारा प्रश्न उचित है। यदि मन में शंका बनी रही तो दुविधा में किया गया कर्म फलीभूत नहीं होता, अत: हम तुम्हें प्रश्न का उत्तर देते हैं। केश सभी मनुष्यों को जन्म से ही उपहार में प्रकृति ने दिये है। हमारी प्राचीन सभ्यता में सभी स्त्री पुरूष ज्यों का त्यों उन्हें धारण करते थे। समय के अंतराल में कुछ लोगों ने केशों का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया जो कुरीति विकराल रूप धारण कर गई। बस केवल ऋषि मुनि अथवा संत जन ही केशधारी शेष रह गये। बात समझने की है, हमने कोई नई नीति नहीं चलाई बल्कि प्राचीन परम्परा को सुरजीत किया है और हमने प्रकृति के नियमों का अनुसरण करके उस प्रभु के आदेश का पालन किया है, जिसने मानव शरीर में केश एक अनिवार्य अंग के रूप में हमें प्रदान किये हैं। अब हमारा प्रश्न है कि जब प्रकृति ने हमें उपहार में केश दिये हैं तो उसमें कोई रहस्य अवश्य ही होगा। लोग प्रकृति के नियमों के विपरीत केशों का खण्डन क्यों करते हैं ? जबकि प्रकृति का अनुसरण करने से सदैव मनुष्य को लाभ ही हुआ है। इस पर नो निद्धि राय बोला - गुरूदेव जी ! मैं आपकी बात को समझ गया हूँ परन्तु केश-दाढ़ी, मूंछे इत्यादि का महत्त्व बताएं। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा - केश सुन्दरता का प्रतीक है और मनुष्य के मस्तिष्क को सुरक्षित रखते हैं। दाढ़ी - दैवी गुणों की प्रतीक है - जैसे दया, धैर्य, क्षमा, शान्ति, सन्तोष इत्यादि। इसी प्रकार मूंछे वीरता, शौर्य जैसे गुणों की प्रतीक है। प्रकृति ने केवल पुरूषों को ही दाढ़ी-मूंछों से श्रृंगारा है, वह भी युवावस्था में आने पर प्राप्त होती है, नबालिक आयु में यह उपहार प्रकृति नहीं प्रदान करती। यदि पुरूष इन प्रकृति के उपहारों को ज्यों का त्यों धारण करे तो वह अति सुन्दर प्रतीत होता है। नारी को तो कृत्रिम श्रृंगार की आवश्यकता है किन्तु पुरूषों को प्रकृति ने केश, दाढ़ी तथा मूंछे उपहार रूप में प्रदान करके अपने हाथों से श्रृंगारा है। इसलिए सौन्दर्य की दृष्टि से पुरूष नारी की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।

यह व्याख्या सुनकर नो निद्धि राय तथा संगत ने गुरूदेव जी को नमस्कार किया और अमृतपान करने के लिए तत्पर हो गये।

खालसा सम्पूर्ण

एक बार गुरू गोबिन्द सिंघ जी तथा उनके शिष्य राजस्थान के एक क्षेत्र से गुजर रहे थे। उसी रास्ते में एक संत दादू जी की समाधि थी। जब वे समाधि के पास से गुजरे तो गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने अपने तीर से संत की समाधि की तरफ सैल्यूट कर दिया। उस समय गुरूदेव जी के शिष्य चुप रहे। परन्तु अपने स्थान पर पहुँचने पर उन्होंने गुरूदेव जी के विरूद्ध पाँच प्यारों के रूप में गुरमता बनाया कि आज गोबिन्द सिंघ जी ने एकबहुत बड़ा अपराध किया है। जिसका उनको दण्ड देना है। बस फिर क्या था। पाँच प्यारे शिष्यों ने उन पर लगा दोष सुनाया तथा उनसे इस अपराध का उत्तर माँगा। इसके उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा, 'वास्तव में मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था कि कहीं मेरा खालसा भेड़चाल तो नहीं चलने वाला। मेरा खालसा दृढ़ संकल्प वाला है। बस मैं यही देखना चाहता था। परन्तु मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि जो खालसा मुझे गलती करने पर पकड़ लेता है बल्कि मेरी की गई गलती का भेड़चाल की तरह अनुसरण नहीं करता। यह खालसा अब सम्पूर्ण हो चुका है। अब उसमें कोई त्रुटि नहीं रही।' परन्तु पाँच प्यारे इस सफाई पर भी नहीं माने। उन्होंने गुरूदेव जी को सवा लाख रूपये दण्ड देने को कहा। बाद में यह दण्ड गुरूदेव जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

भाई मान सिंघ जी की हत्या

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी सम्राट बहादुर शाह के आग्रह पर दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल पड़े। रास्ते में बादशाह को राजपूताने जाना पड़ गया क्योंकि वहाँ से विद्रोह के समाचार मिल रहे थे। सिक्खों ने भी गुरूदेव जी से अनुरोध किया कि राजस्थान के कुछ एक ऐतिहासिक नगर अथवा वहाँ के किले इत्यादि देखने को मन हो रहा है। कृपया आप भी चले। अत: गुरूदेव जी भी चित्तौड़ नगर की यात्रा को चल पड़े। धीरे धीरे सिक्खों ने कई दर्शनिक स्थल देखे। इस यात्रा में सिक्खों के घोड़ों को हरे चारे की समस्या बनी रही। चित्तौड़ नगर के बाहर एक स्थान पर कुछ सिक्खों ने घास की गाँठे देखी किन्तु उनके स्वामी उन्हें बेचने पर तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि यह चारा अपने घोड़ों अथवा सरकारी घोड़ों के लिए सुरक्षित है। सिक्ख विवश थे क्योंकि उन के घोड़े चारे के बिना भूखे-प्यासे व्याकुल हो रहे थे। सिक्खों ने चारे के दाम बहुत बढ़ा कर देने का प्रस्ताव रखा किन्तु घास के स्वामी किसी कीमत पर सहमत नहीं हुए। इस पर कुछ जवानों ने बलपूर्वक घास उठा लिया और घोड़ों

को डाल दिया। इस प्रकार कहा सुनी हो गई और उनके पक्ष में वहाँ के निवासी इक्ट्ठे हो गये। बात बढ़ गई जिससे भयंकर झगड़ा हो गया। देखते ही देखते तलवारें म्यान से बाहर आ गई और इस छोटी सी बात पर रक्तपात हो गया। इस झगड़े में कुछ बहुमूल्य जीवन नष्ट हो गया। जब यह बात गुरूदेव जी को मालूम हुई तो वह बहुत रूष्ट हुए। उन्होंने बिना कारण बल प्रयाग करने के लिए सिक्खों को डांट लगाई राजपूताने से लौट कर गुरूदेव जी महाराष्ट्र की ओर बढ़ने लगे। शाही सेना भी गुरूदेव जी के काफिले से कुछ दूरी पर आगे बढ़ रही थी, नर्वदा नदी के किनारे घास के मैदान में सिक्खों के घोड़े घास चर रहे थे, वही पास में शाही सेना के घोड़े भी पहुँच गये और उन्होंने मैदान पर नियन्त्रण कर लिया। सिक्खों ने इस बात पर आपत्ति की किन्तु चारे की कमी के कारण सरकारी सैनिकों ने हठधर्मी दिखाई। बात बढ़ गई और झगड़ा भयंकर रूप धारण कर गया। कुछ सिक्खों ने गुरूदेव जी को इस बात की सूचना दी। उन्होंने भाई मान सिंघ जी को दोनों पक्षों को समझा-बुझा कर शान्त करने को भेजा। भाई जी ने ऐसा ही किया किन्तु एक शाही सैनिक ने उनको गोली मार दी। यह सैनिक सिक्ख सैनिकों से ईर्ष्या करता था। पहले यह सैनिक कभी आनन्दपुर तथा चमकौर के युद्धों में सिक्खों के विरूद्ध युद्ध लड़ चुका था। अकस्मात् वार में भाई जी सम्भल नहीं पाए और वहीं शरीर त्याग दिया। इस दुर्घटना की गुरूदेव जी ने बादशाह को शिकायत की। बादशाह बहादुर शाह ने तुरन्त उस सैनिक को दण्ड देने के लिए गुरूदेव जी के समक्ष प्रस्तुत किया किन्तु गुरूदेव जी ने उसे यह कह कर क्षमा कर दिया कि विद्याता की यही इच्छा थी। किन्तु गुरूदेव जी को भाई मान सिंघ जी के निधन पर बहुत शोक हुआ।

माधो दास वैरागी

बन्दा सिंघ बहादुर का जन्म 16 अक्टूबर 1670 ई० को जम्मू के पुंछ जिले के एक गाँव रजौरी में हुआ। उनका बचपन का नाम लछमन दास था। उनके पिता रामदेव राजपूत डोगरे स्थानीय जमींदार थे। जिस कारण आप के पास धन-सम्पदा का अभाव न था। आपने अपने बेटे लछमन दास को रिवाज के अनुसार घुड़सवारी, शिकार खेलना, कुश्तियाँ आदि के करतब सिखलाए किन्तु शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

अभी लछमन दास का बचपन समाप्त ही हुआ था और यौवन में पदार्पण ही किया था कि अचानक एक घटना उनके जीवन में असाधारण परिवर्तन ले आई। एक बार उन्होंने एक हिरनी का शिकार किया। जिसके पेट में से दो बच्चे निकले और तड़प कर मर गये। इस घटना ने लछमनदास के मन पर गहरा प्रभाव डाला और वह अशांत से रहने लग गया। मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए वे साधु संगत में रहने लग गये। एक बार जानकी प्रसाद नामक साधु राजौरी में आया। लछमनदास ने उसके समक्ष अपने मन की बेचैनी की व्यथा बताई तो जानकी दास उसे अपने संग लाहौर नगर अपने आश्रम ले आया जहाँ उसने लछमन दास का नाम माधो दास रख दिया। जानकी दास को भय था कि जमींदार रामदेव अपने पुत्र को खोजता यहाँ न आ जाये किन्तु लछमन दास अथवा माधो दास की मन की भटकन समाप्त नहीं हुई। अत: वह शान्ति की खोज में जुटा रहा। लाहौर नगर के निकट कसूर क्षेत्र में सन् 1686 ईस्वी की वैशाखी के मेले पर उन्होंने एक और साधु रामदास को अपना गुरू धारण किया और वह उस साधु के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर चले गये। बहुत से तीर्थो की यात्रा की किन्तु शाश्वत ज्ञान कहीं प्राप्त न हुआ। इस बीच पंचवटी में उसका मेल एक योगी औघड़नाथ के साथ हुआ। यह योगी ऋद्धियों-सिद्धियों तथा तांत्रिक विद्या जानने के कारण बहुत प्रसिद्धि पर था। जन्त्र-मन्त्र तथा योग विद्या सीखने की भावना से माधोदास ने इस योगी की खूब सेवा की। जिससे प्रसन्न होकर औघड़ नाथ ने योग के गूढ़ साधनाएं व जादू के भेद उसको सिखा दिये। योगी की मृत्यु के पश्चात् माधोदास ने गोदावरी नदी के तट पर नदेड़ नगर में एक रमणीक स्थल पर अपना नया आश्रम बनाया। यहाँ माधो दास ने ऋद्धि-सिद्धि अथवा जन्त्र-मन्त्र की चमत्कारी शक्तियाँ दिखा कर जन-साधारण को प्रभावित किया। जिससे स्थानीय लोग उसकी मान्यता करने लगे और कुछ एक उसके शिष्य बन गये। जिससे माधोदास अभिमानी हो गया। वह प्रत्येक कार्य अपने स्वार्थ के लिए करने लगा। उसे परोपकार का मार्ग भूल गया। अत: वह लोक भलाई के लिए कुछ भी न कर पाया बल्कि अपनी आत्मिक शक्ति का प्रदर्शन करके लोगों को भयभीत करने लगा जिससे लोग अभिशाप के भय से धन अथवा आवश्यक सामग्री इत्यादि आश्रम में पहुँचाने लगे। यदि कोई अन्य साधु इस क्षेत्र में आता तो माधो दास उसका अपमान करके उसे वहाँ से भगा देता। इस बात की चर्चा दूर दूर तक होने लगी कि माधोदास तपस्वी अभिमानी और हठी प्रवृत्ति का है, वह अन्य सन्तों की खिल्ली उड़ाता है। गुरूदेव जी ने इस चुनौती को स्वीकार किया और उसके आश्रम में जाकर उसे ललकारने के विचार से आश्रम की मर्यादा के विपरीत अपने शिष्यों को कार्य करने का आदेश दिया।

माधोदास से बंदा बहादुर

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी दक्षिण भारत में गुरमति का प्रचार करने के लिए विचरण करने के विचार से आगे बढ़ रहे थे कि महाराष्ट्र के स्थानीय लोगों ने गुरूदेव जी को बताया कि गोदावरी नदी के तट पर एक वैरागी साधु रहता है जिसने योग साधना के बल से बहुत सी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त की हुई हैं। जिनका प्रयोग करके वह अन्य महापुरूषों की हँसी उड़ाता है। इस प्रकार वह बहुत अभिमानी प्रवृत्ति का स्वामी बन गया है। यह ज्ञात होने पर गुरूदेव जी के हृदय में इस चंचल प्रवृत्ति के साधु की परीक्षा लेने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अत: वह नानदेड़ नगर के उस रमणीक स्थल पर पहुँचे, जहाँ इस वैरागी साधु का आश्रम था। किन्तु यह साधु अपने आश्रम में नहीं था, उद्यान में तप साधना में लीन था। साधु के शिष्यों ने गुरूदेव जी का शिष्टाचार से सम्मान नहीं किया। इसलिए गुरूदेव जी रूष्ट हो गये और उन्होंने अपने सेवकों (सिक्खों) को आदेश दिया कि यहीं तुरन्त भोजन तैयार करो। इस कार्य के लिए यहीं आश्रम में बकरे भटका डालो। आदेश का पालन किया गया। बकरों

की हत्या देखकर वैरागी साधु के शिष्य बौखला गये किन्तु वे अपने को असमर्थ और विवश अनुभव कर रहे थे। सिक्खों ने उनके आश्रम को बलात अपने नियन्त्रण में ले लिया था और गुरूदेव जी स्वयँ वैरागी साधु के पलंग पर विराजमान होकर आदेश दे रहे थे। वैरागी साधु के शिष्य अपना समस्त ऋद्धि-सिद्धि का बल प्रयोग कर रहे थे जिस से बलात नियन्त्रकारियों का अनिष्ट किया जा सके किन्तु वह बहुत बुरी तरह से विफल हुए। उनकी कोई भी चमत्कारी शक्ति काम नहीं आई। उन्होंने अन्त में आपने गुरू वैरागी साधु माधोदास को सन्देश भेजा कि कोई तेजस्वी तथा पराकर्मी पुरूष आश्रम में पधारे हैं जिनको परास्त करने के लिए हमने अपना समस्त योग बल प्रयोग करके देख लिया है परन्तु हम सफल नहीं हुए। अत: आप स्वयँ इस कठिन समय में हमारा नेतृत्त्व करें। संदेश पाते ही माधोदास वैरागी अपने आश्रम पहुँचा। एक आगन्तुक को अपने पलंग (आसन) पर बैठा देखकर, अपनी अलौकिक शक्तियों द्वारा पलंग उलटवाने का प्रयत्न किया परन्तु गुरूदेव जी पर इन चमत्कारी शक्तियों का कोई प्रभाव न होता देख,माधो दास जान गया कि यह तो कोई पूर्ण पुरूष हैं, साधारण व्यक्ति नहीं। उसने एक दृष्टि गुरूदेव जी को देखा - नूरानी चेहरा और निर्भय व्यक्ति। उसने बहुत विनम्रता से गुरूदेव जी पर प्रश्न किया - आप कौन हैं? गुरूदेव जी ने उत्तर में कहा - मैं वही हूँ जिसे तू जानता है और लम्बे समय से प्रतीक्षा कर रहा है।

माधोदास - तभी माधोदास अन्तर्मुख हो गया और अंत:करण में झाँकने लगा। कुछ समय पश्चात् सुचेत हुआ और बोला - आप गुरू गोबिन्द सिंघ जी तो नहीं?

गुरूदेव जी - तुमने ठीक पहचाना है मैं वही हूँ।

माधो दास - आप इधर कैसे पधारे? बड़ी मन की इच्छी थी कि आप के दर्शन करूँ किन्तु कोई संयोग ही नहीं बन पाया कि पँजाब की यात्रा पर जाऊँ। आपने बहुत कृपा की जो मेरे हृदय की व्यथा जानकर स्वयँ पधारे हैं।

गुरूदेव जी - हम तुम्हारे प्रेम के बाँधे चले आये हैं अन्यथा इधर हमारा कोई अन्य कार्य नहीं था।

माधो दास - मैं आप का बंदा हूँ। मुझे आप सेवा बताएं और वह गुरू चरणों में दण्ड्वत प्रणाम करने लगा।

गुरूदेव जी उसकी विनम्रता और स्नेहशील भाषा से मंत्रमुग्ध हो गये। उसे उठाकर गले से लगाया और आदेश दिया - यदि तुम हमारे बंदे हो तो फिर सँसार से विरक्ति क्यों? जब मज़हब के जनून में निर्दोष लोगों की हत्या की जा रही हो, अबोध बालकों तक को दीवारों में चिन्ना जा रहा हो तो आप जैसे तेजस्वी हथियार त्याग कर विरक्त बन जाये तो समाज में अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध आवाज कौन बुलंद करेगा? यदि तुम मेरे बंदे कहलाना चाहते हो तो तुम्हें समाज के प्रति उत्तरदायित्त्व निभाते हुए कर्त्तव्यपरायण बनना ही होगा क्योंकि मेरा लक्ष्य समाज में भ्रातृत्त्व उत्पन्न करना है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब स्वार्थी, अत्याचारी और समाज विरोधी तत्त्व का दमन किया जाये। अत: मेरे बंदे तो तलवार के धनी और अन्याय का मुँह तोड़ने का संकल्प करने वाले हैं। यह समय सँसार से भाग कर एकान्त में बैठने का नहीं है। तुम्हारे जैसे वीर और बलिष्ठ योद्धा को यदि अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो चूकना नहीं चाहिए क्योंकि वह बलिदान घोर तपस्या से अधिक फलदायक होता है।

माधोदास ने पुन: विनती की कि मैं आपका बंदा बन चुका हूँ। आपकी प्रत्येक आज्ञा मेरे लिए सर्वोत्तम है। उसने कहा - मैं भटक गया था। अब मैं जान गया हूँ, मुझे जीवन चरित्र से सन्त और कर्त्तव्य से सिपाही होना चाहिए। आपने मेरा मार्गदर्शन करके मुझे कृत्तार्थ किया है जिससे मैं अपना भविष्य उज्जवल करता हुआ अपनी प्रतिभा का परिचय दे पाउँगा।

गुरूदेव जी माधो दास के जीवन में क्रान्ति देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे गुरूदीक्षा देकर अमृतपान कराया जिससे माधोदास केशध ारी सिंघ बन गया। पाँच प्यारों ने माधोदास का नाम परिवर्तित करके गुरूबख्श सिंघ रख दिया। परन्तु वह अपने आप को गुरू गोबिन्द सिंघ जी का बन्दा ही कहलाता रहा। इसी लिए इतिहास में वह बंदा बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुरूदेव जी को माधोदास (बंदा बहादुर) में मुग़लों को परास्त करने वाला अपना भावी उत्तराधिकारी दिखाई दे रहा था। अत: उसे इस कार्य के लिए प्रशिक्षण दिया गया और गुरू इतिहास, गुरू मर्यादा से पूर्णत: अवगत कराया गया। दिनों में ही उसने शस्त्र विद्या का पुन: अभ्यास करके फिर से प्रवीणता प्राप्त कर ली। जब सभी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी तो गुरूदेव जी ने उसे आदेश दिया - 'कभी गुरू पद को धारण नहीं करना, यती रहना अर्थात विवाह बन्धन में मत फँसना। अन्यथा लक्ष्य से चूक जाओगे। पाँच प्यारों की आज्ञा मानकर समस्त कार्य करना। बंदा बहादुर ने इन उपदेशों के सम्मुख शीश झुका दिया। तभी गुरूदेव जी ने उसे अपनी खड़ग (तलवार) उसे पहना दी। किन्तु सिक्ख इस कार्य से रूष्ट हो गये। उनकी मान्यता थी कि गुरूदेव जी की कृपाण (तलवार) पर उनका अधिकार है, वह किसी और को नहीं दी जा सकती। उन्होंने तर्क रखा कि हम आपके साथ सदैव छाया की तरह रहे हैं जब कि यह कल का योगी आज समस्त अमूल्य निधि का स्वामी बनता जा रहा है।

गुरूदेव जी ने इस सत्य को स्वीकार किया। खड़ग के विकल्प में गुरूदेव जी ने उसे अपने तरकश में से पाँच तीर दिये और वचन किया जब कभी विपत्तिकाल हो तभी इनका प्रयोग करना तुरन्त सफलता मिलेगी। आशीर्वाद दिया और कहा - जा जितनी देर तू खालसा पंथ के नियमों पर कायम रहेगा। गुरू तेरी रक्षा करेगा। तुम्हारा लक्ष्य दुष्टों का नाश और दीनों की निष्काम सेवा है, इससे कभी विचलित नहीं होना। बन्दा सिंघ बहादुर ने गुरूदेव जी को वचन दिया कि वह सदैव पांच प्यारों की आज्ञा का पालन करेगा। गुरूदेव जी ने अपने कर-कमलों से लिखित हुक्मनामे

दिये जो पँजाब में विभिन्न क्षेत्रों में बसने वाले सिक्खों के नाम थे जिसमें आदेश था कि वह सभी बन्दा सिंघ की सेना में सम्मिलित हो कर दुष्टों को परास्त करने के अभियान में कार्यरत हो जाएं और साथ ही बन्दा सिंघ को खालसे का जत्थेदार नियुक्त करके 'बहादुर' खिताब देकर निवाजा और पाँच प्यारों - भाई विनोद सिंह, भाई काहन सिंह, भाई बाज सिंह, भाई रण सिंह और राम सिंह की अगुवाई में पँजाब भेजा। उसे निशान साहब (झंडा) नगाड़ा और एक सैनिक टुकड़ी भी दी। जिसे लेकर वह उत्तरभारत की ओर चल पड़ा।

इस प्रकार बंदा सिंघ बहादुर ने अपना आश्रम और विरक्त जीवन सदा के लिए त्याग दिया। उसने पँजाब में आकर सिक्खों की बड़ी सेना तैयार की और गुरू घर पर अत्याचार करने वाले लाहौर, सरहिन्द, दिल्ली के सूबेदारों (राज्यपालों) तथा पर्वतीय नरेशों, मुग़ल सेनापत्तियों को चुन चुन कर परास्त किया और उचित दण्ड दिया। बंदा सिंघ की सेना तूफान की तरह जिधर बढ़ती, अपने शत्रुओं को जड़-मूल से उखाड़ कर मिट्टी में मिलाती चली जाती। गुरूदेव जी के आशीर्वाद से बंदा सिंघ ने वे सभी अधूरे युद्ध पूरे किए, जिन में शत्रु को दण्ड देना शेष रह गया था। गुरूदेव जी को आनन्दपुर में मिथ्या कस्मों से छलने वाले राजाओं और मुग़ल सेनापतियों को बंदा सिंघ ने खूब सबक सिखाया। सत्य तो यह है कि गुरू कृपा से बंदा सिंघ ने पँजाब के इतिहास का मुख ही मोड़ दिया।

तम्बाकू का निषेध

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी शिकार खेलने के विचार से अपने योद्धाओं को लेकर नंदेड़ के एक जँगल की ओर जा रहे थे कि रास्ते में एक गाँव पड़ता था। यहाँ से विचित्र सी दुर्गन्ध आ रही थी। इस दुर्गन्ध के कारण गुरूदेव जी के घोड़े ने आगे बढ़ना बन्द कर दिया। आपने घोड़े को ऐड़ लगाई और चाबुक भी मारा किन्तु घोड़ा आगे नहीं बढ़ा। गुरूदेव जी ने तुरन्त सिक्खों को आदेश दिया कि वह आगे जा कर देखे कि क्या कारण है जो हमारा घोड़ा आगे चलने को तैयार ही नहीं है। तुरन्त आदेश का पालन किया गया। गाँव से वहाँ के निवासियों को बुला लिया गया। गाँव के मुखिया ने गुरूदेव जी को नमस्कार किया और विनती करने लगा - हे गुरूदेव जी ! हम किसान यहाँ केवल तम्बाकू की खेती करते हैं, जिससे दुर्गन्ध आती है किन्तु क्या करें। यह फसल हमें अन्य फसलों से कहीं अधिक लाभ देती है। वैसे हम जानते हैं कि यह पदार्थ समाज के हित में नहीं किन्तु आय के साधन के कारण विवशता के कारण इस विषैले पदार्थ का उत्पादन करना पड़ता ही है क्योंकि हमारी इसके साथ जीविका सम्बन्ध रखती है।

गुरूदेव जी ने उसकी बात धैर्य से सुनी और कहा - यदि आप समाज के हित का ध्यान रखकर थोड़ी सी लालच त्याग दें तो बहुत सी सामाजिक बुराइयों से बचा जा सकता है क्योंकि यह तम्बाकू तीन शक्तियों का विनाश करता है, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक। शरीर को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कई रोग लग जाते हैं। मस्तिष्क की चेतना शक्ति दुर्बल हो जाती है और आत्मविश्वास से व्यक्ति कोई उचित निर्णय नहीं ले सकता। तम्बाकू सेवन से आज तक किसी को कोई लाभ होते नहीं देखा गया इसके विपरीत आर्थिक क्षति बहुत बड़ी होती है। इस प्रकार धन के दुरूपयोग से व्यक्ति समाज में पिछड़ जाता है। तम्बाकू के उपयोग से जहाँ वातावरण दूषित होता है, वहाँ व्यक्ति के मुँह से दुर्गन्ध आती है। इसके अतिरिक्त तम्बाकू के सेवन करने वालों की लापरवाही से बहुत से स्थानों पर भयंकर अग्निकाण्ड हो जाते हैं जिससे करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। यह विवेकशील विचार सुनकर गाँव का मुखिया बोला - गुरूदेव जी ! आप ठीक ही कहते हैं। समाज में जागृति लाई जानी चाहिए और तम्बाकू को समाज में से निषेध करने का अभियान चलाया जाना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव है तो हम उत्पादन बन्द कर देंगे। इस प्रकार गुरूदेव जी वहाँ से वापिस लौट कर दूसरे लम्बे रास्ते से शिकार खेलने के लिए चले गये।

सहया का शिकार

श्री गोबिन्द सिंघ जी अपने सैनिकों में सदैव शौर्य और साहसी कार्य करने के अभ्यास करवाते रहते थे। इस कार्य के लिए वह बड़े जीवों के शिकार खेलने के करतब को बहुत महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि शिकार करने के अभियान में प्रत्येक प्रकार का युद्ध कौशल सीखा जा सकता है। अत: वह शिकार करने का कोई भी अवसर नहीं चूकते थे। एक दिन बहुत बड़ी संख्या में सैनिकों को लेकर आप जी शिकार को निकले किन्तु बड़ा शिकार हाथ नहीं आया। काफी खोजबीन के पश्चात् आपके समक्ष एक सहया निकला जो देखते ही देखते झाड़ियों में ओझल हो गया। गुरूदेव जी कभी भी किसी छोटे जीव का शिकार नहीं करते थे किन्तु उस दिन आप जी ने सहया के पीछे घोड़ा लगा दिलया और उसको नगारे की भयभीत आवाजों से डरा कर झाड़ियों अथवा पथरीली ऊबड़-खाबड़ भूमि से बाहर निकाला तथा उसका शिकार कर डाला। उस छोटे जीव को देखकर बहुत से सिक्खों ने प्रश्न किया। गुरूदेव जी आप ने इस छोटे जीव के लिए इतना परिश्रम कभी नहीं किया जितना आज, कोई विशेष रहस्य है ? उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा - यह सहया पूर्व जन्म में श्री गुरू नानक देव जी का शिष्य था किन्तु समय के अन्तराल में बेमुख हो गया। जिस कारण इसे कई योनियों में भटकना पड़ा है। इसने अपने कल्याण के लिए गुरू नानक देव जी के चरणों में प्रार्थना की थी कि मुझ से भूल हुई है किन्तु मेरा उद्धार कब होगा तो उस समय गुरूदेव जी ने वचन किया था कि हम दसवें जामे (शरीर) में जब होंगे तो तेरा उद्धार करेंगे। यह सुनकर सिक्खों की जिज्ञासा तीव्र हो गई। उन्होंने गुरूदेव जी से आग्रह किया कि घटनाक्रम विस्तार से सुनाएं। गुरूदेव जी ने बताया कि सियालकोट में एक मूलचन्द नामक व्यापारी रहता था। पीर हमज़ागोश ने नगर का विनाश करने के लिए इबादत करनी प्रारम्भ कर दी थी। इस विनाश को रोकने के लिए गुरू नानक देव जी ने हमज़ागोश को दिखवाया था कि कुछ लोग सत्य मार्ग पर चलने वाले भी होते हैं। जो सदैव उस प्रभु की याद में जीवन व्यतीत करते अथवा मृत्यु को नहीं भूलते। इसलिए उन्होंने भाई मरदाना जी से झूठ और सच खरीद कर लाने को

कहा था। जो कि इस मूलचन्द ने एक कागज़ पर लिख कर दिया था। जिस का भाव था कि मनुष्य ने मरना अवश्य ही है। अत: सावधान होकर जीना चाहिए। ताकि कोई गलत कार्य न हो। उस कागज़ के टुकड़े ने हमज़ागोश की समाज के प्रति कटुता समाप्त कर दी थी।

माता साहिब कौर का दिल्ली प्रस्थान

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने बंदा सिंघ बहादुर को पाँच प्यारों के नेतृत्त्व में दुष्टों को दण्डित करने के लिए भेज दिया। उसके पश्चात् ही आपने एक दिन अपनी पत्नी साहिब कौर जी को सुझाव दिया कि आप दिल्ली वापिस सुन्दरी जी के पास चली जाएं। इस पर उन्होंने बहुत आपत्ति की और पूछा, कि "आप ऐसा क्यों कह रहे हैं जब कि आप जानते हैं मैं आपकी सेवा और दर्शनों के बिना रह नहीं सकती।" उत्तर में गुरूदेव जी ने उन्हें बताया कि मेरा अन्तिम समय निकट है, मैं जल्दी ही सँसार से विदा लेने वाला हूँ। यह सुनकर उनको बहुत दु:ख हुआ किन्तु उन्होंने प्रश्न किया, "आप तो स्वस्थ युवावस्था में हैं और अभी आप की आयु क्या है?" उत्तर में गुरूदेव जी ने उनको रहस्य बताया। प्राकृति के नियमानुसार समस्त शरीरधारियों को एक न एक दिन सँसार त्याग कर परलोक गमन करना ही होता है, भले ही वह पराकर्मी पुरूष हो अथवा चक्रवर्ती सम्राट, अत: इस नियम के बँधे हमें जाना ही है। इस में अल्प आयु, दीर्घ आयु का प्रश्न नहीं हैं। जब श्वासों की पूंजी समाप्त होती है तो कोई कारण प्रकृति बना देती है। किन्तु साहिब कौर जी इस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुई। वह फिर से पूछने लगी कि आप के शरीर त्यागने का क्या कारण होगा? इस पर गुरूदेव जी ने उन्हें समझाते हुए कहा – मेरे साथ एक दुर्घटना होने वाली है बस वही कारण ही मेरे लिए वापिस प्रभु में विलीन होने के लिए पर्याप्त होगा किन्तु भावुकता में साहिब कौर जी ने पुन: प्रश्न किया। आप तो समर्थ पुरूष हैं। इस अनहोनी को टाला नहीं जा सकता अथवा इसके समय में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उत्तर में गुरूदेव जी ने कहा – प्रकृति के कार्यो में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होता भले ही यह हमारे लिए सम्भव है किन्तु हमें प्रकृति के नियमों के अनुसार होना ही शोभा देता है। उदाहरण के लिए द्वापर युग में श्री कृष्ण जी जानते थे कि उनकी हत्या एक शिकारी द्वारा भूल से की जाएगी किन्तु वह उसके लिए तैयार थे और सामान्य बने रहे। ठीक इसी प्रकार हम प्रभु लीला में विचरण करते हुए शरीर त्यागेगें। उन दिनों पँजाब से बाबा बुड्ढा जी के पोते भाई राम कुंवर जी तथा उनकी माता गुरूदेव जी के दर्शनों के लिए नांदेड़ आये हुए थे। जब वे पँजाब लौटने लगे तो गुरूदेव जी ने अपनी पत्नी साहिब कौर जी को उनके काफिले के साथ दिल्ली भेज दिया।

सम्राट द्वारा बहुमूल्य नगीना भेंट

श्री गुरू गोबिन्द सिंघ जी को सम्राट बहादुर शाह राजपुताने से लौटते समय नांदेड़ नगर में मिलने आया। उस समय गुरूदेव जी गोदावरी नदी के तट पर एक रमणीक स्थल पर विश्राम कर रहे थे। बहादुरशाह ने गुरूदेव जी को एक बहुमूल्य नगीना भेंट किया। गुरूदेव जी नगीना देखकर प्रसन्न हुए किन्तु कुछ ही समय के अन्तराल में उसे उठाकर गोदावरी नदी के गहरे पानी में फेंक दिया। यह देखकर बहादुरशाह विचलित हो उठा। वह विचारने लगा कि यह फकीर लोग हैं, इन्होंने अमूल्य नगीना के महत्त्व को समझा ही नहीं और वह उदास हो गया। मन ही मन सोचने लगा कि मैंने इन बेकद्र लोगों को यह अद्‌भुत वस्तु क्यों उपहार में दी। तभी गुरूदेव जी ने उस का उदास चेहरा देखकर प्रश्न किया कि क्या नगीना वापिस चाहते हो? बादशाह ने कहा– हाँ। गुरूदेव जी ने उसे कहा नदी के पानी में उतर जाओ और वहाँ से अपना नगीना छाँट कर ले आओ। बादशाह ने पूछा कि आपकी बात का क्या तात्पर्य है? क्या वहाँ और भी नगीने हैं। गुरूदेव जी ने कहा – गोदावरी हमारा खजाना है, हमने तुम्हारी भेंट अपने खजाने में जमा कर दी थी किन्तु तुम्हें संदेह हो गया है। अत: स्वयँ ही अपने वाला नगीना चुनकर ले आओ। बहादुरशाह वचन मानकर नदी में उतरा और नदी की रेत में अनेकों नगीने देखने लगा। उसने कुछ एक को पानी से बाहर निकाल कर ध्यान से परीक्षण किया। वह सभी एक से एक बढ़ कर सुन्दर और अद्‌भुत थे। यह आश्चर्यजनक कौतुहल देखकर स्तब्ध रह गया और उसने सभी नगीने वापिस नदी में पुन: फैंक दिये और लौट कर बार बार नमस्कार करने लगा।

धनुर्विद्या की प्रतियोगिता का आयोजन

एक दिन नांदेड़ में गुरूदेव जी का दरबार सजा हुआ था। तभी सम्राट उन से अपने वरिष्ठ अधिकारियों सहित मिलने आया। गुरूदेव जी से कुछ अधिकारीगण अनुरोध करने लगे, हे पीर जी ! हमने आपकी तीर अंदाजी की बहुत महिमा सुनी है। हमें भी प्रत्यक्ष यह करतब दिखाकर कृतार्थ करें। गुरूदेव जी ने उनका अनुरोध स्वीकार करते हुए एक विशाल प्रतियोगिता के आयोजन की घोषणा करवा दी, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के योद्धाओं को धनुर्विद्या के जौहर दिखाने का शुभ अवसर प्रदान किया जाएगा। बस फिर क्या था। स्थानीय प्रशासन की तरफ से कुछ अच्छे तीर अंदाजों को भेजा गया। कुछ आसपास के क्षेत्रों से आदिवासी भी आये। कुछ सम्राट की सैनिक टुकड़ियों के जवान भी इस प्रतियोगिता में भाग लेने आये। गुरूदेव जी ने एक विशाल मैदान में निशानदेही करवा दी और लक्ष्य भेदने के लिए कठपुतलियाँ निश्चित दूरी पर रखवा दी। निश्चित समय प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई किन्तु दूर के लक्ष्य को भेदने में सभी असफल हुए। अन्त में गुरूदेव जी ने जी दूर के लक्ष्य को भेद कर सभी की जिज्ञासा शान्त कर दी। इस प्रतियोगिता में बहुत से बाण चालकों को पुरस्कृत किया गया जिसमें स्थानीय शासक फिरोज़खान की सेना के दो जवान भी थे। इनके तीर लक्ष्य के लगभग निकट गिर रहे थे। गुरूदेव जी इन पर बहुत प्रसन्न हुए और इन को पाँच पाँच मोहरें (स्वर्ण मुद्राएं) प्रदान की और उनका परिचय प्राप्त किया। इन दोनों सैनिकों ने गुरूदेव जी को बताया कि वह आपस में भाई हैं जो कि पँजाब के पठान कबीलों से

सब गुरूदेव जी के निकटवर्ती सिक्खों को भला नहीं लगा। भाई दया सिंह जी ने गुरूदेव जी को सतर्क किया कि यह शत्रु पक्ष के व्यक्ति हैं, कभी भी अनिष्ट कर सकते हैं। आप इनको बढ़ावा न दें। परन्तु गुरूदेव जी ने उत्तर दिया। सब कुछ उस प्रभु के नियम के अनुसार ही होता है। हम विधाता के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं कर सकते, बस यही हमारा विश्वास है।

एक दिन स्थानीय प्रशासन ने बकरीद के त्यौहार पर शस्त्र विद्या की प्रतियोगिता का आयोजन किया। जिसमें दोनों पँजाबी पठान भाई विजयी हुए। इन भाइयों के प्रतिद्वन्द्वियों ने जो कि इन से बहुत ईर्ष्या करते थे, स्थानीय सैनिकों के साथ मिलकर इन दोनों पर बहुत भद्दे व्यंग्य किये - कहिने लगे जो व्यक्ति तुम्हारे पिता-पितामय का हत्यारा है, तुम उसके शिष्य हो, तुम्हें तो डूब मरना चाहिए। पठान कहलाते हो और अपने पुरखों का बदला भी नहीं ले सकते कैसे योद्धा हो? हमें तो तुम नपुंसक प्रतीत होते हो, इत्यादि। यह कटाक्ष इन भाइयों के हृदय को छलनी कर गया। गुलखान इस प्रकार आवेश में आ गया और वह भावुकता में एकान्त पाकर गुरूदेव जी पर कटार से वार कर बैठा। उस समय गुरूदेव जी विश्राम मुद्रा में लेटे ही थे। गुरूदेव जी ने उसी क्षण अपनी कृपाण से गुलखान को दो टुकड़ों में काट दिया। आहट पाते ही संतरी सावधान हुआ और उसने बाहर से भागते हुए गुलखान के छोटे भाई अताउलाखान को दबोच लिया। उसने सारा भेद बता दिया। किन्तु जब सिक्खों ने गुरूदेव जी का गहरा घाव देखा तो मारे क्रोध के उसे भी वहीं उसी समय मृत्यु दण्ड दे दिया। गुरूदेव जी के वस्त्र रक्तरंजित हो गये थे तुरन्त शल्य चिकित्सक (जर्राह) को बुलाया गया। उसने गुरूदेव जी के घाव को सी दिया और मरहम पट्टी कर दी और पूर्ण विश्राम के लिए परामर्श दिया। यह सूचना सम्राट को भी भेजी गई जो गुरूदेव जी को कुछ दिन पहले ही मिलकर दिल्ली वापिस जा रहा था। उचित उपचार होने से गुरूदेव जी का घाव धीरे धीरे भरने लगा और वह लगभग पुन: स्वस्थ हो गये और साधारण रूप में विचरण करने लगे। उन्हीं दिनों हैदराबाद के कुछ श्रद्धालुओं ने गुरूदेव जी को कुछ विशेष शस्त्र भेंट किये जिनमें एक भारी भरकम धनुष भी था। शस्त्र-अस्त्रों की प्रदर्शनी लगाई गई। इस भारी कमान को देखकर कुछ दर्शकों ने आशंका व्यक्त की कि यह कमान तो केवल प्रदर्शनी की वस्तु है। इस का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इस कमान का प्रयोग करने वाले योद्धा का अस्तित्त्व ही सम्भव नहीं।

यह बात सुनकर कुछ सिक्खों ने कमान पर चिल्ला चढ़ाने का बार बार प्रयास किया किन्तु वह असफल रहे। यह देख गुरूदेव जी तैश में आ गये। उन्होंने सिक्खों से धनुष ले लिया और उस पर चिल्ला चढ़ा कर जोर से खींचा, जिस कारण अधिक दबाव पेट पर पड़ा और उनके कच्चे घाव खुल गये। रक्त तेजी से प्रवाहित होने लगा। यह अनहोनी देख कर सभी भयभीत हो गये। पुन: उपचार के लिए जर्राह को तुरन्त बुलाया गया। उसने घाव पुन: सी दिये। किन्तु गुरूदेव जी ने कहा कि अब सभी प्रयास व्यर्थ हैं, अब हमारा अन्तिम समय आ गया है और उन्होंने सचखण्ड गमन की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

भाई दया सिंह जी का निधन

श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी को जब एक गुलखान नामक पठान ने घायल कर दिया तो सभी सिक्ख तुरन्त क्षण भर में इक्ट्ठे हो गये। भाई दया सिंह जी ने वैद्य को बुलवा लिया, जिसने उपचार आरम्भ कर दिया और जर्राह ने घाव सिल दिया। भाई दया सिंह उस समय निकट खड़े थे। वह गुरूदेव जी के घाव को देखकर सिहर उठे, यह अघात सहन नहीं कर सके क्योंकि वह गुरूदेव जी से अति स्नेह करते थे। उनको बहुत शोक हुआ। वह शान्तचित गुरूदेव जी के पलंग के निकट ही विराज गये। वह गम्भीर चिन्ता में थे कि उनको मानसिक आघात हुआ और उसी के कारण उनकी हृदयगति रूक गई और वह शरीर त्याग गये। गुरूदेव जी की आज्ञा से उनकी अंत्येष्टि क्रिया वही सम्पन्न कर दी गई।

ग्रंथ साहब को गुरू पदवी प्रदान की

गुरूदेव जी के आदेश पर तुरन्त दीवान सजाया गया। उस समय गुरूदेव जी से गुरूपरम्परा के आगे बढ़ने के सम्बन्ध में पूछा गया। गुरूदेव जी ने वहाँ एकत्रित शोकाकुल संगत को सांत्वना देते हुए समझाया कि जैसे मनुष्य की मृत्यु के बाद भी उसकी आत्मा बनी रहती है, ठीक वैसे ही गुरुजनों के जाने के पश्चात् भी उनकी पावन वाणी उनकी आत्मा के रूप में हमारे पास विद्यमान है। भविष्य में खालसे को उसी वाणी से दिशा-निर्देश प्राप्त करने हैं और शब्द रूप में ही गुरू को पहचानना है। इस प्रकार गुरूदेव जी ने उसी समय दमदमे वाली ग्रंथ साहब की 'बीड़' (पोथी) का प्रकाश करने का आदेश दिया। स्वयँ बहुत धैर्य और शान्ति के साथ अपने निवास में गये। वहाँ उन्होंने साफ-सुथरी और सुन्दर पोशाक धारण की, लौट कर ग्रंथ साहब के सम्मुख खड़े होकर सभी संगत में सम्मिलित होकर अकालपुरूष को सम्बोधन कर अरदास की और ग्रंथ साहब को दण्डवत प्रणाम किया। तत्पश्चात गुरू परम्परा अनुसार ग्रंथ साहब की चार परिक्रमा की और कुछ सामग्री एक थाल में रख कर ग्रंथ साहब को भेंट किया। इस प्रकार सभी विधिवत गुरू मर्यादा सम्पूर्ण करते हुए उन्होंने गुरू पदवी ग्रंथ साहब को दे दी। इस प्रकार ग्रंथ साहब को गुरूआई प्रदान कर दी गई और आदेश दिया कि आज के पश्चात् देहधारी गुरू की परम्परा समाप्त की जाती है।

कुछ सिक्खों ने गुरूदेव जी से प्रश्न किया कि यदि आपके दर्शनों की अभिलाषा हो तो कैसे किये जायें? गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया कि मेरी आत्मा ग्रंथ साहब में शरीर पंथ में विद्यमान रहेगा। किन्तु सिक्खों ने कुछ और विस्तृत जानने के लिए अन्य प्रश्न किये। एक सिक्ख ने प्रश्न किया कि सदैव पंथ के दर्शन कर पाना कठिन कार्य है क्योंकि विपत्तियों में खालसे का मिल बैठ पाना सम्भव नहीं लगता। ऐसे में आपके

दर्शन कैसे होंगे? गुरूदेव जी ने समाधान बताया, जहाँ विकट परिस्थितियाँ हो तो केवल पाँच प्यारों के दर्शन मेरे दर्शन होंगे। यदि ऐसा भी सम्भव न हो तो स्वयँ तैयार होकर, पूर्ण शस्त्र धारण कर लेना और दर्पण में स्वयँ को निहारना, मेरे दर्शन होंगे। यदि किसी कारणवश हमारी आवश्यकता पड़े तो हमारे स्थान पर, पाँच तैयार-बर-तैयार सिक्ख पाँच प्यारे रूप होकर हमारा प्रतिनिधित्त्व करेंगे।

सचखण्ड गमन

गुरूदेव जी ने सिक्खों को एक विशेष तम्बू में चिता तैयार करने का आदेश दिया। जब चिता तैयार हो गई तो स्वयँ नित्य की भान्ति अपना कमर-कस सजाया। धनुष-बाण कन्धे पर रखा और बंदूक को दाहिने हाथ में पकड़ कर घोड़े पर सवार हो गये। जैसे शिकार खेलने चले हो किन्तु उन्होंने समस्त सिक्खों को अन्तिम बार 'वाह गुरू जी का खालसा, वाह गुरू जी की फतह' कह कर अन्तिम विदाई ली। फिर उस तम्बू की तरफ चल पड़े। जहाँ उन्होंने अपने लिए चिता सजवाई हुई थी। तम्बू के अन्दर किसी को जाने की आज्ञा नहीं दी। वहाँ घोड़े से उतर कर वे अन्दर गये। सिक्ख शोक और आश्चर्य में डूबे हुए मूर्ति की भान्ति खड़े रहे। गुरूदेव जी ने समाधि लगाई और चिता पर लेट गये। इस तरह वे ज्योतिजोत समा गए।

जाते हुए कह गये कि कोई उनकी यादगार न बनवाये। उनकी याद का असली स्थान तो सिक्खों का हृदय ही होना चाहिए। किन्तु खालसा उनके परोपकारों को कैसे भूल सकता था। बाद में गुरूदेव जी की याद में एक थड़ा (चबूतरा) बना दिया गया।